Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132
ISSN-2582-5976

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

Supported by: Kisaan Helpline +91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

वर्ष-20 अंक-05 ग्वालियर, अगस्त 2025 मूल्य 30 रुपए

स्वतंत्रता दिवसः देशभर में देशभक्ति का उल्लास

'हर घर तिरंगा' अभियान सरकार द्वारा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर शुरू की गई एक पहल है,जिसके तहत लोगों को अपने घरों पर तिरंगा झंडा फहराने के लिए प्रेरित किया गया। इस अभियान का उद्देश्य देशभक्ति की भावना को प्रोत्साहित करना और राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना है।

मप्र: एफ.पी.ओ. डायरेक्टर समिट-2025 का शुभारंभ

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने राज्य कृषि विस्तार एवं प्रशिक्षण संस्थान में दीप प्रज्जवलित कर 'एफ.पी.ओ. डायरेक्टर समिट-2025' का शुभारंभ किया।

छ.ग.: कृषि नेताम ने कोण्डागांव में मक्का प्रसंस्करण इकाई का किया भ्रमण

छत्तीसगढ़ कृषि विकास एवं किसान कल्याण मंत्री रामविचार नेताम कोंडागांव पहुंचे। उन्होंने इस अवसर पर नारायणपुर, कोंडागांव एवं बस्तर जिले के अधिकारियों की बैठक लेकर आदिवासी विकास, कृषि तथा उद्यानिकी विभाग के कार्यों की विस्तृत समीक्षा की।

श्री गणेशाय नमः
श्री सॉवलिया सेठ
किसान कृषि सेवा केन्द्र
Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com
7692967419
9109726855
हमारी सेवाएँ:-
सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौंप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।
कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।
उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।
स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company
कृषि दर्शन®
खेत-खलिहान का राजा
1988
थ्रेशर 35HP हापर मॉडल
हडम्बा कटर थ्रेशर
ऑटोफीडिंग थ्रेशर
मक्का थ्रेशर
मिनी कम्बाईन थ्रेशर
रेज बेड सिड ड्रील
स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल
मोटर लिफ्टर
सुदर्शन इण्डस्ट्रीज
विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882
वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

डिजिटल चुनौती

पिछले एक दशक में प्रौद्योगिकी ने आम भारतीय के जीवन को सहज-सरल बनाने में निर्णायक भूमिका निभायी है। आज तमाम तरह की सुविधाओं को हासिल करने के लिये उसे दफ्तरों के चक्कर नहीं काटने पड़ते। अनेक सेवाएं एक क्लिक के साथ उसकी मुट्ठी में होती हैं। दरअसल, डिजिटल इंडिया की महत्वाकांक्षी पहल नरेंद्र मोदी सरकार के दौरान वर्ष 2015 में शुरू की गई थी। जिसका मकसद रोजाना व्यवहार में सामने आने वाली जटिलताओं को दूर करके जीवन को आसान बनाना था। निस्संदेह, पिछले एक दशक में इस महत्वाकांक्षी परियोजना ने कई प्रकार से नागरिकों को सशक्त बनाने में निर्णायक भूमिका निभायी है। विशेष रूप से डिजिटल भुगतान आज पूरे देश में अपरिहार्य हो गए हैं। इससे जुड़े आंकड़े पूरी दुनिया को चौंका रहे हैं। इस वर्ष अप्रैल में लगभग 25 लाख करोड़ रुपये के यूपीआई लेन-देन किए गए हैं। इन यूपीआई लेनदेन की संख्या करीब 1,860 थी। वर्ष 2023 में भारत ने वैश्विक रीयल-टाइम लेनदेन का 49 फीसदी हासिल किया। जिसमें 46 करोड़ लोग और 6.5 करोड़ व्यापारी यूपीआई का उपयोग कर रहे थे। निस्संदेह, शासन के विभिन्न क्षेत्रों में भी डिजिटल उपयोग में खासी प्रगति हुई है। जिससे व्यवस्था अधिक पारदर्शी और नागरिकों के हितों के अनुकूल हो गई है। इस डिजिटल क्रांति के चलते स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, बैंकिंग और अन्य सेवाओं तक नागरिकों की पहुंच आसान हुई है। डिजिटल क्रांति से जुड़ी तमाम चुनौतियों के अलावा अभी देश में डिजिटल डिवाइड की समस्या बनी हुई है। जिसे यथाशीघ्र पाटने की जरूरत है। हालांकि, इस दिशा में आशातीत प्रगति भी हुई है, लेकिन अभी इस दिशा में बहुत कुछ करने के लिये चरणबद्ध प्रयासों की सख्त जरूरत है। यह चुनौती ग्रामीण भारत में अधिक नजर आती है। जहां इंटरनेट सेवाओं और मोबाइलों की पहुंच शहरों के मुकाबले कम है। जाहिर है, जब देश के हर व्यक्ति तक डिजिटल क्रांति का लाभ पूरी तरह नहीं पहुंच पाएगा, इस क्रांति के लक्ष्य अधूरे ही रहेंगे।

निश्चित रूप से देश में स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग आदि सेवाओं में जो व्यापक सुधार आया है, उसका लाभ हर नागरिक तक पहुंचना जरूरी है। वहीं दूसरी ओर देश में डिजिटल डिवाइड की खाई को पाटने की दिशा में मिशन के रूप में प्रयास जारी हैं। लेकिन हाल में हुए कुछ सर्वेक्षणों के निष्कर्ष चिंता बढ़ाने वाले हैं। इसमें शामिल व्यापक मॉड्यूलर सर्वेक्षण - दूरसंचार, 2025 का उल्लेख करना जरूरी हो जाता है। जिसके अनुसार साल 2025 तक भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली लगभग आधी महिलाओं के पास मोबाइल फोन उपलब्ध नहीं थे।

अन्न के अर्जुन की वाणी

हर्ष राजावत
बिधूना, जिला औरैया (उ.प्र.)

सूरज से पहले उठकर
वो सूरज को जगाता है ,
नमन कर धरती मां को
वह उसे जगाता है।
जब फसल उगाने की ले
वो ठान,
और लगा दे जी जान वह है किसान।
मन में लेकर विश्वास उम्दा बीज में
भरता सांस ,
नहीं होता निराश और लगाता है आस।
लहराती फसल में न आए कोई कमी,
इसलिए अपने पसीने से सींचे वो जमी।
मेहनत से जो किसान करता है प्यार ,
वही देता है हर दाने को आकार।
कथा नहीं यह मैं व्यथा बतलाता हूं,
यूंही नहीं मैं अन्नदाता कहलाता हूं।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063
***
नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453
बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732
पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678
***
हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।
-संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें 0751-4070802
▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 20 ▪ अंक 05 ग्वालियर, अगस्त 2025 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया
कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि.
ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय
पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले
विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा
उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार
कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि
विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और
कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि
और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस
हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- बरसात के दिनों में अमरूद के बगीचों की देखभाल 08
- वर्मी कंपोस्टिंग: कृषि अपशिष्ट से काला सोना 09
- पशुओं में लंगड़ी ज्वर रोग एवं बचाव 10
- सूकर शावकों की देखभाल एवं प्रबंधन 11
- पशुपालन: ग्रामीण भारत की रीढ़ 12
- बकरी पालन: ग्रामीण अर्थव्यवस्था ... 13
- जैविक खाद और रासायनिक उर्वरकों का संतुलन :... 14
- प्राकृतिक खेती से सब्जियों का उत्पादन 15
- खरीफ फसलों की कृषि कार्यमाला 16
- हर्बल चिकित्सा द्वारा मादा पशु बांझपन का प्रबंधन 17
- गाजर घास 18
- नर्सरी प्रबंधन: एक प्रभावी पौध उत्पादन... 19
- प्याज भण्डारण: समस्याएं एवं समाधान 20
- अश्वगंधा की वैज्ञानिक खेती - ... 21
- कद्दूवर्गीय फसलों के सुधार में पारंपरिक... 22
- चूजों में मृत्यु के कारक एवं उनका निवारण 23
- ककोड़ा की व्यवसायिक खेती ... 24
- भैंस पालन: बुनियादी बातें 25
- कृत्रिम मांस: एक नवाचारपूर्ण विकल्प 26
- फ्लोरीकल्चर में कंप्यूटर एडेड डिज़ाइन ... 27
- ऑयस्टर मशरूम की खेती: किसानों की आर्थिक ... 28
- मुर्गियों में ग्रीष्मकालीन तनाव प्रबंधन 29
- बकरियों में फड़किया (एंटेरोटॉक्सिमिया... 30
- खरीफ फसलों का आर्थिक महत्व 31
- गौरी नन्दन गणेश जी के प्रिय फल कैथ एवं जामुन 32
- छत्तीसगढ़ कृषकों के आजीविका में बकरी पालन... 33

उत्तर प्रदेश

- फॉल आर्मीवर्म 34
- नैनो यूरिया और नैनो डीएपी: कृषि में नवाचार... 35
- धान में लगने वाले रोग एवं उनका नियंत्रण 36
- गन्ने में पायरिला या पर्ण फुदका का एकीकृत प्रबंधन 37
- कृषि मौसम विज्ञान संचार और विस्तार 38
- धान की रोपाई: चावल की खेती में एक महत्वपूर्ण कदम 39
- बुंदेलखंड के मौसम में एक उपयुक्त फसल धान 40
- गाँठ गोभी (Knol-khol) की उन्नत खेती 41
- सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती 42
- गृह उद्यमिता: ग्रामीण भारत की आत्मनिर्भरता की कुंजी 43
- मेंथाल मिंट आधारित टिकाऊ खेती में ड्रोन... 44
- तोरई की वैज्ञानिक खेती, कीट, रोग प्रबंधन... 45
- जंगल में औषधीय पौधे 46
- दलहनों का महत्व 47
- फसल बीमा: जोखिम प्रबंधन का एक प्रभावी... 48
- मानसिक विकारों पर विटामिन डी की प्रभावशीलता 49
- खरीफ ऋतु में दलहनी फसलों के प्रमुख कीट 50
- मिट्टी में सूक्ष्मजीवों का महत्व 51
- मक्का की वैज्ञानिक तरीके से खेती ... 52
- पशुओं में बांझपन: एक बढ़ती हुई चुनौती 53
- खुम्भ (मशरूम) के रोग व कीट एवं उनके रोकथाम 54

राजस्थान

- प्राचीन पौध पोषण का पुनर्जागरण:... 55
- कृषि कार्यों में दुर्घटनाओं से बचाव 56
- राजस्थान की जलवायु क्षेत्रों में सब्जियों की संरक्षित खेती 57
- न्यूनतम समर्थन मूल्य और कानूनी प्रवर्तन... 58
- सूक्ष्म सिंचाई: सिंचाई का सबसे कम लागत... 59
- स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे करें 60

बिहार

- कम लागत अधिक मुनाफा-अपनाएं फूलगोभी... 61
- कृषि उत्पादों का फसलोत्तर प्रबंधन और मूल्य संवर्धन... 62
- छत पर बागवानी 63

हरियाणा

- शहरी घरों में बागवानी: छोटे स्थान, बड़ा लाभ 64
- बेल: प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन 65
- कृषि में नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग 66

असम

- भारत की GI-पंजीकृत सब्जियां: जैव विविधता... 67

।। मेरी माटी ।।

कपिल मारन
Ph.D. Scholar,
RVSKVV,
Gwalior (M.P)

माटी री माटी, मेरी प्यारी माटी
क्या है री तेरी लीला
टूट कर तू पाले हमें
रहे हमेशा खंजरों के हवाले

जिद हमारी तुझ पर हावी
फिर भी तू ही क्यों माँगे माफी
देख कर उजड़ा हुआ तेरा दामन
ज़हर से सना आने वाला हर सावन
फूट पड़ी इंसानों में
क्यों झेल रहा तेरा आँगन

लहलहा रही हैं जलती हुईं फसलें
उठ रहा धुआँ अहंकार का
बन रहा बादल विकास का
और बरस रहा पानी विनाश का

जो चाहा हमने वो पाया तुझसे
अब बारी हमारी है
आज बता दे हमें अपनी रज़ा
बोल तुझे क्या बीमारी है

उठाएँगे हम अपने क़दम तुझे फिर से संवारने को
रोशन होगा तेरा ये जहाँ
तेरी ही परछाइयों से

जब मिलेंगे हाथ किसान और विज्ञान के
तब तू भी लेगी अंगड़ाई बड़ी शान से
अब बारी कह कर कुछ करने की नहीं
बल्कि कुछ कर दिखाने की है
मिलकर चले हैं इस विजय पथ पर
तो पक्का जीत हमारी है, पक्का जीत हमारी है ।।

'खेखसी : सावन की ताकतवर और सुपरफूड हरी सब्जी' : सिन्हा

हेमंत कुमार सिन्हा
कृषि वैज्ञानिक

सावन का महीना और बरसात का मौसम कई लोग मांस-मछली का सेवन कम कर देते हैं, ऐसे में प्रोटीन की जरूरत पूरी करने के लिए खेखसी (जिसे पडोरा, चठैला, मीठा करेला, कंकोड़ा या कंटोला भी कहा जाता है) एक बेहतरीन विकल्प है। इसमें मीट से दोगुना प्रोटीन, फाइटोकेमिकल्स, एंटीऑक्सीडेंट, मोमोरडीसिन और फाइबर मौजूद होते हैं, जो शरीर को मज़बूत बनाने के साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। खेखसी केवल एक मौसमी सब्जी नहीं, बल्कि बरसात का सुपरफूड है, जो स्वाद, पोषण और औषधीय गुणों से भरपूर है। सावन में इसे अपनी थाली का हिस्सा बनाने से शरीर को फौलाद जैसी मजबूती और बीमारियों से सुरक्षा मिलती है।

खेखसी हृदय रोग और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों के खतरे को कम करने, सर्दी-खांसी व गले की खराश में राहत देने, रक्त शुद्धि और पाचन सुधारने तथा शुगर नियंत्रण में सहायक है। वजन कम करने वालों के लिए यह बेहद लाभकारी है क्योंकि यह पचने में हल्की और कम कैलोरी वाली होती है। इसकी सब्ज़ी या अचार सप्ताह में 2ङ्क3 बार खाने से शरीर को आवश्यक पोषण मिलता है। ? सकी सब्ज़ी बनाकर या अचार के रूप में सेवन किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसे पारंपरिक औषधि के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता

है। आज इसके अद्भुत गुणों को देखते हुए दुनियाभर में इसकी खेती तेजी से बढ़ रही है, इसलिए इसे मौसमी सब्ज़ी नहीं बल्कि एक प्राकृतिक औषधि और पोषण का खजाना माना जाता है।

खेखसी बनाम मांस व पालक : पोषण तुलना

पोषण तत्व (100 ग्राम में)	खेखसी (कंटोला)	चिकन (मीट)	पालक (हरी सब्ज़ी)
प्रोटीन	7-8 ग्राम	18-20 ग्राम	2-3 ग्राम
फाइबर	4-5 ग्राम	0 ग्राम	2-2.5 ग्राम
कैलोरी	40-45	239	23
वसा (Fat)	0.5-1 ग्राम	13-14 ग्राम	0.4 ग्राम
विटामिन C	35-40 मि.ग्रा.	0 मि.ग्रा.	28-30 मि.ग्रा.
आयरन (Iron)	2-3 मि.ग्रा.	1.3 मि.ग्रा.	2.7 मि.ग्रा.
एंटीऑक्सीडेंट व फाइटोकेमिकल्स	प्रचुर मात्रा	बहुत कम	पर्याप्त मात्रा

01/2023-24

बीज-खाद कालाबाजारी, नकली खाद, नशामुक्ति लखपति दीदी सहित विभिन्न विषयों पर चर्चा

नकली खाद बेचना महापाप, दोषियों पर सख्त कार्रवाई करें: केन्द्रीय कृषि मंत्री शिवराज

भोपाल। केंद्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने विदिशा संसदीय क्षेत्र का दौरा कर रायसेन में 'जिला विकास समन्वय और निगरानी समिति (दिशा)' की बैठक की। बैठक में नशामुक्ति, खाद कालाबाजारी, नकली खाद, प्रधानमंत्री आवास योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत लखपति दीदियों, जल संरचना, ऊर्जा विभाग के कामकाज की प्रगति सहित अन्य जनकल्याण विषयों पर गहन चर्चा हुई।

केन्द्रीय मंत्री श्री चौहान ने जिले में कृषि विभाग के कार्यों की समीक्षा के दौरान योजनावार जानकारी प्राप्त की। उन्होंने निर्देश दिए कि, खाद की कालाबाजारी या नकली खाद बेचकर किसानों के साथ महापाप करने वालों के विरूद्ध सख्त से सख्त कार्रवाई की जाए। उन्होंने जिले में मूंग उपार्जन कार्य की भी जानकारी ली तथा उपार्जन केन्द्रों का निरीक्षण करने के निर्देश दिए। केन्द्रीय मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों से कहा कि रायसेन जिले को विकास और जनकल्याण के मामले में मॉडल बनाएं। जनप्रतिनिधि और अधिकारी

क्षेत्र में भ्रमण करें। जो भी पात्र व्यक्ति योजना के हितलाभ से वंचित रह गया है तो उसे शीघ्र योजना का लाभ दिलाया जाए। निर्माण कार्य समय पर पूर्ण हों इसके लिए सघन मॉनीटरिंग की जाए।

'रायसेन जिले में 43 हजार 613 लखपती दीदियां'

श्री शिवराज सिंह चौहान ने राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के कार्यों की समीक्षा की। उन्होंने जिले में लखपति दीदियों की संख्यात्मक जानकारी लेते हुए कहा कि, अधिक से अधिक महिलाएं, बहनें लखपति दीदी बनें इसके लिए कार्ययोजना बनाकर काम किया जाए। बैठक में जानकारी दी गई कि जिले में 43 हजार 613 लखपती दीदी हैं।

'हर गांव मुख्य मार्ग से जोड़ा जाए'

केन्द्रीय मंत्री ने प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत नवनिर्मित और निर्माणाधीन सड़कों के कार्यों की समीक्षा करते हुए कहा कि जिले में प्रत्येक गांव को मुख्य सड़कों से जोड़ा जाए। बैठक में जानकारी दी गई कि जिले में योजना के तहत वर्ष 2024-25 में 276.236 किमी लम्बाई की 30 सड़कें स्वीकृत की गई जिनमें से 28 सड़कों का निर्माण कार्य पूर्ण हो गया है। इसी प्रकार योजना के तहत स्वीकृत किए गए 13 पुलों में से 09 पुलों का कार्य पूर्ण हो गया है। बैठक में एनएचएआई के कार्यों की भी समीक्षा की गई। केन्द्रीय मंत्री श्री चौहान ने कृषि अधिकारियों को निर्देश दिए कि, कृषि विभाग का अमला खेतों का भ्रमण करें और फसल में रोग की समस्या होने पर किसानों को उचित कीटनाशक के प्रयोग की जानकारी दें। इसके अतिरिक्त कृषि विज्ञान केन्द्र के माध्यम से किसानों को खेती की उन्नत और नवीनतम तकनीकों की जानकारी दी जाए। केंद्रीय मंत्री ने रबी फसल हेतु अभी से तैयारियां करने के भी निर्देश दिए।

इन्फ्लूएंसर प्रदेश के पर्यटन क्षेत्र को देश और दुनिया के सामने लाएं

भोपाल। उपमुख्यमंत्री राजेंद्र शुक्ल ने इन्फ्लुएंसर्स से कहा कि मप्र जैव विविधताओं से समृद्ध प्रदेश हैं। विंध्याचल प्राकृतिक सौंदर्य से आच्छादित हैं। यहां के जलप्रपात विदेशों से भी अच्छे हैं। उन्होंने इन्फ्लुएंसर्स से आग्रह किया कि प्रदेश के पर्यटन क्षेत्र को देश और दुनिया के सामने लाने हेतु सहभागी बनें और अपने कॉटेंट में विंध्य क्षेत्र के पर्यटन स्थलों की खूबसूरती को भी शामिल करें। इस अवसर पर मध्यप्रदेश के अनछुए और दर्शनीय स्थलों को बढ़ावा देने और प्रदेश के पर्यटन को डिजिटल माध्यम से देश-दुनिया से अवगत कराने के उद्देश्य से रीवा टूरिज्म कॉन्क्लेव के अंतर्गत रीवा स्थित होटल सायाजी में 'एमपीटी इन्फ्लुएंसर मीट' का आयोजन किया। इस मीट में प्रदेश के साथ-साथ अन्य राज्यों के सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स ने हिस्सा लिया।

12/2025-26

केंद्र सरकार ने किसान हित में लिया बड़ा फैसला

पीएम कृषि संपदा योजना के लिए 6520 करोड़ की मंजूरी

नई दिल्ली

....

केंद्र सरकार ने किसानों एवं रेलवे से जुड़े छह बड़े फैसले लिए। पीएम किसान संपदा योजना के लिए 1920 करोड़ के अतिरिक्त व्यय सहित कुल 6520 करोड़ रुपये के खर्च की मंजूरी दी। यह निर्णय 15वें वित्त आयोग (2021-22 से 2025-26) के दौरान इस योजना के प्रभावी कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए लिया गया है।

सरकार ने राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम को दो हजार करोड़ रुपये के वित्तीय समर्थन की मंजूरी दी है। इससे संगठन को कर्ज देने के लिए अधिक कोष जुटाने में मदद मिलेगी। पीएम किसान संपदा योजना की कुल राशि में से एक हजार करोड़ दो प्रमुख योजनाओं में खर्च होंगे। इसमें विभिन्न फसलों को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए 50 इकाइयों का निर्माण होगा। इनकी क्षमता 20 से 30 लाख टन खाद्य संरक्षण की होगी। इसी तरह

खाद्य सुरक्षा मानकों में सुधार के लिए सौ परीक्षण प्रयोगशालाएं खुलेंगी। इससे खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में बुनियादी ढांचे का विकास किया जाएगा। कृषि उपज के संरक्षण, मूल्य संवर्धन एवं वैश्विक मानकों के अनुरूप प्रसंस्कृत खाद्य निर्यात को प्रोत्साहित किया जाएगा। निजी क्षेत्र की भागीदारी से रोजगार और निवेश को भी बढ़ावा मिलेगा। सहकारी समितियों को आत्मनिर्भर बनाने की पहल करते हुए केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) को 2025-26 से 2028-29 तक चार वर्षों के लिए दो हजार करोड़ रुपये की अनुदान सहायता योजना को मंजूरी दी है। इसके तहत निगम को प्रत्येक वर्ष पांच सौ करोड़ रुपये की सहायता दी जाएगी, जिसके आधार पर वह बाजार से 20 हजार करोड़ रुपये जुटा सकेगा। इस पैसे का इस्तेमाल सहकारी समितियों को नई परियोजनाएं शुरू करने, संयंत्रों के विस्तार, तकनीकी उन्नयन एवं कार्यशील पूंजी के लिए कर्ज देने में किया जाएगा। सरकार की इस योजना से देशभर की 13,288 सहकारी समितियां लाभान्वित होंगी, जिनमें करीब दो करोड़ 90 लाख सदस्य शामिल हैं। केंद्रीय कैबिनेट की बैठक के बाद सूचना प्रसारण मंत्री अश्विनी वैष्णव ने मीडिया को बताया कि यह योजना सहकारी समितियों को आत्मनिर्भर बनाएगी, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाएगी और महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करेगी।

जैविक कृषि, कोदो-कुटकी और उन्नत खेती के लिए किसानों को करें जागरूक

रायपुर। कृषि तथा किसान कल्याण और आदिम जाति विकास मंत्री रामविचार नेताम ने जिला मुख्यालय कांकेर में बालोद, धमतरी और कांकेर के अधिकारियों की बैठक लेकर दोनों विभागों की योजनाओं की प्रगति की समीक्षा की। उन्होंने तीनों जिलों में बीज एवं उर्वरक वितरण तथा किसानों के लिए संचालित कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन की जानकारी ली। उन्होंने जैविक कृषि, कोदो-कुटकी और उन्नत खेती के लिए किसानों के बीच इनसे संबंधित योजनाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार के निर्देश दिए। उन्होंने इस बारे में किसानों को लगातार जागरूक और प्रेरित करने को कहा। विधायक आशाराम नेताम और आदिवासी विकास विभाग के आयुक्त डॉ. सारांश मित्तर भी समीक्षा बैठक में शामिल हुए। कृषि मंत्री रामविचार नेताम ने सहकारी समितियों में भंडारित उर्वरकों को किसानों की मांग के अनुसार तत्काल वितरित करने के निर्देश दिए। उन्होंने कृषि एवं उद्यानिकी फसलों को और अधिक उन्नत बनाने तथा इनसे जुड़ी योजनाओं की पहुंच सभी किसानों तक सुनिश्चित करने को कहा। उन्होंने रासायनिक उर्वरकों से मृदा को होने वाले दुष्प्रभावों से किसानों को जागरूक करने को कहा। उन्होंने उद्यानिकी के क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने युवाओं को रिफ्रेशर प्रशिक्षण एवं तकनीकी जानकारी देने को भी कहा। श्री नेताम ने मुनगा, ऑयल पॉम, कोदो-कुटकी जैसे रोजगारमूलक फसलों का क्षेत्र बढ़ाने पर जोर दिया।

बाँस के टिशू कल्चर के माध्यम से सूक्ष्म प्रजनन पर प्रशिक्षण संपन्न

रायपुर। इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर के आणविक जीवविज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग में आयोजित पाँच दिवसीय "बाँस के टिशू कल्चर के माध्यम से सूक्ष्म प्रजनन पर क्षमता निर्माण प्रशिक्षण कार्यक्रम" का यहां समापन हुआ। समापन समारोह के मुख्य अतिथि इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. गिरीश चंदेल थे। समारोह की अध्यक्षता कृषि महाविद्यालय रायपुर की अधिष्ठाता डॉ आरती गुहे ने की। यह कार्यक्रम युवा शोधकर्ताओं, तकनीकी कर्मचारियों और स्नातकोत्तर छात्रों के बीच बाँस सूक्ष्मप्रजनन की व्यावहारिक दक्षता और वैज्ञानिक समझ को बढ़ाने हेतु डिज़ाइन किया गया था।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता : अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/203-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. द्वारका सहायक प्रोफेसर(अतिथि), कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना

निशा चढ़ार एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़

डॉ. गगनदीप सिंह पटेल प्रसार शिक्षा एवं संचार विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना

बरसात के दिनों में अमरूद के बगीचों की देखभाल

सारांश: बरसात के दिनों में अमरूद के बगीचों की देखभाल अत्यंत आवश्यक होती है क्योंकि इस मौसम में नमी अधिक होने के कारण जल जमाव, कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। अच्छे जल निकासी की व्यवस्था, समय पर खरपतवार नियंत्रण, कीट एवं रोगों का प्रबंधन, संतुलित उर्वरक और जैविक उपायों का उपयोग, साथ ही नियमित निरीक्षण द्वारा पौधों की रक्षा की जाती है। इन उपायों से पौधों को स्वस्थ रखा जा सकता है और फलों की गुणवत्ता व उत्पादन को बनाए रखा जा सकता है।

परिचय

अमरूद एक बहुपयोगी और पोषक तत्वों से भरपूर फल है, जो भारत के लगभग सभी भागों में उगाया जाता है। बरसात के मौसम में अमरूद के पौधों की देखभाल अत्यंत आवश्यक होती है क्योंकि यह मौसम नमी से भरपूर होता है और कई प्रकार की बीमारियों व कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। यदि इस मौसम में उचित प्रबंधन नहीं किया गया, तो उत्पादन में भारी गिरावट आ सकती है।

जल निकासी की व्यवस्था

* बरसात के मौसम में सबसे पहला काम होता है सही जल निकासी सुनिश्चित करना। अमरूद के पौधों की जड़ें ज्यादा समय तक पानी में डूबी रहें तो जड़ सड़न जैसी बीमारियां हो सकती हैं। * खेत की मेड़ें ऊँची रखें। * हर पौधे के चारों ओर हल्का सा ढलान बनाएं ताकि पानी जमा न हो। * नालियों की नियमित सफाई करें।

खरपतवार नियंत्रण

* बरसात में खरपतवार तेजी से बढ़ते हैं जो पोषक तत्वों और नमी में पौधों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। * हाथ से निराई या हल्की गुड़ाई करें।* मल्चिंग करें जिससे नमी बनी रहे और खरपतवार कम हो।* जरूरत पड़ने पर सुरक्षित शाकनाशी का उपयोग करें।

कीट और रोग नियंत्रण

बरसात के मौसम में कीट और रोग बहुत तेजी से फैलते हैं। कुछ मुख्य समस्याएं-

(क) अमरुद के कीट-

फलों की मक्खी - अंडे फल में देती है जिससे फल सड़ने लगता है।

उपाय- प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 2 से 2 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव, फलों की शीघ्र तुड़ाई। फेरोमोन ट्रैप्स लगाएं।

छाल भक्षक - पौधे की छाल में छेद कर नुकसान करता है।

उपाय- प्रभावित स्थान पर कीटनाशक का इंजेक्शन देना।

(ख) अमरुद के रोग-

पत्ती झुलसा - पत्तियों पर धब्बे और झुलसन के लक्षण।

उपाय- कॉपर ऑक्सीक्लोराईड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव।

जड़ सड़न -

उपाय- ट्राइकोडर्मा 50 ग्राम प्रति पौधा मिट्टी में मिलाएं।

खाद और उर्वरक प्रबंधन

* बरसात के मौसम में पोषक तत्व तेजी से बह जाते हैं, अतः इन्हें पुनः डालना आवश्यक है। * गोबर की खाद या कम्पोस्ट 15-20 किग्रा प्रति पौधा दें। * नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का संतुलित उपयोग करें। * जैविक उर्वरक जैसे वर्मी कम्पोस्ट या नीम खली का भी प्रयोग करें।

टहनियों की छंटाई-

* बरसात की शुरुआत में सुखी, रोगग्रस्त और कमजोर शाखाओं को काट देना चाहिए। * इससे पौधों में वायु संचार अच्छा होता है और रोगों की संभावना कम होती है।

फूल और फल संरक्षण

* फूलों की सुरक्षा के लिए समय पर कीटनाशक और रोगनाशक का छिड़काव करें। * फलों के पास थैलियां या जालियां लगाई जा सकती हैं ताकि मक्खियों से सुरक्षा हो। * फलों का समय पर तुड़ान बहुत जरूरी है वरना वे फट सकते हैं या सड़ सकते हैं।

पौधों की मजबूती और देखभाल

* बरसात के मौसम में तेज हवाएं चलती हैं, जिससे पौधे गिर सकते हैं। पौधों को सहारा दें। * छोटे पौधों के आसपास मिट्टी चढ़ा कर उन्हें मजबूती प्रदान करें।

जैविक उपाय और प्राकृतिक संरक्षण

* नीम का तेल 1 से 2 मिली प्रति लीटर पानी या बायोपेस्टीसाईड 5 से 10 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। * खेत की मेड़ों पर फूलदार पौधे लगाएं ताकि प्राकृतिक शत्रु कीट आकर्षित हों।

समय पर निगरानी

* सप्ताह में कम से कम दो बार पौधों का निरीक्षण करें।* कोई भी रोग या कीट का प्रारंभिक लक्षण मिलने पर तुरंत उपचार करें।

बरसात के बाद की देखभाल

* बारिश रुकने के बाद मिट्टी की हल्की गुड़ाई करें ताकि मिट्टी का जमाव न हो।* फिर से खाद और उर्वरक डालें, और रोगनाशक का छिड़काव करें। * आगामी फलधारण की तैयारी हेतु संतुलित पोषण जारी रखें।

निष्कर्ष: बरसात के मौसम में अमरूद के बगीचों की देखभाल में थोड़ी सी लापरवाही भी भारी नुकसान पहुंचा सकती है। जल निकासी, कीट एवं रोग प्रबंधन, पोषण तथा नियमित निरीक्षण जैसे उपायों को अपनाकर हम अमरूद के पौधों को स्वस्थ रख सकते हैं और अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

12/2022-23

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍ रश्मिता सोनारे पीएचडी स्कॉलर (विस्तार शिक्षा विभाग)
✍ डॉ. सीमा नबेरिया विस्तार शिक्षा विभाग,
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

वर्मी कंपोस्टिंग: कृषि अपशिष्ट से काला सोना

वर्मीकम्पोस्ट एक समृद्ध जैविक पदार्थ है, जो सूक्ष्मजीवों की सक्रियता और पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। यह न केवल फसल की पैदावार बढ़ाने में सहायक है, बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य को भी बनाए रखता है। अकार्बनिक उर्वरकों की तुलना में, वर्मीकम्पोस्ट कृषि भूमि से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने में अधिक प्रभावी होता है, जिससे यह एक पर्यावरण हितैषी विकल्प बनता है। वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से टिकाऊ फसल उत्पादन संभव है, क्योंकि यह मिट्टी की उर्वरता बनाए रखते हुए निरंतर फसल उत्पादन में आने वाली बाधाओं को कम करता है। यह मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को सुधारता है। वर्मीकम्पोस्ट के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में हुए सुधार से फसल उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। इसके अतिरिक्त, पौधों की पोषक उपलब्धता और वानस्पतिक वृद्धि में भी स्पष्ट रूप से सुधार होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के मुख्य उद्देश्य हैं:

* पोषक तत्वों की कमी वाली मिट्टी को उच्च गुणवत्ता वाली खाद देने के लिए जैविक कचरे को खाद में बदलना और साथ ही ठोस जैविक कचरे का निपटान करना।
* कृषि कार्यों, डेयरी फार्मों और पशु आश्रयों द्वारा उत्पादित जैविक कचरे की एक बड़ी मात्रा जिसे आमतौर पर कचरे के रूप में त्याग दिया जाता है और जो एक अप्रिय गंध उत्सर्जित करता है, उसे सही तरीके से खाद बनाकर अतिरिक्त मूल्य के साथ अंतिम उत्पाद बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट की पोषक सामग्री:

पैरामीटर	पोषक सामग्री
पीएच	6.8
कार्बनिक कार्बन %	11.88
कार्बनिक पदार्थ %	20.46
सी : एन अनुपात	25–30
कुल नाइट्रोजन (%)	1.02
उपलब्ध नाइट्रोजन (%)	0.50
उपलब्ध फॉस्फोरस (%)	0.30
उपलब्ध पोटेशियम (%)	0.24
Ca (%)	0.17
Mg (%)	0.06

केंचुओं के प्रकार: लगभग 3600 प्रकार के केंचुए हैं जिन्हें बिल खोदने वाले और बिल न खोदने वाले प्रकारों में विभाजित किया गया है। लाल केंचुए की प्रजातियाँ, जैसे आइसेनिया फेटिडा, खाद बनाने में सबसे कुशल हैं। बिल न खोदने वाले केंचुए 10 प्रतिशत मिट्टी और 90 प्रतिशत जैविक अपशिष्ट पदार्थ खाते हैं, ये जैविक अपशिष्ट को बिल खोदने वाले केंचुओं की तुलना में अधिक तेज़ी से वर्मीकंपोस्टिंग में बदल देते हैं। जबकि बिल खोदने वाले केंचुए केवल रात में मिट्टी की सतह पर आते हैं, ये मिट्टी में 3.5 मीटर की गहराई तक छेद करते हैं और 90 प्रतिशत मिट्टी और 10 प्रतिशत जैविक अपशिष्ट को निगलकर 5.6 किलोग्राम कास्ट बनाते हैं। प्रत्येक केंचुए का वजन लगभग 0.5 से 0.6 ग्राम होता है। इसका ऊष्मायन काल 26- 27 दिन का होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के प्रकार: उत्पादन की मात्रा और खाद बनाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली संरचनाएँ वर्मीकंपोस्टिंग के विभिन्न प्रकारों को निर्धारित करती हैं।

छोटे पैमाने पर वर्मीकंपोस्टिंग: जब व्यक्तिगत ज़रूरतों के हिसाब से वर्मीकंपोस्टिंग छोटे पैमाने पर की जाती है, तो एक किसान प्रति वर्ष 5 से 10 टन वर्मीकंपोस्ट एकत्र कर सकता है।

बड़े पैमाने पर वर्मीकंपोस्टिंग: इसे व्यावसायिक पैमाने पर किया जाता है, जिससे प्रति वर्ष 50 से 100 टन जैविक अपशिष्ट उत्पन्न होता है।

वर्मीकंपोस्टिंग के तरीके: वर्मीकंपोस्ट बनाने के कई तरीके हैं, लेकिन बेड और पिट (गड्ढा) प्रक्रिया सबसे लोकप्रिय हैं।

बेड विधि: 6×2×2 फीट माप वाले जैविक पदार्थ का बेड बनाकर, पक्के या कच्चे फर्श पर खाद बनाई जाती है। इस दृष्टिकोण को बनाए रखना और उपयोग करना सरल है।

गड्ढा विधि: 5×5×3 फीट आकार के और सीमेंट से बने गड्ढों में खाद बनाना गड्ढा विधि है। संरचना को ढकने के लिए घास या किसी अन्य देशी सामग्री का उपयोग किया जाता है। यह विधि पसंद नहीं की जाती है क्योंकि इससे अधिक कचरा उत्पन्न होता है, वायु संचार खराब होता है और उत्पादन में अधिक लागत आती है।

वर्मीकंपोस्टिंग: वर्मीकंपोस्ट (केंचुआ खाद) तैयार करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद प्राप्त की जा सके:

जैविक अपशिष्ट का चयन: पशु मल, रसोई का कचरा और अन्य जैविक अपशिष्टों को 50:50 के अनुपात में मिलाकर विघटित करें।

साइट का चयन: वर्मीकंपोस्टिंग स्थल छायादार, ठंडा और उच्च आर्द्रता वाला होना चाहिए। यह स्थान सड़क, जल स्रोत और बिजली आपूर्ति के समीप होना चाहिए।

3.केंचुओं की प्रजाति: (आइसीना फोटिडा) प्रजाति को प्रयोग करें, जो हर 3 दिन में एक कोकून देती है।

4.बेड का आयाम व डिजाइनः आदर्श बेड का आकारः 8 फीट म 4 फीट म 2.5 फीट होना चाहिए। बेड बाथरूम की तरह दो तरफा ढलान वाला हो, ताकि अतिरिक्त पानी निकल सके। एक बेड के लिए 1.5 से 2.0 क्विंटल कच्चे जैविक पदार्थ की आवश्यकता होती है।

5.बेड की सामग्री: बेड की सामग्री भारी होनी चाहिए, जिसमें जल अवशोषण क्षमता अधिक हो और ष्टःह्र अनुपात कम हो। ताजा घास और ताजा गोबर का उपयोग नहीं करना चाहिए।

6.केंचुओं की मात्रा: गड्ढे में 4 किलोग्राम/वर्ग मीटर की दर से केंचुए डाले जाएं।

7.नमी और ढकाव: मिश्रण को बोरियों से ढकें, ताकि नमी बनी रहे। बोरियों पर नियमित रूप से पानी का छिड़काव करें, जिससे मिश्रण की नमी 40-50% बनी रहे।

8.हवा संचार व मिलावट: वायु संचार बनाए रखने और समुचित विघटन के लिए 30 दिन बाद मिश्रण को एक बार पलटें।

9.खाद की प्राप्ति: सामान्यतः वर्मीकंपोस्ट 40-45 दिनों में तैयार हो जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ:

पौधों की जड़ों का विकास: वर्मी कम्पोस्ट पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराकर उनके समग्र विकास में सहायक होता है। इससे बीजों का अंकुरण शीघ्र होता है, पौधे तेजी से बढ़ते हैं, मजबूत जड़ प्रणाली विकसित होती है और उपज में होती हैं।

मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार: वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से मिट्टी की संरचना ढीली, भुरभुरी और वायु-संचारी बनती है, जिससे जड़ों को विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है।

उर्वरता एवं जल-धारण क्षमता में वृद्धि: यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के साथ-साथ उसकी जल-धारण क्षमता और सूखा-प्रतिरोधकता में भी सुधार करता है।

अंकुरण, वृद्धि एवं उपज में सहायक: वर्मी कम्पोस्ट बीजों के अंकुरण, पौधों की वृद्धि और फसल उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विकास हार्मोनों की उपस्थिति: वर्मी कम्पोस्ट में ऑक्सिन, जिबरेलिक एसिड जैसे प्राकृतिक वृद्धि हार्मोन पाए जाते हैं, जो पौधों के समुचित विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग की सीमाएं:

समय की खपत: केंचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया पारंपरिक खाद बनाने की विधि की तुलना में धीमी हो सकती है, इसमें जैविक पदार्थों को विघटित करने में छह महीने या उससे अधिक समय लग सकता है।

गंध और कीट: यदि ठीक से प्रबंधित नहीं किया जाता है, तो केंचुआ खाद बनाने की प्रणाली अप्रिय गंध छोड़ सकती है, और मक्खियों और अन्य कीटों जैसे कीटों को आकर्षित कर सकती है।

तापमान और नमी नियंत्रण: केंचुओं को विशिष्ट तापमान और नमी की आवश्यकता होती है, इसलिए इष्टतम कृमि गतिविधि और अपघटन के लिए इन कारकों को सावधानीपूर्वक बनाए रखा जाना चाहिए।

स्थान की आवश्यकताएँ: केंचुआ खाद बनाने के डिब्बे या सिस्टम के लिए स्थान की आवश्यकता होती है, जो सीमित क्षेत्रों वाले लोगों के लिए एक बाधा हो सकती है।

रासायनिक संवेदनशीलता: केंचुआ कुछ रसायनों, विशेष रूप से अमोनिया के प्रति संवेदनशील होते हैं, जो खाद बनने वाले कार्बनिक पदार्थों के प्रकारों को सीमित कर सकते हैं।

पशुओं में लंगड़ी ज्वर रोग एवं बचाव

रवि सिकरोडिया, दलजीत छाबड़ा
राखी गांगिल, जोयसी जोगी राकेश
शारदा एवं अमोल रोकड़े पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू (म.प्र.)

पशुओं में होने वाला यह एक तीव्र संक्रामक जीवाणु जनित रोग है जिसमें मुख्यत: गाय व भैंस प्रभावित होती है। अधिक दूध देने वाले पशुओं में यह रोग मुख्य रूप से देखा गया है। इस बीमारी में रोगी पशुओं मे अत्यधिक बुखार, मासपेशीयों में सडन युक्त सूजन, जहरवाद तथा उपचार न मिलने पर मृत्य हो जाना प्रमुख लक्षण है।

कारण

यह रोग एक ग्राम पॉजिटिव क्लोस्टीडियम च्योविआई नामक बैक्टीरिया से होता है। यह एक स्पोर बनाने बाला वैक्टीरिया है जो कि ऑक्सीजन की अनुपस्थिती में स्पोर बनाता है। यह जीवाणु टॉक्सिन उत्पन्न करता है। जो कि बीमारी के लक्षण उत्पन्न करता है इस जीवाणु के स्पोर अनेक मैदानों में पाए जा सकते है जहां जानवर घास चरने के लिए जाते है व, बीमारी से संक्रमित हो जाते है।

* यह मुख्य रूप से गाय व भेंस मे पाया जाता है। कभी -कभी यह बकरियों तथा घोडों मे देखा गया है। 6 माह से 2 वर्ष आयु तक के पशु मुख्य रूप से अधिक संवेदनशील होते है। परंतु नवजात बछड़ों व वृदध पशुओं में भी हो सकता है।
* स्वेदनशील पशुओं मे रोग दूषित चारागाहों और पशुशालाओं द्वारा हो सकता है। रोग मुख्यरूप से दूषित भूमि, भोजन, पानी व घावों द्वारा होता है। जानवरों में बधिया करने तथा अन्य शल्य क्रिया द्वारा भी यह रोग फैलता है।

लक्षण

* अत्याधिक बुखार आना (106-108° F)
* जानवरों के भारी मस्ल्स मास्पेशी वाले स्थानो पर जैसे कि पुट्ठों, गर्दन, जाघों मे चरचराहट की ध्वनि आने लगती है जो बीमारी को पहचानने का सबसे प्रमुख लक्षण है।
* प्रभावित जानवर लगडाकर चलने लगता है।
* खाना व पीना कम कर देता है।
* सांस तेज चलने लगती है।
* पशु जुगाली करना बन्द कर देते है।
* प्रभावित व मासपेशियों में सूजन आ जाती है। व पूरा एरिया नीला दिखाई देता है।
* अगर पशु को इलाज न मिले तो दो से 3 दिन में पशु की मृत्यु हो जाती है।

रोग की पहचान

* रोग का सही सही पता लगाने के लिए हमें पशु के मालिक से रोग के सबंध में समस्त जानकारी प्राप्त करना चाहिए। अगर पशु की उम्र 6 माह-2 वर्ष है, तेज ज्वर, वातावरण नम होना, पशु का लंगड़ा कर चलना रोग की पहचान में सहायक है।

जीवाणु का पृथकीकरण

प्रयोगशाला से पता किया जा सकता है। स्टेनिग व विभिन्न मीडिया पर जीवाणु का कल्चर करके 100% बीमारी को सुनिश्चित किया जा सकता है।

उपचार

* बीमारी के लक्षणो का पता चलते ही पशु को किसी वेटनरी डाक्टर के पास ले जाना चाहिए व तुरंत उपचार कराना प्रारंभ कराना चहिए।
* इस बीमारी में Penccillin 2000-4000 units/ oxyteracydine Autibiotic को उपयोग करना चाहिए।
* लक्षण के आधर पर बुखर व दर्द का इलाज भी करना चाहिए

बचाव व रोकथाम

प्राकृतिक रूपे से रोग के प्रति प्रतिरक्षा नही होती है अत: अपने पशुओं को समय पर इस बीमारी का टीका लगवाना चाहिए। गोवशं को पशुओं में 5 ml s/c Route से टीका लगाया जाता है लगभग 2 सप्ताह मे प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है तथा एक वर्ष तक रहती है। अतः प्रतिवर्ष वर्षाऋतु के आने से पहले अपने 6 माह से 2 वर्ष के सभी पशुओं को इस बीमारी का टीका लगवाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में यह बीमारी अत्याधिक होने की सभांवना होती है। वहा कम आयु के बछडो में भी यह टीका लगाया जा सकता है।

बीमारी को फैलाने से रोकने के लिये निम्न उपाए करना चाहिए-

1. मृत पशुओं को गड्ढा खोदकर चूना डालकर दबा देना चाहिए।
2. बीमारी से मृत हुए जानवर की खाल को नही उतारना चाहिए।
3. संवेदनशील क्षेत्र में जानवरों को चरने के लिए नही भेजना चाहिए।
4. अगर संक्रमित पशु की पहचान हो गई है ता उसे प्रथक कर देना चाहिए एवं उसके खाने व पीने का प्रवंध अलग से करना चाहिए।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2023-24

सूकर शावकों की देखभाल एवं प्रबंधन

मोहब्बत सिंह जमरा, संदीप नानावटी
नवलसिंह रावत, निर्मला जमरा
कार्तिकेय सिंह जादौन
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, इन्दौर
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय,जबलपुर (म.प्र.)

सुअर पालन एक लाभदायक व्यवसाय है। लेकिन इसमे सफलता के लिए जन्म के उपरांत शावकों का उचित देखभाल एवं प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होती है। इस समय देखभाल न मिलने पर मृत्यु दर अधिक हो सकती है। जिससे पालक को आर्थिक नुकसान होता है। शावकों की मृत्यु को प्रमुख दो कारकों में बांटा जा सकता है। पहला कारण माँ का बच्चों के ऊपर बैठने या लेटना से होते है, जिसके कारण बच्चे कुचल जाते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है साथ साथ शावक भूख के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मृत्यु प्राप्त शावकों में से प्रायः 50 प्रतिशत शुकरों के शावको की मृत्यु प्रथम तीन दिन में ही हो जाती है। अतः सुअर पालको को शावकों के जन्म के उपरांत उचित एवं गहन देखभाल करने का अति आवश्यक होती है।

आवास

शूकर शावकों को जन्म के बाद उनकी मां के पास रखना चाहिए परंतु आवास में एक क्रिप ऐरिया होना चाहिए जिसमे शावकों के लिए अलग से खाना खिला सके व शांति से रह सके और प्रसूति सुअरी के गृह में दिवार के चारों ओर दीवार से 9 इंच अलग व जमीन से 9 इंच ऊपर एक की 3 इंच मोटी बल्ली की रूप बनी होनी चाहिए जिसे गार्ड रेल कहते है जो कि शूकर शावकें अपना मां के शरीर के नीचे आकर अक्सर मर जाते हैं।

प्रसव बाड़े का तापमान

वयस्कों की तरह शावकों में तापमान को नियंत्रित करने की क्षमता नहीं होती है इस कारण कमजोर शावकों की मृत्यु ठंड के दिनों में ठंड लगने से हो जाती है। अतः शुकर पालक बंधुओ को शुकर के बाड़े में हीटर या 200 वाट का बल्ब जलाकर तापमान का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

शावकों को तेली व खीज का पान

शुकरों के शावक जन्म से बहुत नाजुक होते है उनके शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमताऐ नगण्य होती है इस कारण प्रथम दुग्ध जो कि शावक के जन्म के उपरांत एवं 24 घंटे तक माँ की दुग्ध ग्रिथिओं द्वारा स्त्रावित होता है उसमें ढेर सारे रोग प्रतिरक्षी अवयव होते हैं जो कि शावकों को विभिन्न प्रकार की बिमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। ध्यान रखे कि समस्त शावकों को सामान्य रूप से खीज की प्राप्ति हो। सबसे अधिक दूध सामान्य एवं मजबूत शावक को मिलता है और कमजोर एवं असामान्य शावक दूध से वंचित रह जाता है। इस कारण पशु पालकों को शावक के जन्म के उपरांत शावको को दो भागों में विभक्त करना चाहिए और बारी बारी से दोनों वर्गों को दिन मे 8-10 बार दुग्ध पान करवाना चाहिए सर्व प्रथम असमान्य एवं तदुपरांत सामान्य शावकों को दुग्ध पान करवाना चाहिए। यह प्रक्रिया बाद के दिनों में भी दोहराई जानी चाहिए शुकर के गर्भ धारण एवं प्रसव उपरांत शुकर के खान पान का अत्यधिक ध्यान रखना चाहिए जिससे कि पर्याप्त दुग्ध का उत्पादन हो सके और समस्त शावकों को सम्पूर्ण आहार मिल सके इस प्रक्रिया द्वारा शावकों की मृत्यु को कम किया जा सकता है।

शावकों को खुराक

उम्र	आहार
0-1 सप्ताह	केवल मां का दूध, 8-10 बार प्रतिदिन
1-3 सप्ताह	दूध एवं क्रीप राशन 24 फीसदी प्रटीन
3-5 सप्ताह	अधिक मात्रा मे राशन 18 फीसदी प्रटीन एंव दूध कम
5-8 सप्ताह	दूध छुड़ाना, राशन 18 फीसदी प्रटीन

शावकों का एनीमिया से बचाव

शूकर शावकों के जन्म के उपरांत प्रारंभिक अवस्था में खून की कमी के कारण (पिगलेट एनीमिया) मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। इसका मुख्य कारण लोह तत्व की कमी होना है। इस कमी को दूर करने के लिए शुकर पालक बन्धुओं को मादा शूकर के स्तन पर खनिज पदार्थ का लेपन करना चाहिए इसके साथ ही प्रत्येक शावक को इन्फेरौन का इंजेक्शन 1.0 मि.ली. प्रति शावक की दर से अंतःपेशीय (इंट्रामस्कुलर) 01-03 दिन का उम्र मे लगाना चाहिए।

पहचान बनाना

शूकर शावकों के जन्म के 7- 8 दिनों बाद पहचान के लिए नम्बर उसके कान काटने की मशीन, कान छेदने की मशीन व टैगिंग मशीन से करना चाहिऐ। जिससे सभी सुकर का सही तरह से आहार, चिकित्सा व वजन इत्यादि का पता चल जाता है।

शावकों के दांतों का कर्तना

जन्म से शावकों के जवड़ो के के मुंह में आठ नुकीले दांत होते हैं जिससे मां के थनों को नुकसान हो सकती है। जन्म उपरांत दूध के आधिपत्य हेतु ये एक दुसरे से लड़ते हैं और एक दुसरे को बुरी तरह से जख्मी कर देते हैं जिस कारण कमजोर शावकों की मृत्यु हो जाती है। इससे बचाव हेतु जन्म के 7-8 दिनों के भीतर इन शावकों के दांतों को क्लिपर की सहायता से कर्तन किया जाना अति आवश्यक है।

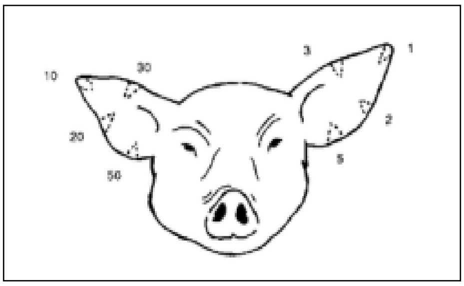

कृमिनाशक दवाई

शूकर शावकों के कृमिनाशक दवाई 60 दिन0 में खिलाकर तीन माह के अंतराल में खिलाते रहना चाहिऐ जिससे पेट के अंदर के कृमि नष्ट हो जाएंगे व बच्चों में वृद्धि दर व विकास अच्छा होने के साथ ही मृत्यु दर में कमी आएगी।

शावक की पूंछ काटना

जन्म उपरांत दो से तीन दिन के अन्दर शावकों की पूछ को काट देना चाहिए। अगर पूंछ को न कटा जाये तो ये एक-दूसरे से लड़ते समय पूछ को जख्मी कर देते हैं और इससे उनकी मृत्यु भी हो सकती है। कटे हुए पूँछ पर चार से पांच दिन एंटी सेप्टिक मलहम लगाना चाहिए।

शावकों का बधियाकरण

नर शूकर शावक जिन्हें प्रजनन के लिए नहीं उपयोग करना है उसे 4-6 सप्ताह की आयु में बधियाकरण करना चाहिए जिससे वृद्धि दर व विकास अच्छा होता है। इसके लिए शावकों को उनके पिछले पैर से उठा लिया जाता है एवं दो चीरे अंडकोष के दोनों तरफ लगाये जाते है। अंगूठे और तरजनी के दवाव से वृषण को अंडकोष से बाहर निकाल दिया जाता है और खीच कर अंडकोष से अलग कर दिया जाता है। तदुपरांत कोई भी एंटीबायोटिक का घोल अंडकोष में डाल दिया जाता है और तीन से चार दिन तक उक्त घाव की ड्रेसिंग की जाती है, जिससे की संक्रमण को रोका जा सके तथा सही समय पर घाव भर जाये।

मां से अलग करना

शूकर शावक को मां से 7-8 सप्ताह मे अलग कर देना चाहिए। इससे मा सुअर का स्वास्थ्य बेहतर हाती है व शावक ठोस आहार के लिए तैयार होते है जिससे उनकी विकास दर बढ़ती है और बीमातियो का खतरा कम होता है।

पशुपालन : ग्रामीण भारत की रीढ़

डॉ. रश्मि सिंह (Department of Animal Nutrition)
डॉ. शुभम शर्मा (Department of Livestock Production and Management)
डॉ. ऊषा जायसवाल (Department of Microbiology)
डॉ. प्रिया पचौरी (Department of Veterinary Anatomy)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की 65% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। खेती के साथ-साथ पशुपालन (Animal Husbandry) ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। यह न केवल आय का स्थायी स्रोत है बल्कि पोषण, उर्वरता, जैविक खेती, और ऊर्जा का भी आधार है।

आज के बदलते समय में पशुपालन सिर्फ परंपरागत नहीं, बल्कि एक व्यावसायिक और वैज्ञानिक क्षेत्र बनता जा रहा है। सरकार भी विभिन्न योजनाओं और सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से इस क्षेत्र को सशक्त बना रही है।

पशुपालन के मुख्य स्वरूप

1. **दुग्ध पशुपालन (Dairy Farming):** गाय, भैंस, बकरी और ऊँट जैसे पशुओं से दूध प्राप्त करना और उसका व्यापार करना। भारत, विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है।

2. **मुर्गी पालन (Poultry Farming):** अंडा और मांस के लिए मुर्गी पालन बहुत तेजी से बढ़ा है। छोटे किसानों के लिए यह एक कम लागत वाला लाभदायक व्यवसाय है।

3. **बकरी पालन (Goat Farming):** बकरी का दूध और मांस दोनों उपयोगी हैं। यह सूखे क्षेत्रों के लिए बहुत उपयुक्त व्यवसाय है।

4. **भेड़ पालन (Sheep Farming):** ऊन, दूध और मांस के लिए भेड़ें पाली जाती हैं। राजस्थान, गुजरात और हिमाचल जैसे राज्यों में इसका प्रचलन अधिक है।

5. **मछली पालन (Fish Farming):** तालाबों, नदियों और कृत्रिम जलाशयों में मछली पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती दे रहा है।

6. **सूकर पालन (Pig Farming):** विशेषकर पूर्वोत्तर राज्यों में सूकर पालन एक पारंपरिक व्यवसाय है, जो मांस उद्योग से जुड़ा है।

पशुपालन का सामाजिक और आर्थिक महत्व

1. **आय का स्रोत:** छोटे और सीमांत किसानों के लिए पशुपालन आय का महत्वपूर्ण साधन है। यह विपरीत कृषि मौसम में भी रोज़गार प्रदान करता है।

2. **पोषण सुरक्षा:** दूध, अंडा और मांस जैसे पशु उत्पाद प्रोटीन और पोषक तत्वों का प्रमुख स्रोत हैं। इससे कुपोषण को कम करने में मदद मिलती है।

3. **जैविक खेती में योगदान:** गोबर और पेशाब का उपयोग जैविक खाद और कीटनाशकों के रूप में किया जाता है।

4. **ऊर्जा का स्रोत:** गोबर से बायोगैस बनाकर रसोई गैस और बिजली पैदा की जा सकती है।

5. **महिलाओं को सशक्त बनाना:** पशुपालन में महिलाएं सक्रिय भागीदारी निभाती हैं, जिससे उन्हें आत्मनिर्भरता और आय का अवसर मिलता है।

पशुपालन को बढ़ावा देने वाली सरकारी योजनाएं

1. **राष्ट्रीय पशुधन मिशन (National Livestock Mission - NLM):** यह योजना पशुधन उत्पादकता, नस्ल सुधार और पशुपालकों की आय बढ़ाने पर केंद्रित है।

2. **डेयरी उद्यमिता विकास योजना (Dairy Entrepreneurship Development Scheme - DEDS):** डेयरी फॉर्म शुरू करने के लिए ऋण और सब्सिडी दी जाती है।

3. **राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम (Nationwide AI Programme):** पशुओं में उन्नत नस्लों के लिए कृत्रिम गर्भाधान को बढ़ावा दिया जाता है।

4. **ई-गोपाला ऐप (e-Gopala App):** डिजिटल प्लेटफॉर्म के ज़रिए पशुओं की नस्ल, गर्भाधान, दुग्ध उत्पादन और चिकित्सा की जानकारी प्रदान की जाती है।

5. **पशु आरोग्य मेले और चल चिकित्सा इकाइयाँ (MVUs):** दूरस्थ क्षेत्रों में पशुओं की जांच, टीकाकरण और इलाज की सुविधा मोबाइल इकाइयों से दी जाती है।

चुनौतियां और समाधान

* **पशुओं के लिए गुणवत्तायुक्त चारा और पानी की कमी**
समाधान: वैज्ञानिक चारा उत्पादन, जल संरक्षण।
* **पशु रोगों की रोकथाम में कठिनाई**
समाधान: नियमित टीकाकरण, मोबाइल पशु चिकित्सा इकाइयां।

* **आधुनिक तकनीकों की जानकारी का अभाव**
समाधान: पशुपालकों के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता।
* बाजार तक सीधी पहुँच नहीं
समाधान: किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) और सहकारी समितियों का गठन।
* अनियोजित प्रजनन
समाधान: नस्ल सुधार और कृत्रिम गर्भाधान की योजना।

आधुनिक तकनीक और नवाचार

* **RFID टैगिंग:** हर पशु को एक यूनिक ID से ट्रैक करना।
* **ऑनलाइन मेडिकल कंसल्टेशन:** टेलीमेडिसिन सेवा।
* दुग्ध संग्रहण के लिए सेंसर आधारित मशीनें।
* AI और ड्रोन का प्रयोग चारा उत्पादन में।

निष्कर्ष: पशुपालन केवल एक परंपरागत कार्य नहीं है, बल्कि यह भारत के करोड़ों ग्रामीण परिवारों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता, पोषण और सतत विकास का आधार है। यदि इसे वैज्ञानिक तरीके, सरकारी सहायता और तकनीकी नवाचारों से जोड़ा जाए, तो यह क्षेत्र न केवल किसानों की आय को दोगुना कर सकता है, बल्कि भारत को पशु उत्पादों में आत्मनिर्भर बना सकता है।

दिनेश शिवहरे Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2023-24

बकरी पालन : ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आजीविका का सशक्त माध्यम

डॉ. आदेश कुमार, डॉ .अलका सुमन
डॉ. अंचल केशरी, डॉ. शशि टेकाम
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय महू (म.प्र.)

भारत के ग्रामीण इलाकों में बकरी पालन एक लाभकारी और व्यवहारिक व्यवसाय के रूप में तेजी से उभर रहा है। सीमित संसाधनों में भी यह पशुपालन किसानों, विशेष रूप से छोटे और सीमांत कृषकों के लिए आय का एक मजबूत माध्यम बन चुका है। यह न केवल आर्थिक लाभ देता है, बल्कि पोषण, पर्यावरण और सामाजिक विकास में भी इसका योगदान उल्लेखनीय है।

1. आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी

बकरी से दूध, मांस, चमड़ा और जैविक खाद जैसे उत्पाद प्राप्त होते हैं, जिनकी बाज़ार में अच्छी मांग बनी रहती है। बकरी का मटन पोषक तत्वों से भरपूर होता है और इसकी लोकप्रियता के कारण किसानों को निरंतर आमदनी प्राप्त होती है। साथ ही, बकरी का दूध कई रोगों में उपयोगी माना जाता है।

2. न्यूनतम लागत में अधिक आमदनी

बकरी पालन की खासियत यह है कि इसमें निवेश कम होता है, लेकिन मुनाफा अच्छा होता है। यह पशु कठिन मौसम में भी जीवित रह सकता है और इसकी देखभाल अन्य पशुओं की तुलना में आसान होती है। बकरी थोड़े चारे में भी अपना पोषण प्राप्त कर सकती है, जिससे यह सीमित संसाधनों में भी पाली जा सकती है।

3. रोजगार सृजन का माध्यम

गांवों में बकरी पालन से ग्रामीणों को खासकर महिलाओं और बुजुर्गों को रोजगार के अवसर मिलते हैं। इससे न केवल उनकी आय बढ़ती है, बल्कि आत्मनिर्भरता भी विकसित होती है। स्वयं सहायता समूहों और महिला समितियों में बकरी पालन की अहम भूमिका देखी जा सकती है।

4. पोषण की दृष्टि से लाभकारी

बकरी का दूध आयरन, कैल्शियम और प्रोटीन का अच्छा स्रोत होता है। यह बच्चों, वृद्धों और रोगियों के लिए विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। नियमित रूप से इसका सेवन करने से कुपोषण जैसी समस्याओं में सुधार लाया जा सकता है।

5. पर्यावरणीय संतुलन में सहायक

बकरी पालन पर्यावरण के लिए भी अनुकूल है। बकरी से मिलने वाला गोबर जैविक खाद के रूप में खेतों में उपयोग होता है। साथ ही, बकरियां झाड़ियाँ और खरपतवार खाकर प्राकृतिक साफ-सफाई में भी योगदान देती हैं, जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहती है।

निष्कर्ष

बकरी पालन एक बहुआयामी लाभ देने वाला व्यवसाय है जो ग्रामीण समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और पोषणीय स्थिति को सुधारने में समर्थ है। यदि इसे वैज्ञानिक तरीकों और सही प्रशिक्षण के साथ अपनाया जाए, तो यह न केवल आजीविका का साधन बन सकता है, बल्कि गांवों के सतत विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद
बीज एवं कीटनाशक दवाईयां
उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2023-24

जैविक खाद और रासायनिक उर्वरकों का संतुलन : मृदा का वैज्ञानिक आधार

गोविन्द, दीक्षा मरावी, अजय कुमार कश्यप
(शोध छात्र कृषि) महात्मा गांधी, चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

भारतीय मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अत्यधिक कम होने की वजह से मृदा को उर्वर बनाना एक मुश्किल चुनौती है जिस प्रकार से भारतीय कृषि में हरित क्रांति के आगमन से रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किया गया जिसकी वजह से उत्पादन में वृद्धि तो हुई है परंतु साथ ही मानव व मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, अधिक उत्पादन की लालच में बे हिसाब उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मृदा के भौतिक व रासायनिक गुणो में गिरावट आ रही है, जबकि दूसरी ओर जैविक खादों के उपयोग से मृदा की भौतिक रासायनिक व जैविक गुणो में सुधार देखा गया जो कि पर्यावरणीय संतुलन के लिए अति महत्वपूर्ण है। इस लेख में हम जैविक खादो व रासायनिक उर्वरकों के संतुलित उपयोग व मृदा की उर्वरता बनाए रखने के वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर चर्चा करेंगे।

जैविक खाद : मृदा की बेहतर सेहत के लिए वरदान

जैविक खाद जैसे कि गोबर की खाद (FYM), वर्मी कंपोस्ट, हरी खाद, कंपोस्ट इत्यादि न केवल पौधों को पोषक तत्व प्रदान करते हैं बल्कि मृदा मे कार्बन की मात्रा को भी बढ़ाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप मृदा की धनायन विनिमय क्षमता (CEC) भी बढ़ती है जिसकी वजह से मृदा से अधिक मात्रा मे पोधों को पोषक तत्व प्राप्त होने लगते है। साथ ही मृदा संरचना में सुधार, जलधारण क्षमता और सूक्ष्म जीवों के क्रियान्वन को भी बढ़ाते हैं जैविक खादों के उपयोग से पौधों को लगातार लंबे समय तक पोषक तत्व की प्राप्ति होती रहती है जो की एक बेहतर कृषि उत्पाद की गुणवत्ता में सहायक होता है।

रासायनिक उर्वरक : सटीक एवं त्वरित पोषण

रासायनिक उर्वरक के अंतर्गत यूरिया डीएपी पोटाश आदि उर्वरक आते हैं जो पौधों को सीधे तौर पर आवश्यक पोषक तत्व शीघ्रता से प्रदान करते हैं इसके विपरीत रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित व अत्यधिक प्रयोग से मृदा में कार्बन की मात्रा में भारी कमी हो रही है साथ ही मृदा की संरचना, भौतिक दशा का बिगड़ना, मृदा की जलधारण क्षमता का क्षीण होना, अम्लीयता, लवणता एवं पोषक तत्व के असंतुलन जैसी समस्याएं उत्पन्न होती है जो सीधे तौर पर फसलों की गुणवत्ता व मानव स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

जैविक खादों और रासायनिक उर्वरकों का समन्वय : एक संतुलित दृष्टिकोण

जैविक खादों एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग, मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता को बनाए रखने में एक बेहतर विकल्प के रूप में उभर कर सामने आता है। कई शोध कार्यों से पता चलता है कि जैविक खाद व रासायनिक उर्वरक के संतुलित प्रयोग से न केवल फसलों की उपज में वृद्धि हुई है बल्कि मृदा की भौतिक व रासायनिक दशा मैं सुधार, जलधारण क्षमता, मृदा में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि तथा फसल उपज व मृदा स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

जैविक खादों एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग स्थाई और बेहतर कृषि पद्धति के रूप में सामने आ रहा है यह पद्धति पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने के साथ-साथ मृदा संरचना और मृदा उर्वरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय कृषि के बारे में जहां रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग और भूमि का बे हिसाब दोहन एक बेहद चिंता का विषय बन चुका है जहां इस समन्वयी दृष्टिकोण को अपनाना समय की मांग बन गया है जहां जैविक खादों के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में इजाफा होता है जिससे न केवल मृदा उर्वर होती है साथ ही मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण भी प्राप्त होता है वही रासायनिक उर्वरक के संतुलित प्रयोग से पौधों को त्वरित और सही मात्रा में पोषण प्रदाय करता है, जिसके फल स्वरुप फसल उत्पादन और उसकी गुणवत्ता में भी सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं।

अतः जैविक खादों व रासायनिक उर्वरकों का समुचित प्रयोग कृषि जगत में मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण व स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण है इस समन्वयीत दृष्टिकोण से न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए अपितु आने वाली भविष्य की पीढ़ी के लिए भी एक महत्वपूर्ण स्थाई व सटीक समाधान प्रदान करता है भारतीय कृषि परंपरा में इस प्रणाली को व्यापक रूप से अपनाने के लिए किसानों में जागरूकता बढ़ाने व नीतिगत समर्थन की आवश्यकता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य, मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता और फसलों की उत्पादन क्षमता को सुनिश्चित किया जा सके।

01/2023-24

प्राकृतिक खेती से सब्जियों का उत्पादन

✍अभिषेक यादव, मनीषा पाठक
✍रोहित कुमार यादव
(पीएचडी शोधार्थी उद्यानिकी विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर)

प्राकृतिक खेती का अभिप्राय शून्य लागत से है जिसे किसान गाँव में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग उर्वरता बढ़ाने एवं फसल सुरक्षा के लिए करता है। प्राकृतिक खेती की स्वीकार्यता व धारणा नई अवस्था शैशवकाल में है तथा धीरे-धीरे किसानों में इसकी स्वीकार्यता बढ़ेगी। उपलब्ध संसाधनों में गाय के उत्पाद एवं वनस्पतियाँ प्रमुख है। देश में अनेक राज्य प्राकृतिक खेती अपना रहे हैं एवं अनकों सफल माडल विकसित किये हैं। इस प्रकार की खेती करने में महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं केरल प्रमुख हैं।

प्राकृतिक खेती की कर्षण क्रियाएं: प्राकृतिक खेती का उद्देश्य मृदा स्वास्थ को बढ़ाना, जैव-विविधता का संरक्षण, पशुधन की बेहतरी, प्राकृतिक संसाधनों का दक्ष प्रयोग एवं पारिस्थितिकी को समृध्द करना है। मृदा की जैविक क्रियाशीलता को बढ़ाना, गुणवत्तायुक्त उत्पादन के साथ-साथ पौधों एवं पशुओं के स्वास्थ्य को भी लाभ पहुँचाना प्रमुख उद्देश्य होता है।

पशु एवं बिना पशु आधारित प्राकृतिक खेती: पशु आधारित खेती मतलब गाय आधारित खेती जो टिकाऊ कृषि की रीढ़ है। गाय आधारित खेती, प्राकृतिक खेती, प्राकृतिक संसाधनों, मृदा, वायु, जल एवं जीवों का संरक्षण करती है। इससे जल एवं बिजली की 90 प्रतिशत तक की बचत एवं लागत घट जाती है।

प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक

1.जीवामृत: देशी गाय का मूत्र एवं अन्य वनस्पति उत्पाद जैसे- गुड़, दाल, आटा एवं मिट्टी के मिश्रण से बनाया जाता है इसके प्रयोग से मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ती है। यह परम्परागत खेती से इसलिए अलग है क्योंकि इसमें गोबर या गोबर की खाद की जगह गो-मूत्र एवं अन्य वानस्पतिक उत्पाद का घोल प्रयोग किया जाता है जो मृदा में केचुओं एवं लाभदायक सूक्ष्म जीवों में वृद्धि करता है जिससे मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता स्थायी रूप से बढ़ जाती है। इसके अलावा खेत में जैविक कार्बन की मात्रा भी बढ़ती है।

2.बीजामृत: देशी गाय का गोबर, गो-मूत्र एवं बूझा चूना मिलाकर तैयार किया जाता है एवं इससे पौधों की जड़ों या बीज पर लेप किया जाता है जो भूमि जनित रोगों से सुरक्षा करता है। इसके प्रयोग से बीज की अंकुरण प्रतिशत भी बढ़ जाता है।

3.पलवार: भूमि की नमी को सुरक्षित रखने के लिए फसल अवशेष से दो पंक्तियों के बीच खाली स्थान को ढक दिया जाता है। इससे मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि, जल संग्रहण क्षमता में वृद्धि एवं लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं में वृद्धि पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ खरपतवार की संख्या में कमी आती है।

4. भूमि में वायु प्रवाह (वापसा): यह जीवामृत तथा पलवार के प्रयोग का परिणाम है। जीवामृत के प्रयोग एवं पलवार से मृदा संरचना में सुधार होने से तेज गति से ह्यूमस का निर्माण

होता है तथा जल अधिक दिनों तक संरक्षित रहता है जिससे फसल अधिक वर्षा एवं सूखा से कम प्रभावित होती है।

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत: प्राकृतिक खेती का मूल सिद्धांत है कि वायु, पानी तथा मृदा में सभी आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है इसलिए फसलों को किसी भी प्रकार के रासायनिक खाद की आवश्यकता नही होती है। प्राकृतिक खेती द्वारा मित्र कीटों की संख्या में वृद्धि एवं अनुकूल वातावरण का निर्माण कर फसलों को कीटों एवं रोगों से सुरक्षित करती है जिससे कीटनाशकों एवं रोगनाशकों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है।

1. अन्तर्वर्ती फसल उगाना: मुख्य फसल की दो पंक्तियों के बीच दलहन वर्गीय फसल लेने से मृदा में नत्रजन की मात्रा की आपूर्ति होती है साथ ही साथ अतिरिक्त उत्पादन भी प्राप्त होती है।

2. फसलों को मेढ़ पर लगाना: नालियों में वर्षा का पानी संग्रहित होने से उपलब्धता अधिक दिनों तक बनी रहती है। अधिक वर्षा होने की स्थिति में नालियाँ जल निकास के लिए भी उपयोगी रहती है और भूगर्भ जल स्तर में सुधार में मदद मिलती है।

3. केचुओं की सक्रियता में वृद्धि: प्राकृतिक खेती से मृदा में केचुओं की सक्रियता में वृद्धि होती है जिससे मिट्टी की उत्पादकता एक समान बनी रहती है।

4. गोबर: प्राकृतिक खेती में देशी गाय का गोबर एवं मूत्र का प्रयोग उत्तम माना गया है क्योंकि इसमें लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या दूसरे किसी पशु या अन्य गायों की तुलना में अधिक होता है।

प्राकृतिक खेती हेतु उपयुक्त रोगनाशी

1. छांछ का घोल: देशी गाय के दूध से तैयार छांछ को खट्टा करने के लिए धूप में रखें। गर्मियों में 4-6 दिनों एवं ठण्डी में 10 दिनों के लिये घूप में रखते हैं। जब छांछ में झाग आना शुरू हो जाये तब छिड़कने के लिए प्रयोग करें। घोल बनाने के लिये 100 लीटर पानी से भरे ड्रम में 3 लीटर छांछ डालकर पानी से भर दें और अच्छे से मिला दें। तैयार घोल कवक, जीवाणु एवं विषाणु नाशक होता है एवं पौधों में प्रतिरोधी शक्ति में वृद्धि करता है।

2. जीवामृत: सामान्यतः प्रयोग हेतु 100 लीटर के ड्रम में 10 लीटर जीवामृत को पानी में डालकर भर दें एवं इसके बाद घोल को पूरी तरह मिलायें। यह घोल सर्वोत्तम कवक, जीवाणु व विषाणु नाशी एवं वृद्धि नियामक है।

3. सूखी कंडी: सामान्यतः 5-7 दिन पुराने सूखे गोबर की 3 किग्रा. मात्रा को कूटकर बारीक कर लें एवं सूती कपड़े में बाँधकर 100 लीटर के ड्रम में ऐसे लटकायें जिससे वह पानी में डूब जाये एवं 48 घंटे बाद निचोड़कर ड्रम में मिला दें। यह प्रक्रिया तीन बार इसी तरह करें इसके बाद अच्छे से मिलाकर 48 घंटे के अन्दर फसल पर छिड़काव करें। यह मिश्रण बहुत अच्छा रोगनाशी होता है।

4. सौठास्त्र: सामान्यतः 1 लीटर पानी में 100 ग्राम सोंठ पाउडर मिलायें और उबालकर पानी की मात्रा आधी कर लें। इसके बाद गाय का दूध दूसरे बर्तन में उबाले एवं ठण्डा कर लें। एक ड्रम में 100 लीटर पानी ले इसमें 500 मिलीलीटर सोंठ अर्क एवं 10 मिलीलीटर दूध डालकर मिलायें तथा ढक कर रखें एवं 2 घण्टे बाद कपड़े से छानकर प्रयोग करें।

5. जीवामृत + छांछ: इसे तैयार करने के लिये 100 लीटर के ड्रम में 8 लीटर जीवामृत एवं 3 लीटर छांछ मिला दें तथा शेष भाग में पानी मिलायें। प्रयोग हेतु घोल को छान लें एवं 48 घण्टे के अन्दर प्रयोग करें। यह सभी तरह की पौध रोगों को नियंत्रित करने की अचूक दवा है।

रोगनाशक दवाओं के प्रयोग का समय: खेत में निरीक्षण के दौरान पत्तों पर काला-पीला, लाल धब्बा, छोटा घेरा, पत्तों का जलना, मुर्झाना आदि दिखाई दें तो समझ लें रोग का संक्रमण शुरू हो गया है। इसलिये तुरन्त रोगनाशी दवा का छिड़काव करें। खेत में उगायी जाने वाली सब्जियों में रोग प्रबंधन हेतु जैविक दवाओं का छिड़काव 7-10 दिनों के अंतराल पर 2 महीने तक करें।

छिड़काव का समय: प्रत्येक अमावस्या एवं पूर्णिमा को कीटनाशी दवा का छिड़काव एवं शुक्ल पक्ष की अष्टमी को फफूंदनाशक दवा का फसलों पर छिड़काव अधिक लाभदायक होता है।

फफूंदनाशक पेस्ट तैयार करने की विधि: पानी 50 लीटर, गो-मूत्र 20 लीटर, ताजा गोबर 20 किग्रा., वृक्षों के पौधों की चटनी 10 किग्रा., हल्दी 200 ग्राम, हींग पाउडर 10 ग्राम, चिकनी मिट्टी 2.5 किग्रा. या अलसी का तेल 750 मिली.। इन सभी सामग्रियों को एक टब में घोल ले एवं जूट की बोरी से 48 घण्टे ढंक दें। अब पेस्ट प्रयोग करने के लिए तैयार है। इस पेस्ट का प्रयोग पौधों की सुषुप्ता अवस्था में ही करना चाहिये। इसका प्रयोग वर्ष में चार बार करना चाहिये, प्रथम मई के तीसरे सप्ताह, दूसरा सितम्बर के अन्तिम सप्ताह, तीसरा दिसम्बर की अंतिम सप्ताह एवं चौथा अप्रैल के दूसरे सप्ताह में।

पाला से बचाव: जाड़े के मौसम में जिस दिन शाम को बारिश हो उसके दूसरे दिन सुबह खेत पर जाये जिस तरफ से हवा आ रही हो उस तरफ की मेढ़ के किनारे पेड़ पौधों की पत्तियाँ एवं गोबर के उपले जलायें। जिससे लगातार धुआं निकलता है जो पत्तियों पर पतली परत बना देता है इससे फसल पाले के प्रभाव से बच जाती है। जब पौधों के पत्तों में नमी बढ़ती है तो कवक का प्रकोप अधिक होता है इसको रोकने के लिये दो कतारों के बीच फसल अवशेषों का पलवार से नमी कम हो जाती है जिससे फसल कवक संक्रमण से बच जाती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

डॉ. निधि प्रजापति वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
डॉ. विशाल मेश्राम विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि विस्तार)
डॉ. विजय सिंह सूर्यवंशी केवीके नरसिंहपुर (म.प्र.)

खरीफ फसलों की कृषि कार्यमाला

चावल

* गर्मी के महीनों में, ढैंचा, सनहेम्प, उड़द या मूंग जैसी हरी खाद वाली फसलों के बीज बिखेर दें और मिट्टी की सेहत बनाए रखने हेतु फूल आने से ठीक पहले उन्हें खेत में मिला दें।
* प्री-मानसून बारिश की शुरुआत के साथ ही सूखी नर्सरी के लिए भूमि की तैयारी की जा सकती है। कीटों के लार्वा को नष्ट करने के लिए गहरी जुताई करें और पानी का एक समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए भूमि को समतल करें।
* वर्तमान मौसम की स्थिति को देखते हुए, किसानों को चावल की नर्सरी तैयार करने की सलाह दी जाती है। एक हेक्टेयर में रोपाई के लिए, लगभग 800-1000 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्र पर्याप्त है। नर्सरी की मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरा करके 1.5 मीटर चौड़ी और उपयुक्त लंबाई वाली क्यारियों में विभाजित किया जाना चाहिए। नर्सरी तैयार करते समय, मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में अच्छी तरह से सड़ी हुई FYM मिलानी चाहिए।
* बेहतर उत्पादन के लिए पूसा बासमती 1718, पीबी 1985, पीबी-1847, पीबी-1885, पीबी-1886, दंतेश्वरी, जेआर 206, पूसा बासमती 1121 और पूसा सुगंधा 5, महामाया, एमटीयू-1318, स्वर्ण सब-1 (बाढ़ सहिष्णु) जैसी उच्च उपज देने वाली किस्मों का उपयोग करें।
* बुवाई से पहले, बीजों को हर 5 किलोग्राम बीज के लिए 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन प्रति 10 लीटर पानी और विटावैक्स @ 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज या कार्बेन्डाजिम 12% + मैन्कोजेब 63% @ 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज के साथ उपचारित किया जाना चाहिए।
* रोपाई के लिए आदर्श समय 15 जून से 15 जुलाई तक है, पंक्ति से पौधे की दूरी 20 म 10-15 सेमी होनी चाहिए
* धान को कतार में बोना चाहिए और बुवाई के 3 दिन के भीतर प्री-इमर्जेंस हर्बिसाइड जैसे प्रीटिलाक्लोर 50% ईसी @ 1500 मिली/हेक्टेयर या पाइराज़ोसल्फ्यूरॉन 10% डब्ल्यूपी@200 मिली/हेक्टेयर का इस्तेमाल करना चाहिए। इसके बाद बिसपायरीबैक सोडियम (10%)@250 मिली/हेक्टेयर का इस्तेमाल करना चाहिए।
* स्टेम बोरर और लीफ फोल्डर के प्रबंधन हेतु, रोपाई के 21, 30 और 45 दिनों के बाद 50,000 से 75,000 प्रति हेक्टेयर की दर से ट्राइकोग्रामा कार्ड जारी करें। स्टेम बोरर को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने के लिए, प्रोफेनोफोस 40%+ साइपरमेथ्रिन 4% @1000 मिली/हेक्टेयर या क्लोरेंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एससी @200 मिली/हेक्टेयर का इस्तेमाल करें। इसके अतिरिक्त, चावल के खेत में स्टेम बोरर की आबादी की निगरानी और प्रबंधन के लिए 5 ट्रैप/हेक्टेयर की दर से फेरोमोन ट्रैप लगाएं।
* ब्राउन प्लांट हॉपर संक्रमण के लिए चावल के खेतों की नियमित निगरानी करें। यदि कीट की आबादी आर्थिक सीमा से अधिक हो जाती है, तो इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एससी का 250 मिली/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। गंभीर संक्रमण के मामले में, डाइनोटेफ्यूरान 10%+ पाइमेट्रोज़िन 40% डब्ल्यूजी का 250 ग्राम/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
* धान में ब्लास्ट रोग को नियंत्रित करने के लिए, बीजों को ट्राइसाइक्लाज़ोल @ 2 ग्राम/किग्रा की दर से उपचारित करें और प्रोपिकोनाज़ोल 25 ईसी @ 500 मिली/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
* यदि पानी की सतह के ऊपर चावल के आवरण पर बैंगनी किनारों के साथ बड़े, मैले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो आवरण झुलसा का संकेत देते हैं, तो प्रभावित क्षेत्रों पर ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 25% + टेबुकोनाज़ोल 50% @ 0.5 ग्राम/लीटर या कार्बेन्डाजिम 50% WP @ 2 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो, तो 12-15 दिनों के बाद छिड़काव दोहराएं।
* खेतों में वर्षा जल को संरक्षित करने हेतु, जल प्रतिधारण को अधिकतम करने हेतु ऊंची और चौड़ी मेड़ बनाएं।

सोयाबीन

* जेएस 20-69, आरवीएस 2002-4, जेएस 20-98, जेएस 20-116, इंदौर सोया 142, एनआरसी 150, एनआरसी 152, जेएस 21-72, आरवीएसएम 2011-35 और इंदौर सोया 130 जैसी उन्नत उच्च उपज वाली सोयाबीन किस्मों का उपयोग करें।

* प्रमुख कीटों के प्यूपा और खेतों में रहने वाले प्रमुख रोगजनकों की बीजाणु संरचनाओं, जैसे कि खलिहान और मिट्टी में रहने वाले कीट प्रसार को खत्म करने हेतु, प्रारंभिक कीट/रोगजनक भार को कम करना आवश्यक है। खलिहानों की सफाई, खेतों की गहरी जुताई और मेड़ों की सफाई आवश्यक है। किसानों को भी फसल के सभी अवशेषों को इकट्ठा करके खाद के गड्ढे में दबा देना चाहिए।

* क्षतिग्रस्त, रंगहीन या छोटे आकार के बीजों को हटाने के लिए बीज सामग्री को सावधानीपूर्वक संसाधित किया जाना चाहिए। केवल स्वच्छ, स्वस्थ, कीट-और रोग-मुक्त सामग्री को ही बीज के रूप में संग्रहित किया जाना चाहिए।

* अधिक उपज प्राप्त करने हेतु बीजों को कार्बेन्डाजिम 25% + मैन्कोजेब 50% WS @ 3 ग्राम/किग्रा बीज + जैविक कवकनाशी ट्राइकोडर्मा विरिडे @ 8-10 ग्राम/किग्रा बीज, ब्रैडिरहिजोबियम कल्चर और फॉस्फेट सॉल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया @ 10 ग्राम/किग्रा बीज से उपचारित करें। सोयाबीन में स्टेम फ्लाई के नियंत्रण हेतु, बुवाई से पहले बीजों को थायमेथोक्सम 30 FS @ 10 मिली/किग्रा बीज से उपचारित करें।

* नमी को संरक्षित करने के लिए सोयाबीन को रेज्ड बेड और ब्रॉड बेड एंड फरो विधियों पर बोना सुनिश्चित करें।

* जल्दी पकने वाली और छोटे कद की किस्मों के लिए, पंक्तियों के बीच 30 सेमी की दूरी बनाए रखें। लंबी अवधि वाली और लंबी किस्मों के लिए, पंक्तियों के बीच 45 सेमी और पौधों के बीच 10 सेमी की दूरी बनाए रखें।

* मिट्टी परीक्षण की सिफारिशों के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। सामान्यतः, N: P^2O^5: K^2O पर 25:60:40 किलोग्राम/हेक्टेयर के साथ 20 किलोग्राम/हेक्टेयर बेंटोनाइट सल्फर की सिफारिश की जाती है।

मक्का

* विवेक Hy-17, विवेक Hy-43, पूसा विवेक क्यूपीएम-9, व्हीएलक्यूपीएम-45, हाइब्रिड मक्का-1, एचक्यूपीएम-1, विवेक मक्का Hy-51, पूसा एचएम-4, डीएमआरएच-1308, आईएमएच 230 और आईएमएच 231 जैसी उच्च उपज देने वाली किस्मों का उपयोग करें।

* खेत में स्वस्थ पौधों की इष्टतम संख्या सुनिश्चित करने के लिए अंकुरण परीक्षण आवश्यक है। इसके बाद उत्पादकता बढ़ाने हेतु कार्बेन्डाजिम 50% WP @ 2 ग्राम/किग्रा बीज, इमिडाक्लोप्रिड 600 FS @ 2 ग्राम/किग्रा बीज, ट्राइकोडर्मा @ 10 ग्राम/किग्रा बीज और एजोटोबैक्टर @ 10 ग्राम/किग्रा बीज का उपयोग करके बायो-प्राइमिंग या बीज उपचार किया जाना चाहिए।

* इष्टतम बुवाई का समय 15 जून से 30 जून तक है, जिसमें 60 × 25 सेमी (पंक्ति × पौधा) की दूरी होनी चाहिए। बेहतर फसल वृद्धि के लिए जिंक आधारित उर्वरकों सहित संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।

* खरपतवार नियंत्रण हेतु, बुवाई के 20-25 दिन बाद ट्रोप्रामेज़ोन 33.6% एससी @ 30 मिली प्रति एकड़ का छिड़काव करें।

* फॉल आर्मीवर्म और स्टेम बोरर के प्यूपा, साथ ही राइज़ोक्टोनिया सोलानी (शीथ ब्लाइट का कारक एजेंट) के बीजाणु मिट्टी में रहते हैं। इसलिए, इनोकुलम क्षमता को कम करने के लिए गर्मियों में गहरी जुताई करना महत्वपूर्ण है।

* फ़ॉल आर्मीवर्म के संक्रमण को शुष्क बुवाई या मानसून की शुरुआत में बुवाई, फ़सल चक्र का अभ्यास करने और फ़ॉल आर्मीवर्म से प्रभावित न होने वाली अन्य फ़सलों के साथ मक्का को बारी-बारी से उगाने से काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, पोषक तत्वों की एक बुनियादी खुराक डालें और क्यारी तैयार करने हेतु रिज और फ़रो विधि का उपयोग करें। ये अभ्यास मई के अंतिम सप्ताह या जून के पहले सप्ताह तक पूरे कर लिए जाने चाहिए।

* फ़ॉल आर्मीवर्म के संक्रमण को रोकने के लिए नियमित रूप से निगरानी करें। यदि आवश्यक हो, तो स्पिनेटोरम 11.7 एससी @ 350 मिली/हेक्टेयर या इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी @ 200 ग्राम/हेक्टेयर का छिड़काव करें।

* पत्ती झुलसा रोग को नियंत्रित करने के लिए, मैन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी @ 1000 ग्राम/हेक्टेयर का छिड़काव करें।

मूंग

* उच्च उपज देने वाली किस्मों जैसे आईपीएम 410-3 (शिखा), आईपीएम 205-7 (विराट) का उपयोग करें।
* बुवाई से पहले, मिट्टी जनित रोगों को नियंत्रित करने के लिए 2.5 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा को 1 क्विंटल एफवाईएम के साथ मिलाएं और इसे मिट्टी में मिला दें।
* बुवाई के लिए 20-25 किलोग्राम/हेक्टेयर उन्नत मूंग बीज का उपयोग करें।
* पीले मोजेक वायरस को नियंत्रित करने के लिए, बीजों को इमिडाक्लोप्रिड 48% एफएस से 2 मिली/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

हर्बल चिकित्सा द्वारा मादा पशु बांझपन का प्रबंधन

✍डॉ. शशांक विश्वकर्मा
✍डॉ. अभिषेक बिसेन, डॉ. पुष्कर शर्मा
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
✍डॉ. एन.के. बजाज, डॉ. मधु शिवहरे
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय महू (म.प्र.)
✍डॉ. असद खान पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
✍डॉ. पंकज उमर, डॉ. ज्योति डागर पशु चिकित्सा औषध एवं विष विज्ञान विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
✍डॉ. अंजुल वर्मा पशु शल्य चिकित्सा एवं क्ष-रश्मि विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001 (म.प्र.)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, जिसमें मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। मादा पशुओं में बांझपन की समस्या न केवल दूध उत्पादन को प्रभावित करती है, बल्कि इससे पशुपालकों को आर्थिक हानि, नस्ल सुधार में रुकावट और पशुधन में गिरावट जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस समस्या के उपचार के लिए आज भी कई स्थानों पर आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की पहुंच सीमित है, जिससे पारंपरिक हर्बल चिकित्सा का महत्व और अधिक बढ़ गया है। हर्बल चिकित्सा प्रणाली में औषधीय पौधों का उपयोग करके रोगों का उपचार किया जाता है, जो सुलभ, किफायती और दुष्प्रभाव रहित होते हैं।

मादा पशुओं में बांझपन के कई कारण हो सकते हैं, जैसे हार्मोनल असंतुलन, पोषण की कमी, गर्भाशय संक्रमण (जैसे मेट्राइटिस, पायोमेट्रा), हीट साइकल की अनियमितता, अंडोत्सर्ग की कमी या पर्यावरणीय तनाव। इन सभी समस्याओं में हर्बल औषधियाँ सकारात्मक भूमिका निभा सकती हैं। भारत में प्रचलित कई जड़ी-बूटियाँ जैसे अशोक (सराका इंडिका), शतावरी (एस्पैरेगस रेसिमोसस), गिलोय (टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया), नीम (अज़ाडिरैक्टा इंडिका), कालमेघ (एंड्रोग्राफिस पैनिकुलाटा) और हल्दी (कर्क्यूमा लोंगा) पशु प्रजनन से जुड़ी समस्याओं में उपयोगी पाई गई हैं।

अशोक की छाल गर्भाशय को टोन कर उसके कार्य को बेहतर बनाती है तथा अनियमित हीट साइकल को नियमित करने में सहायक होती है। शतावरी एक शक्तिशाली रसायन है जो हार्मोन संतुलन को सुधारती है और अंडोत्सर्ग को उत्तेजित करती है। गिलोय प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करती है जिससे गर्भाशय संक्रमण जैसे मेट्राइटिस या एंडोमेट्राइटिस की स्थिति में सुधार आता है। नीम और कालमेघ अपने जीवाणुनाशक और सूजनरोधी गुणों के कारण संक्रमण को नियंत्रित करने में कारगर हैं। हल्दी गर्भाशय की सफाई करने और सूजन को कम करने में अत्यंत प्रभावी है।

इन हर्बल औषधियों का प्रयोग करते समय मात्रा और विधि का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। अंधाधुंध या बिना जानकारी के प्रयोग से लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है, विशेषकर गर्भवती पशुओं में कुछ औषधियाँ जैसे नीम और कालमेघ का प्रयोग वर्जित माना जाता है। इसलिए हर्बल चिकित्सा को पशु चिकित्सक की सलाह से ही अपनाना चाहिए। साथ ही, यदि हर्बल चिकित्सा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अनुसंधान और मानकीकरण के साथ जोड़ा जाए, तो यह पशु प्रजनन के क्षेत्र में एक सुरक्षित, प्रभावशाली और दीर्घकालिक समाधान बन सकती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि हर्बल चिकित्सा न केवल पारंपरिक ज्ञान की विरासत है, बल्कि यह ग्रामीण पशुपालकों के लिए एक व्यवहारिक, सुलभ और प्राकृतिक विकल्प भी है। यदि इसे सही तरीके से उपयोग में लाया जाए, तो मादा पशुओं में बांझपन की समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है और पशुधन की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गाजर घास (Parthenium hysterophorus)

डॉ. आयुषी चौरसिया, डॉ. राजेश कुमार शर्मा
डॉ. क्षेमंकर श्रमण एवं डॉ. विधि गौतम पशु भेषज एवं विष विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

जहरीले पौधे किसानों और पशुपालकों के लिए एक गंभीर चिंता का विषय हैं क्योंकि ये पौधे पशुओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। आमतौर पर चराई को पशुधन प्रबंधन की एक नियमित गतिविधि के रूप में देखा जाता है, लेकिन यह प्रक्रिया कभी-कभी पशुओं को जहरीले पौधों के सीधे संपर्क में ला देती है, विशेषकर तब जब हरे चारे की उपलब्धता कम होती है। इस स्थिति में जानवर अक्सर ऐसे पौधों का सेवन कर लेते हैं जो उनके लिए हानिकारक होते हैं। जहरीले पौधों के सेवन से पशुओं में विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं जैसे त्वचा रोग, सांस की दिक्कत, पाचन संबंधी विकार, दूध या मांस उत्पादन में कमी और कुछ मामलों में तो यह मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

पौधों में विषाक्तता उत्पन्न होने के कई कारण होते हैं, जिनमें प्रमुख हैं — मौसम, वातावरण की स्थिति और पौधे की वृद्धि का समय। उदाहरण के तौर पर, मई से अगस्त तक की अवधि में जब गर्मी और बरसात की शुरुआत होती है, उस समय कुछ खरपतवारों की वृद्धि बहुत तेज़ हो जाती है और उनमें विषैले रासायनिक यौगिकों का निर्माण अधिक मात्रा में होने लगता है। ये यौगिक पशुओं और मनुष्यों दोनों के लिए हानिकारक हो सकते हैं और त्वचा, श्वसन तंत्र तथा पाचन तंत्र पर बुरा असर डालते हैं। साथ ही, इस मौसम में हवा और धूल के साथ परागकणों की मात्रा भी बढ़ जाती है, जिससे एलर्जी और त्वचा रोग फैलने की संभावना बढ़ जाती है।

बारिश के मौसम में विशेष रूप से जुलाई से सितंबर के बीच गाजर घास जैसी खरपतवार प्रजातियाँ बहुत तेज़ी से फैलती हैं। नमी की प्रचुरता और अनुकूल वातावरण के कारण यह घास अन्य पौधों को दबाकर खेतों में उग जाती है, जिससे फसलों की पैदावार पर सीधा असर पड़ता है। हालांकि सर्दियों में इन पौधों की वृद्धि धीमी हो जाती है, लेकिन विषाक्तता कम नहीं होती। सूखे हुए पौधे भी जहरीले बने रहते हैं और इन्हें छूने या जलाने से अतिसंवेदनशीलता या एलर्जिक प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं।विषाक्तता की समस्या तब और बढ़ जाती है जब चारे की उपलब्धता सीमित हो जाती है और जानवर भूख के कारण जहरीले पौधों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। गाजर घास (Parthenium hysterophorus) एक विशेष रूप से खतरनाक खरपतवार है, जो 1950 के दशक में गेहूं के आयात के साथ भारत में आया था। तब से यह तेजी से पूरे देश में फैल चुका है और अब लगभग 35 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर कब्जा कर चुका है। यह एक आक्रामक पौधा है जो खेती योग्य भूमि, सड़कों के किनारे, बाग-बगीचों और खाली स्थानों में उगकर स्थानीय वनस्पति को नुकसान पहुँचाता है। यह घास पशुओं के लिए अत्यंत हानिकारक मानी जाती है और इसे विश्व की सबसे हानिकारक खरपतवारों में से एक माना जाता है। इसके सेवन से पशुओं में हल्के लक्षणों से लेकर गंभीर अंग क्षति या मृत्यु तक हो सकती है। विषाक्त प्रभाव की तीव्रता पौधे की प्रजाति, खपत की गई मात्रा, पशु के वजन और उसकी स्वास्थ्य स्थिति पर निर्भर करती है।

विषाक्तता के कारण और लक्षण: पशु जहरीले पौधों का सेवन दूषित चारे के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कर सकते हैं। कई बार पौधे के सीधे संपर्क में आने से भी त्वचा पर एलर्जी या जलन जैसी प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं। गाजर घास जैसे पौधों की विषाक्तता का असर विशेष रूप से चराई करने वाले जानवरों पर देखा गया है। मवेशी, भैंस,

बकरी, भेड़ और घोड़े ऐसे प्रमुख पशु हैं जो इस विषाक्तता से प्रभावित होते हैं। गाजर घास से प्रभावित पशुओं में सांस लेने में तकलीफ, नाक बहना, छींक आना और फेफड़ों की नलियों में सूजन जैसे लक्षण देखे जा सकते हैं। इसके अलावा, एलर्जी के सामान्य लक्षणों में आंखों से पानी आना, त्वचा पर खुजली और लाल चकत्ते, सांस लेने में कठिनाई, उल्टी, दस्त और पेट दर्द शामिल हो सकते हैं। प्रभावित पशुओं में पलकों और चेहरे के आसपास सूजन देखी जा सकती है। दस्त के बाद अक्सर त्वचा में खुजली शुरू हो जाती है। कान की नोक और आधार पर लाल चकत्ते उभर आते हैं, और गर्दन, पेट, घुटनों के जोड़ और गाय के छाती के निचले हिस्से में त्वचा पर घाव दिखाई देते हैं। यदि गाजर घास के पत्तों से चारा प्रदूषित हो गया हो, तो इसके असर से दूध का स्वाद कड़वा हो जाता है और उसकी गुणवत्ता घट जाती है।

जोखिम कारक: पशुओं के जहरीले पौधों के सेवन के पीछे कई जोखिम कारक जिम्मेदार होते हैं। जब जानवरों को चराई के लिए बहुत कम या सीमित चारा मिलता है, तो वे भूख के कारण मजबूर होकर जहरीले पौधों को भी खाने लगते हैं। विशेष रूप से सूखे की स्थिति में जब चारे की उपलब्धता बेहद कम हो जाती है, तब यह खतरा और बढ़ जाता है। इसके अलावा, कुछ जानवर अपरिचय के कारण गाजर घास को सामान्य चारे जैसा समझकर खा लेते हैं। कुछ जानवर अपरिचय के कारण गाजर घास को चारा समझकर खा लेते हैं। घास काटते समय यह अनजाने में मिलकर दूषित चारे का हिस्सा बन जाती है, जिससे विषाक्तता का खतरा बढ़ जाता है। इस प्रकार, चराई की व्यवस्था करते समय, पशुओं को दिए जाने वाले चारे की गुणवत्ता और सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होती है, ताकि ऐसे जोखिमों से बचा जा सके।

रोकथाम रणनीतियां: पशुओं को जहरीले पौधों से होने वाली हानि से बचाने के लिए कुछ प्रभावी रोकथाम उपायों को अपनाना आवश्यक है। सबसे पहला कदम है – जहरीले पौधों की पहचान करना और उन्हें समय रहते चराई क्षेत्रों से हटाना। इससे पशुओं के संपर्क में आने की संभावना कम हो जाती है। इसके साथ ही, जानवरों को भूख की स्थिति में किसी भी उपलब्ध पौधे को खाने की प्रवृत्ति होती है, इसलिए उन्हें पर्याप्त और संतुलित आहार देना चाहिए ताकि वे भूख के कारण विषैले पौधों की ओर आकर्षित न हों।

जब पशुओं को किसी नए चराई क्षेत्र में ले जाया जाए, तो उनके व्यवहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए और उन्हें धीरे-धीरे उस क्षेत्र से परिचित कराना चाहिए। अचानक बदलाव से जानवर अपरिचित पौधों का सेवन कर सकते हैं, जो खतरनाक साबित हो सकता है। इसके अतिरिक्त, खनिजों और पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए पूरक आहार (सप्लीमेंट) देना भी जरूरी होता है, क्योंकि पोषण की कमी के कारण भी जानवर असामान्य पौधों की लालसा करने लगते हैं। पौधों को विशेष रूप से फूल आने से पहले उखाड़ना या नष्ट करना उनके बीज बनने और आगे फैलने से रोक सकता है। गाजर घास जैसे खरपतवारों के मामलों में चराई क्षेत्रों का नियमित निरीक्षण आवश्यक होता है। यदि किसी क्षेत्र में गाजर घास की समस्या पहले से ज्ञात हो, तो वहां चरने वाले पशुओं की निगरानी करनी चाहिए और उन्हें सुरक्षित रखने के उपाय अपनाने चाहिए।

निदान: गाजर घास से प्रभावित पशुओं की पहचान उनके लक्षणों और चिकित्सकीय परीक्षणों के आधार पर की जाती है। यदि जानवरों ने ऐसे क्षेत्र में चराई की हो जहाँ गाजर घास बड़ी मात्रा में पाई जाती है, तो उनसे जुड़े लक्षणों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। प्रभावित पशुओं में अक्सर त्वचा पर लाल धब्बे, लगातार खुजली, जलन की शिकायत, और कभी-कभी फुंसियाँ या छाले देखे जाते हैं। इसके अलावा पाचन संबंधी गड़बड़ी जैसे दस्त, उल्टी या सामान्य अपच के लक्षण भी सामने आ सकते हैं। शारीरिक परीक्षण के दौरान पशु की त्वचा पर घाव, मुँह में छाले, शरीर की कमजोर स्थिति, और कुछ जुगाली करने वाले पशुओं में सामान्य पाचन क्रिया में बाधा जैसे संकेत मिल सकते हैं। इन लक्षणों के आधार पर चिकित्सक प्राथमिक रूप से गाजर घास विषाक्तता की आशंका कर सकते हैं। रक्त परीक्षण और जैव रसायन विश्लेषण के माध्यम से यकृत और गुर्दे की कार्यप्रणाली की स्थिति जाँची जाती है, क्योंकि विषाक्तता इन अंगों को प्रभावित कर सकती है। यदि कोई पशु मर गया हो, तो पोस्टमार्टम के दौरान प्रभावित ऊतकों और पेट की सामग्री की जाँच की जाती है। इस प्रक्रिया में अक्सर गाजर घास के पौधे या उनके टुकड़े पाए जा सकते हैं, जिससे यह पुष्टि होती है कि विषाक्तता का कारण यही पौधा रहा है। इस तरह, निदान करते समय पशु के लक्षण, क्षेत्र का इतिहास, रक्त व ऊतक परीक्षण और आवश्यक होने पर पोस्टमार्टम रिपोर्ट का अध्ययन करके सटीक निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

उपचार और प्रबंधन: गाजर घास विषाक्तता का कोई विशेष और पूर्णतः प्रभावी प्रतिरोधी उपचार (एंटीडोट) उपलब्ध नहीं है। इसका इलाज मुख्यतः लक्षणों के आधार पर किया जाता है। यदि किसी चरागाह क्षेत्र में गाजर घास की उपस्थिति हो, तो पालतू पशुओं को उस स्थान पर चराने से बचाना चाहिए। इस पौधे के नाश के लिए इसे जलाना, उखाड़ कर नष्ट करना या उपयुक्त शाकनाशक रसायनों का उपयोग करना प्रभावी उपाय हैं। यदि किसी पशु ने गलती से गाजर घास का सेवन कर लिया हो, तो विषाक्तता को कम करने के लिए सबसे पहले उसके शरीर में विष के अवशोषण को रोकना जरूरी होता है। इसके लिए पशु को मुंह के माध्यम से सक्रिय चारकोल (Activated Charcoal) देना लाभकारी होता है। इसकी खुराक लगभग 1.0 से 2.0 ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुसार दी जाती है।

यदि पशु में एलर्जी के लक्षण जैसे- त्वचा पर चकत्ते, खुजली या सूजन दिखाई दें, तो एलर्जी को कम करने वाली दवाओं जैसे डाइफेनहाइड्रैमीन (Diphenhydramine) या कॉर्टिकोस्टेरॉइड्स का उपयोग किया जा सकता है। यकृत की कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए लिवर टॉनिक जैसे सिलिमरिन या लिव-52 जैसी औषधियाँ दी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, विटामिन और खनिजों से भरपूर पूरक आहार देना पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और विषाक्तता से उबरने में सहायता करता है। विशेष रूप से विटामिन ई और सेलेनियम उपयोगी माने जाते हैं। यदि त्वचा पर घाव या सूजन हो, तो उस स्थान पर एंटीबायोटिक या एंटीसेप्टिक क्रीम/दवाएं लगाई जा सकती हैं। किसी प्रकार के जीवाणु संक्रमण की आशंका हो तो डॉक्टर की सलाह पर एंटीबायोटिक दवाएं दी जा सकती हैं।

नर्सरी प्रबंधन: एक प्रभावी पौध उत्पादन की दिशा में कदम

✍ धर्मेन्द्र विजयवर्गीय एवं शुभम अहिरवार
शोध विद्यार्थी, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

नर्सरी प्रबंधन का मतलब है उन सभी कार्यों और प्रक्रियाओं का संचालन, जिनसे बीज या कटिंग द्वारा पौध तैयार किए जाते हैं, और जब तक वे खेत या बगीचे में रोपण योग्य न हो जाएँ, तब तक उनकी देखभाल की जाती है। एक अच्छी तरह से प्रबंधित नर्सरी से उच्च गुणवत्ता वाले पौधे प्राप्त होते हैं, जो कृषि, बागवानी, वानिकी और लैंडस्केप विकास में उपयोगी होते हैं।

नर्सरी वह स्थान होती है जहाँ पौधों को उनके शुरुआती विकास के दौरान विशेष देखभाल और अनुकूल वातावरण दिया जाता है। जब तक पौधे मजबूत होकर खेत में लगाने योग्य नहीं हो जाते, तब तक उन्हें यहाँ पाला जाता है। नर्सरी एक साधारण क्यारी भी हो सकती है या फिर आधुनिक ग्रीनहाउस जैसी संरचना जिसमें तापमान और नमी नियंत्रित हो। नर्सरी प्रबंधन और पौध प्रसार (प्रवर्धन) दो अलग कार्य हैं, लेकिन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। नर्सरी का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ और गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री का उत्पादन करना है। यह एक लाभदायक व्यवसायिक गतिविधि है, जो संसाधनों के सही उपयोग पर आधारित होती है और सामूहिक प्रयासों से सफल होती है।

नर्सरी प्रबंधन के उद्देश्य: नर्सरी प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ, मजबूत और उच्च गुणवत्ता वाले पौधे तैयार करना होता है। इसके अलावा, यह कृषि और पर्यावरण से जुड़े कई महत्वपूर्ण कार्यों में भी सहायक होता है। नर्सरी प्रबंधन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1.उत्तम गुणवत्ता वाले पौध तैयार करना

नर्सरी में बीज या कटिंग से मजबूत और रोग-मुक्त पौधे तैयार किए जाते हैं, जो बेहतर उत्पादन देने में सक्षम होते हैं।

2.दुर्लभ और देशज प्रजातियों का संरक्षण करना: कुछ पौधों की प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर होती हैं। नर्सरी उनके संरक्षण और पुनरुत्पादन में मदद करती है।

3.शोध और प्रशिक्षण के लिए सुविधा देना: नर्सरी छात्रों, किसानों और बागवानी विशेषज्ञों के लिए एक शिक्षण केंद्र के रूप में कार्य करती है जहाँ वे पौधों से संबंधित तकनीकों को सीख सकते हैं।

4.बाजार की मांग के अनुसार पौधों की आपूर्ति करना:

नर्सरी का उद्देश्य बाजार में फल, फूल, सब्जी या सजावटी पौधों की आवश्यकता को पूरा करना भी होता है।

5.कृषि और बागवानी क्षेत्र में रोजगार सृजन करना: नर्सरी व्यवसाय से कई लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिलता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी बल मिलता है।

6.मौसम के अनुसार पौधों की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करना: कुछ पौधों को सही मौसम में रोपना जरूरी होता है। नर्सरी ऐसी पौधों को समय पर उपलब्ध कराकर फसल की सफलता सुनिश्चित करती है।

7.हरित क्षेत्र और पर्यावरण संरक्षण में योगदान देना: नर्सरी पेड़ों और पौधों को बढ़ावा देकर प्रदूषण कम करने, हरियाली बढ़ाने और पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में मदद करती है।

नर्सरी प्रबंधन के मुख्य चरण

1.योजना बनाना: पौधों की मांग के अनुसार ज़रूरी संसाधनों जैसे भूमि, जल, उपकरण, संरचनाओं और इनपुट की व्यवस्था की योजना तैयार करना।

2.कार्यान्वयन: भूमि की तैयारी, जैविक उपायों का प्रयोग, मृदा संरक्षण, लेआउट बनाना और आवश्यक सामग्री की आपूर्ति करना।

3.निगरानी और मूल्यांकन: पौधों की स्थिति का निरीक्षण, समस्याओं पर त्वरित कार्रवाई, कार्य की समीक्षा और श्रमिकों को प्रेरित करना।

4.फीडबैक और सुधार: कार्य की समीक्षा से प्राप्त सुझावों के आधार पर भविष्य की प्रक्रिया में सुधार करना।

नर्सरी प्रबंधन के मुख्य घटक

1.स्थान चयन: उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त जल स्रोत, अच्छी धूप और बाजार से निकटता वाला स्थान चुनें।

2.मृदा एवं रोपण माध्यम: साफ, रोगमुक्त और पोषक मिट्टी में कोकोपीट, वर्मीकम्पोस्ट, रेत आदि मिलाएं।

3.पौध प्रवर्धन: बीज (Sexual) या कलम, गूटी, ग्राफ्टिंग (Asexual) द्वारा पौधे तैयार करें।

4.सिंचाई व्यवस्था: ड्रिप या स्प्रिंकलर तकनीक से नियमित व नियंत्रित जल आपूर्ति करें।

5.कीट व रोग नियंत्रण: जैविक कीटनाशक और नियमित निगरानी से पौधों को सुरक्षित रखें।

6.भंडारण व रिकॉर्ड: बीज, खाद व औजारों को सुरक्षित रखें और पौधों की संख्या व स्थिति का लेखा रखें।

नर्सरी प्रबंधन के लाभ

1.अंकुरण और वृद्धि के लिए अनुकूल स्थिति:
नर्सरी में पौधों को शुरुआती विकास के लिए आवश्यक तापमान, नमी और पोषण आसानी से मिल जाता है।

2.बेहतर देखभाल संभव:
छोटे क्षेत्र में पौधों की देखभाल, कीट व रोग नियंत्रण और खरपतवार प्रबंधन सरल होता है।

3.जल्दी फसल और अधिक लाभ:
नर्सरी में उगाए गए पौधे तेज़ी से बढ़ते हैं, जिससे फसल जल्दी तैयार होती है और बाज़ार में अच्छे दाम मिलते हैं।

4.भूमि और श्रम की बचत:
मुख्य खेत में पौधे कम समय के लिए रहते हैं, जिससे समय और मेहनत दोनों की बचत होती है।

5.मुख्य खेत की बेहतर तैयारी:
खेत की तैयारी के लिए पर्याप्त समय मिलता है, जिससे भूमि को अच्छी तरह तैयार किया जा सकता है।

6.बीज की लागत में कमी:
महंगे संकर बीजों को सीधे खेत में बोने की बजाय नर्सरी में उपयोग कर लागत कम की जा सकती है।

नर्सरी प्रबंधन की चुनौतियाँ

1.जलवायु परिवर्तन: अनियमित वर्षा, अधिक तापमान या ठंड जैसे मौसम बदलाव पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

2.कीट और रोगों का बढ़ना: नई-नई बीमारियाँ और कीट नर्सरी पौधों के लिए बड़ा खतरा बनते जा रहे हैं।

3.बाज़ार की अस्थिरता: पौधों के मूल्य में उतार-चढ़ाव से किसानों और नर्सरी संचालकों को आर्थिक नुकसान हो सकता है।

4.प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी: नर्सरी संचालन के लिए कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों की उपलब्धता सीमित है, जिससे काम की गुणवत्ता पर असर पड़ता है।

निष्कर्ष: नर्सरी प्रबंधन सिर्फ पौध उगाने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक, तकनीकी और आर्थिक गतिविधि है, जो कृषि व पर्यावरण दोनों में अहम भूमिका निभाती है। यह किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ हरित क्षेत्र विस्तार और पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देता है। आधुनिक तकनीकों और जागरूकता के साथ यह क्षेत्र तेजी से एक लाभदायक व स्थायी व्यवसाय बन रहा है। हालाँकि कीट, रोग, जलवायु परिवर्तन और कुशल श्रमिकों की कमी जैसी चुनौतियाँ भी हैं, लेकिन सतत प्रयासों से इन्हें दूर किया जा सकता है। इस प्रकार, नर्सरी प्रबंधन भविष्य में टिकाऊ कृषि का एक मजबूत आधार बन सकता है।

प्याज भण्डारण : समस्याएं एवं समाधान

डॉ. प्रियंका मिश्रा दुबे (सह-प्राध्यापक)
मंगलायतन यूनिवर्सिटी जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. गौरव कुमार, डॉ. अंकिता राजपूत
(अस्सिस्टेंट प्रोफेसर) मंगलायतन
यूनिवर्सिटी जबलपुर (म.प्र.)

सारांश

प्याज का भंडारण दुनिया भर में उनकी संस्कृति के अनुसार व्यापक रूप से किया जाता है आर्थिक अभ्यास. भारत में भंडारण की जो पद्धति अपनाई जाती है वह अधिकतर पारंपरिक ज्ञान पर निर्भर करती है,आमतौर पर प्रचलित विधियां हैं - बैग, पक्का/कच्चा कमरा, टैट भंडारण, बांस, चॉल की संरचना और उससे जुड़े नुकसान काफी अधिक हैं। अंकुरण, शुष्कन और भंडारण में अक्सर सूक्ष्मजीवी क्षति देखी जाती है और यह उन्नत भंडारण तकनीकी चुनने के लिए मजबूर करती है। संशोधित हवादार संरचनाएं, संशोधित वायुमंडलीय (एमए) और नियंत्रित वायुमंडलीय भंडारण जैसी तकनीकें(सीए) प्याज भंडारण के लिए रसायनों के अनुप्रयोग को कम करता है।भंडारण अवधि को बढ़ाने के लिए गैस संरचना में सुधार करके, प्याज़ को प्रस्फुटन से बचाकर इसकी भण्डारण अवधि को बधाई जा सकती है।

परिचय

प्याज भारत में लगभग हर दिन रसोईघर में उपभोग की जाने वाली एक महत्वपूर्ण मसाला फ़सल है । अन्य सब्जियों के विपरीत इनकी आवश्यकता रसोई में प्रतिदिन होती है और इसलिए उत्पादन के साथ-साथ उचित मूल्य पर बाजार में आपूर्ति उपभोक्ताओं के लिए अत्यंत आवश्यक है।भारतीय प्याज की वैश्विक मांग काफी है। वर्ष 2022-23 में भारत ने 2,525,258.35 मीट्रिक टन ताजा प्याज का निर्यात किया, जिसका मूल्य रु. 4,522.79 करोड़ या 561.38 मिलियन अमेरिकी डॉलर। प्याज उत्पादन क्षेत्रों में स्थित आधुनिक उच्च गुणवत्ता वाले भंडारण गृह प्याज की छंटाई, ग्रेडिंग और पैकिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए दिशानिर्देश स्थापित किए गए हैं कि प्याज पहचाने गए कीटनाशकों के लिए निर्धारित अधिकतम अवशेष स्तर (एमआरएल) को पूरा करता है। इसके अतिरिक्त, निर्यातित प्याज के गुणवत्ता मानकों की पहचान करने और उन्हें बनाए रखने के लिए विशिष्ट ग्रेड पदनाम और गुणवत्ता विकास पैरामीटर लागू किए गए हैं। प्रमुख प्याज उत्पादक राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और तेलंगाना हैं। भारत में, प्याज की खेती 1.54 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है और उत्पादन 25.44 मिलियन मीट्रिक टन (स्रोत- एनएचबी, 2023-24 पहला अग्रिम अनुमान) होता है । हालाँकि, प्याज की कटाई साल में दो या तीन बार की जाती है। प्याज को कुछ समय तक संग्रहित किए बिना दैनिक आपूर्ति संभव नहीं है। इसलिए भंडारण, उपभोक्ताओं को नियमित आपूर्ति के साथ-साथ प्याज की कीमतों में उतार-चढ़ाव पर नियंत्रण रखने के लिए जरूरी हो गया

है। प्याज का कुल उत्पादन तीन अलग-अलग मौसमों में उपलब्ध है, लगभग 20 प्रतिशत उत्पादन मानसूनी ख़रीफ़ फसल से अक्टूबर-नवंबर के महीने में उपलब्ध होती है, जनवरी -फरवरी के दौरान 30 प्रतिशत प्याज देर से खरीफ की फसल के रूप में उपलब्ध होती है। और 50 प्रतिशत उपज शीतकालीन (रबी) फसल या देश भर में मुख्य फसल के रूप में अप्रैल-जून में उपलब्ध होती है। ख़रीफ़ और देर से आने वाली ख़रीफ़ उपज की खपत एक या दो महीने के दौरान होती है। घरेलू बाजार के साथ-साथ निर्यात में भी इसकी भारी मांग है, इसलिए इसके भंडारण आवश्यकता ना होकर,तुरंत विपणन करने की आवश्यकता है। रबी की फसल अप्रैल से जून तक उच्च मात्रा देश भर में उपलब्ध में होती है। चूंकि रबी फसल की उपलब्धता और आपूर्ति अधिक है, इसलिए रबी फसल का मूल्य कम मिलता है। चूंकि, अप्रैल से नवंबर तक कोई अगली फसल नहीं है,इसीलिए इन बल्बों को संग्रहित करने की आवश्यकता होति है। यदि ख़रीफ़ की फसल मानसून की अनिश्चितता या अन्य पर्यावरणीय कारकों के कारण विफल हो होती है, तो नियमित आपूर्ति को नवंबर तक नहीं वरन फरवरी तक बढ़ाना होगा।अगर किसान अपनी रबी प्याज की फसल अप्रैल से जुलाई महीने तक बेचेंगे तो उन्हें मौसमी अधिकता के कारण आर्थिक नुकसान उठाना पड़ेगा।उन्हें अपनी उपज का अधिक मूल्य पाने के लिए अपनी प्याज की रबी फसल का भंडारण करना होगा।

अधिक उपज देने वाली और बेहतर भंडारण वाली किस्में: भीमा किरण, भीमा शक्ति, एएफएलआर, पूसा रेड,अर्क निकेतन का उपयोग करना चाहिए।

भंडारण के लिए उचित स्थिति

प्याज को ठंडे, सूखे और अच्छी तरह हवादार क्षेत्र में संग्रहित किया जाना चाहिए। उन्हें ऐसे क्षेत्रों में संग्रहीत करने से बचें जो बहुत अधिक आर्द्र या बहुत गर्म हों, क्योंकि इससे वे अधिक तेज़ी से खराब हो सकते हैं। अन्य उपज के पास प्याज का भंडारण करने से बचें- प्याज एथिलीन गैस छोड़ता है, जिससे अन्य उपज जल्दी खराब हो सकती है। इससे बचने के लिए प्याज को अन्य फलों और सब्जियों से अलग रखें।

प्याज को सूखा रखें

नमी के कारण प्याज जल्दी सड़ सकता है। सुनिश्चित करें कि भंडारण करने से पहले वे पूरी तरह से सूखे हों, और उन्हें प्लास्टिक की थैलियों या कंटेनरों में संग्रहित करने से बचें, जिनमें नमी फंस सकती है। खराब होने के किसी भी लक्षण की जाँच करें- फफूंद, मुलायम धब्बे या अंकुरण के किसी भी लक्षण के लिए नियमित रूप से अपने प्याज की जाँच करें। बाकी बैच में खराब होने वाले प्याज को फैलने से रोकने के लिए किसी भी खराब प्याज को तुरंत हटा दें।

उचित कंटेनरों का उपयोग करें

* प्याज को जालीदार बैग, पेपर बैग या खुले कंटेनर में स्टोर करें जिससे हवा का संचार हो सके। इन्हें एयरटाइट कंटेनर में रखने से बचें, क्योंकि इससे नमी फंस सकती है और वे खराब हो सकते हैं।

* **अपने स्टॉक को घुमाएँ:** पहले पुराने प्याज का उपयोग करें और अपने स्टॉक को घुमाएँ ताकि सबसे पुराना प्याज हमेशा भंडारण क्षेत्र में सबसे आगे रहे। इससे प्याज को इस्तेमाल करने का मौका मिलने से पहले उसे खराब होने से बचाने में मदद मिलेगी।

भारत में, प्याज को आमतौर पर लंबे समय तक संरक्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार की भंडारण संरचनाओं में संग्रहीत किया जाता है। भारत में उपयोग की जाने वाली कुछ सामान्य प्याज भंडारण संरचनाओं में शामिल हैं-

पारंपरिक भंडारण संरचनाएँ

इनमें भूमिगत गड्ढे या तहखाने शामिल हैं जहाँ प्याज बड़ी मात्रा में संग्रहीत किया जाता है। ये संरचनाएं एक ठंडा और अंधेरा वातावरण प्रदान करती हैं जो प्याज को लंबे समय तक संरक्षित रखने में मदद करती हैं।

आधुनिक भंडारण संरचनाएं

भारत में प्याज के भंडारण के लिए शीत भंडारण सुविधाओं का तेजी से उपयोग किया जा रहा है। ये सुविधाएं प्याज भंडारण के लिए आदर्श स्थिति बनाए रखने के लिए तापमान और आर्द्रता नियंत्रण प्रणालियों से सुसज्जित हैं।

✍ डॉ. अंकिता पाण्डेय, डॉ. जी.एस. गाठिये
✍ डॉ. डी.एस. मंडलोई, डॉ. एस.एस. चौहान
कृषि विज्ञान केन्द्र धार (म.प्र.)

अश्वगंधा की वैज्ञानिक खेती – कम खर्च में मुनाफा ज्यादा

परिचय

भारत में अश्वगंधा अथवा असगंध जिसका वानस्पतिक नाम वीथानीयां सोमनीफेरा है, यह एक महत्वपूर्ण औषधीय फसल के साथ-साथ नकदी फसल भी है। अश्वगंधा की 26 प्रजातियां हैं जिनमें से सोम्नीफेरा तथा कोएग्मूलेंस प्रजाति भारत में पाई जाती है। व्यापारिक तौर पर खरीफ फसल के रूप में इसकी खेती राजस्थान, गुजरात एवं पश्चिमी मध्य प्रदेश में की जाती है। मध्य प्रदेश में इसकी खेती नीमच, मंदसौर, रतलाम, झाबुआ, धार, रीवा तथा दमोह जिलों में मुख्य रूप से होती है।

पादप विवरण

अश्वगंधा एक मध्यम लम्बाई (40 सेमी. से 150 सेमी.) वाला एक बहुवर्षीय पौधा है। इसकी जड़े मांसल, लम्बी व अण्डाकार होती है तथा पत्तियां 10 से 12 सेंटीमीटर लंबी, अंडाकार तथा एकांतर विन्यास में लगी होती हैं। इसके फूल 1 सेंटीमीटर आकार के हरे पीले रंग के होते हैं तथा फल 5 से 6 मिलीमीटर चौड़े, गोलाकार चिकने, पीले गुलाबी रंग के होते हैं। फलों के अन्दर काफी संख्या में मटमैले पीले बीज होते हैं।

उपयोग

* अश्वगंधा की जड़ का उपयोग अनेक प्रकार की बीमारियों की रोकथाम में किया जाता है। इसकी जड़ों का चूर्ण बराबर मात्रा में शहद तथा घी के साथ मिलाकर नपुंसकता तथा प्रजनन संबंधी रोगों की बचाव हेतु उपयोग किया जाता है।
* जड़ का काढ़ा गर्भवती स्त्रियों तथा वृद्ध लोगों के लिए पौष्टिक तथा स्वास्थ्यप्रद होता है।
* पत्तियों का उपयोग पेट के कीड़े मारने में किया जाता है।
* आंतों की सूजन, अल्सर, गठिया की सूजन, तपेदिक बच्चों में दुर्बलता, वृद्धावस्था में कमजोरी, मस्तिष्क की थकान, स्मरण शक्ति का नाश, मांसपेशियों में थकान स्वप्नदोष आदि रोगों के उपचार में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

भूमि एवं जलवायु

उचित जल निकास वाली बलुई दोमट तथा हल्की लाल पीली मिट्टी में इसे आसानी से उगाया जा सकता है। कम उपजाऊ तथा असंचित भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। इसकी खेती के लिए 500 से 700 मि.मी वर्षा वाले उष्णकटिबंधीय क्षेत्र उपयुक्त हैं। मिट्टी का पीएच 7.5 से 8.0 उपयुक्त होता है। इसकी खेती लवणीय पानी से भी की जा सकती है। लवणीय पानी की सिंचाई से इसमें एल्केलोइड्स की मात्रा दो से ढाई गुणा बढ़ जाती है।

प्रजातियां: वल्लभ अश्वगंधा-1, जवाहर अश्वगंधा-20, जवाहर अश्वगंधा-134, जी.ए.ए.-1, आर.वी.ए.-100, पोषिता, चेतक, प्रताप, रक्षिता, ए.डब्लू.एस.-1 आदि इसकी उन्नत किस्में हैं।

खेत की तैयारी: रबी की फसल कट जाने के बाद मानसून आने पर खेत की तैयारी की जाती है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद एक-दो बार कल्टीवेटर से जुताई करें। अन्तिम जुताई के उपरान्त पाटा अवश्य लगायें ताकि मिट्टी भुरभुरी एवं समतल हो जाये।

बुवाई का समय: यह खरीफ की पिछेती फसल है, इसलिए इसे अगस्त के दूसरे या तीसरे सप्ताह में बोना चाहिए। वैसे इसे सितम्बर के प्रथम सप्ताह में भी बोया जा सकता है, परन्तु इसके बाद बोआई करने से उपज में गिरावट हो जाती है।

बीज की मात्रा: अश्वगंधा के बीज की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि किस पद्धति से बोनी कि जा रही है। यदि इसकी बुआई छिटकवाँ विधि से की जा रही है तो उसमें 10-12 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर लगता है जबकि नर्सरी में पौध तैयार कर रोपण विधि सें मात्र 4-5 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है।

बुवाई की विधि: अश्वगंधा को बोने के लिए निम्न दो विधियाँ अपनायी जाती हैं

छिटकवाँ विधि – चूँकि अश्वगंधा के बीज बारीक होते हैं अतः उनमें 50 प्रतिशत रेत मिलाकर तैयार खेत में छिटक दिया जाता है उसके उपरान्त हल्का पाटा चलाया जाता है।

नर्सरी में पौध तैयार करना – इस विधि में 4-5 किलोग्राम बीज नर्सरी में जुलाई के महीने में बोया जाता है। 6 सप्ताह में जब पौधे 10-12 सेमी उंचाई के हो जाए, खेत में लगाने योग्य हो जाते हैं।

दूरी – पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सेमी तथा कतार से कतार की दूरी 30 सेमी होनी चाहिये। यदि ऊँची क्यारियों में रोपाई की जाती है, जडों की उपज अधिक मिलती है।

उर्वरक व निंदाई गुडाई

अश्वगंधा की फसल में किसी प्रकार की रासायनिक खाद नही डालनी चाहिए क्योंकि इसका प्रयोग औषधी निर्माण में किया जाता है लेकिन बुआई से पहले 5-10 टन गोबर की खाद, 15 किग्रा नाईट्रोजन तथा 15 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर डालने से अधिक ऊपज मिलती है। अश्वगंधा जड़ वाली फसल है इसलिए समय-समय पर निंदाई-गुडाई करते रहने से जड़ को हवा मिलती रहती है जिसका उपज पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सिंचाई: अश्वगंधा कम पानी की फसल है, अतः इसे अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है यदि काफी लम्बे समय तक वर्षा न हो तो आवश्यकतानुसार एक-दो सिंचाई कर देनी चाहिए।

खुदाई: अश्वगंधा की फसल 135 से 150 दिन के मध्य खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। पौधे की पत्तियां व फल जब पीले हो जाए तो फसल खुदाई के लिए तैयार होती है। पूरे पौधे को जड़ समेत उखाड़ लेना चाहिए। जड़ें उखाड़ते समय यह ध्यान रखना चाहिये के वे कटने न पाए। बाद में जड़ों को पौधों से काट कर पानी से धो लेना चाहिए व धूप में सूखा देना चाहिये।

श्रेणीकरण (ग्रेडिंग): जड़ों की छंटाई उनकी आकृति के अनुसार निम्न प्रकार से करनी चाहिए।

"ए" श्रेणी – जड़ों की लंबाई 7 सेंमी. व व्यास 1-1.5 सेंमी., भरी हुई चमकदार व पूरी सफेद

"बी" श्रेणी - जड़ों की लंबाई 5 सेंमी. तथा व्यास 1 सेंमी., ठोस चमकदार व सफेद

"सी" श्रेणी - जड़ों की लंबाई 3-4 सेंमी. तथा व्यास 1 सेंमी., ठोस

"डी" श्रेणी- उपरोक्त के अतिरिक्त बची हुई कटी-फटी, पतली, छोटी व पीले रंग की जड़ें

भंडारण

जड़ो को जूट के बोरों में भरकर हवादार जगह पर भडांरण करें। भडांरण की जगह दीमक रहित होनी चाहिए। इन्हें एक वर्ष तक गुणवत्ता सहित रुप में रखा जा सकता है।

उपज

आमतौर पर एक हैक्टर से 6.5-8.0 क्विंटल ताजा जड़ें प्राप्त होती हैं जो सूखने पर 3-5 क्विंटल रह जाती है। इससे 50-60 किलो बीज प्राप्त होता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

✍ **कुलदीप गुर्जर** एम.एससी. उद्यानिकी (सब्जी विज्ञान) राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

कद्दूवर्गीय फसलों के सुधार में पारंपरिक और जैव प्रौद्योगिकी के दृष्टिकोण

परिचय: कद्दू वर्गीय फसलें,जैसे कि खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज और लौकी मानव आहार और कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन फसलों की खेती दुनिया भर में बड़े पैमाने पर की जाती है और ये विटामिन, खनिज और फाइबर का एक समृद्ध स्रोत हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या और बदलती जलवायु परिस्थितियों के कारण, इन फसलों की उत्पादकता,गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पारंपरिक प्रजनन विधियों के साथ-साथ आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है।

कद्दू वर्गीय फसलें: विविधता और चुनौतियां:कद्दू वर्गीय फसलें, जिनमें तरबूज, खरबूजा, कद्दू, लौकी, तोरई, खीरा आदि शामिल हैं, मानव आहार और कृषि अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ये फसलें न केवल पोषण का एक समृद्ध स्रोत हैं, बल्कि किसानों के लिए आय का भी एक महत्वपूर्ण साधन हैं। अपनी विविधताओं के कारण, ये विभिन्न जलवायु और मिट्टी के प्रकारों के अनुकूल हो सकती हैं, जिससे विश्व स्तर पर इनकी खेती संभव हो पाती है। हालांकि, इस महत्वपूर्ण फसल समूह को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो इनके उत्पादन और स्थिरता को प्रभावित करती हैं। इस लेख में, हम कद्दू वर्गीय फसलों की विविधता और उनके सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

कद्दू वर्गीय फसलों की विविधता: कद्दू वर्गीय परिवार (Cucurbitaceae) पौधों का एक बड़ा और विविध समूह है, जिसमें लगभग 98 जेनेरा और 975 प्रजातियां शामिल हैं। इनमें से कई प्रजातियों को उनके स्वादिष्ट फलों और सब्जियों के लिए उगाया जाता है। इस परिवार के भीतर पाई जाने वाली विविधता आश्चर्यजनक है, जो आकार, आकार, रंग, स्वाद और पोषण सामग्री में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कुछ प्रमुख कद्दू वर्गीय फसलें और उनकी विविधता इस प्रकार है:

तरबूज: यह अपनी मीठी और रसदार गूदे के लिए जाना जाता है। विभिन्न किस्मों में गूदे का रंग लाल, गुलाबी, पीला या सफेद हो सकता है। आकार में छोटे व्यक्तिगत तरबूज से लेकर बड़े, गोल या अंडाकार तरबूज तक विविधता पाई जाती है।

खरबूजा: खरबूजे की कई उप-प्रजातियां और किस्में हैं, जिनमें मस्कमेलन, कैंटलूप, हनीड्यू और पर्शियन खरबूजा प्रमुख हैं। इनकी त्वचा की बनावट, रंग और गूदे का स्वाद अलग-अलग होता है।

कद्दू: कद्दू की तीन मुख्य प्रजातियां हैं - Cucurbita pepo, Cucurbita moschata और Cucurbita maxima, जिनमें विभिन्न प्रकार के कद्दू और स्क्वैश शामिल हैं। आकार में छोटे गोल कद्दू से लेकर विशालकाय कद्दू तक, और रंग में नारंगी, पीला, हरा और धारीदार किस्में उपलब्ध हैं।

लौकी: लौकी की भी कई किस्में पाई जाती हैं, जिनका उपयोग सब्जी और बर्तन बनाने दोनों के लिए किया जाता है। आकार में लंबी बेलनाकार से लेकर गोल और बोतल के आकार की लौकी तक विविधता मिलती है।

तोरई: तोरई की दो मुख्य प्रजातियां हैं - Luffa acutangula (धारीदार तोरई) और Luffa cylindrica (चिकनी तोरई)। इनका उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है और Luffa cylindrica से स्पंज भी बनाया जाता है।

खीरा (Cucumis sativus): खीरे की भी कई किस्में हैं, जिनमें सलाद खीरा और अचार खीरा प्रमुख हैं। आकार में छोटे और मोटे से लेकर लंबे और पतले खीरे तक विविधता पाई जाती है।

यह विविधता न केवल उपभोक्ताओं के लिए विभिन्न प्रकार के विकल्प प्रदान करती है, बल्कि किसानों को विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल किस्में चुनने की सुविधा भी देती है। यह आनुवंशिक विविधता भविष्य में फसल सुधार कार्यक्रमों के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन भी है।

कद्दू वर्गीय फसलों के सामने चुनौतियां: अपनी विविधता और महत्व के बावजूद, कद्दू वर्गीय फसलों की खेती में कई चुनौतियाँ आती हैं जो उनके उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं:

रोग: कद्दू वर्गीय फसलें विभिन्न प्रकार के फफूंदी, जीवाणु और विषाणु रोगों के प्रति संवेदनशील होती हैं। प्रमुख रोगों में चूर्णी फफूंदी (Powdery mildew), डाउनी मिल्ड्यू (Downy mildew), एन्थ्रेक्नोज (Anthracnose), फ्यूजेरियम विल्ट (Fusarium wilt), मोज़ेक वायरस (Mosaic virus) और येलो वेन मोज़ेक वायरस (Yellow vein mosaic virus) शामिल हैं। ये रोग पौधों के विकास को बाधित करते हैं, पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं, फलों की गुणवत्ता खराब करते हैं और उपज में भारी कमी ला सकते हैं।

कीट: विभिन्न प्रकार के कीट कद्दू वर्गीय फसलों पर हमला करते हैं और महत्वपूर्ण नुकसान पहुंचाते हैं। प्रमुख कीटों में फल मक्खी (Fruit fly), माहू (Aphids), सफेद मक्खी (Whitefly), थ्रिप्स (Thrips), कद्दू की लाल भृंग (Red pumpkin beetle) और पत्ती सुरंगक (Leaf miner) शामिल हैं। ये कीट पौधों के रस को चूसते हैं, पत्तियों को खाते हैं, फलों में छेद करते हैं और विषाणु रोगों के वाहक के रूप में भी कार्य करते हैं।

अजैविक तनाव: कद्दू वर्गीय फसलें विभिन्न अजैविक तनावों के प्रति भी संवेदनशील होती हैं, जैसे कि सूखा, अत्यधिक तापमान (गर्मी और ठंड), लवणता और जलभराव। ये तनाव पौधों के शारीरिक कार्यों को प्रभावित करते हैं, विकास को धीमा करते हैं और उपज को कम करते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण इन तनावों की तीव्रता और आवृत्ति बढ़ने की संभावना है, जिससे कद्दू वर्गीय फसलों की खेती और भी चुनौतीपूर्ण हो सकती है।

गुणवत्ता संबंधी मुद्दे: उपभोक्ताओं की बढ़ती मांग के साथ, कद्दू वर्गीय फसलों की गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। गुणवत्ता संबंधी मुद्दों में फलों का आकार, रंग, स्वाद, मिठास, बनावट और शेल्फ लाइफ शामिल हैं। कटाई के बाद होने वाले नुकसान भी एक बड़ी चुनौती है, खासकर लंबी दूरी के परिवहन और भंडारण के दौरान।

प्रजनन संबंधी बाधाएँ: कद्दू वर्गीय फसलों में अंत:प्रजातीय और अंतरप्रजातीय संकरण में बाधाएँ आ सकती हैं, जिससे वांछित गुणों वाली नई किस्मों का विकास मुश्किल हो जाता है। कुछ प्रजातियों में यौन असंगति और भ्रूण मृत्यु जैसी समस्याएं प्रजनन कार्यक्रमों को जटिल बना सकती हैं।

बाजार और मूल्य श्रृंखला: किसानों को अक्सर अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है, जिससे उनकी आय प्रभावित होती है। प्रभावी बाजार लिंकेज और मूल्य श्रृंखला की कमी भी कद्दू वर्गीय फसलों की खेती में एक बड़ी चुनौती है।

कद्दू वर्गीय फसलों के सुधार में पारंपरिक दृष्टिकोण: आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के आगमन से पहले, पारंपरिक प्रजनन विधियाँ ही कद्दू वर्गीय फसलों में वांछित गुणों को विकसित करने का एकमात्र साधन थीं। ये विधियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी किसानों के ज्ञान और अनुभव पर आधारित हैं और इन्होंने कई महत्वपूर्ण उन्नत किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पारंपरिक दृष्टिकोण न केवल सरल और लागत प्रभावी हैं, बल्कि स्थानीय परिस्थितियों और किसान की आवश्यकताओं के अनुरूप किस्मों के विकास में भी सहायक होते हैं।

कद्दू वर्गीय फसलों के सुधार में प्रयुक्त प्रमुख पारंपरिक दृष्टिकोण:

1.**चयन** (Selection)**:** चयन सबसे पुरानी और बुनियादी प्रजनन विधियों में से एक है। इसमें पौधों की आबादी में से वांछित गुणों वाले श्रेष्ठ पौधों का चुनाव करना और उन्हें अगली पीढ़ी के लिए बीज पैदा करने के लिए उपयोग करना शामिल है। कद्दू वर्गीय फसलों में दो मुख्य प्रकार के चयन का उपयोग किया जाता है:

सामूहिक चयन (Mass Selection)**:** इस विधि में, वांछित गुणों (जैसे बड़े फल, बेहतर आकार, रोग प्रतिरोधक क्षमता) वाले कई पौधों का चयन किया जाता है और उनके बीजों को मिलाकर अगली पीढ़ी उगाई जाती है। यह विधि सरल है और आबादी में समग्र सुधार लाने में प्रभावी हो सकती है।

वंशक्रम चयन (Pedigree Selection): यह विधि अधिक विस्तृत है। इसमें एक व्यक्तिगत श्रेष्ठ पौधे का चयन किया जाता है और उसकी संतति को अलग-अलग पंक्तियों में उगाया जाता है। प्रत्येक पंक्ति का मूल्यांकन किया जाता है और केवल श्रेष्ठ पंक्तियों के पौधों को आगे प्रजनन के लिए चुना जाता है। यह विधि विशिष्ट वांछित गुणों को स्थिर करने और अवांछित गुणों को दूर करने में अधिक प्रभावी है।

2.**संकरण (Hybridization):** संकरण में दो आनुवंशिक रूप से भिन्न पौधों के बीच परागण कराया जाता है ताकि संतति में दोनों जनक पौधों के वांछित गुणों का संयोजन प्राप्त किया जा सके। कद्दू वर्गीय फसलों में संकरण दो प्रकार का हो सकता है:

अंत:प्रजातीय संकरण (Intraspecific Hybridization)**:** इस विधि में एक ही प्रजाति के दो अलग-अलग किस्मों के बीच संकरण कराया जाता है। उदाहरण के लिए, बेहतर फल आकार वाली एक कद्दू की किस्म का अधिक रोग प्रतिरोधी किस्म के साथ संकरण कराया जा सकता है। कद्दू, खरबूजा और खीरा जैसी फसलों में कई उन्नत संकर किस्में इसी विधि से विकसित की गई हैं।

अंतरप्रजातीय संकरण (Interspecific Hybridization)**:** इस विधि में दो अलग-अलग प्रजातियों के बीच संकरण कराने का प्रयास किया जाता है। कद्दू वर्गीय फसलों में यह विधि अधिक चुनौतीपूर्ण हो सकती है क्योंकि प्रजातियों के बीच यौन असंगति और बाँझ संकर बनने की संभावना होती है। हालांकि, कुछ मामलों में रोग प्रतिरोधक क्षमता जैसे वांछित गुणों को जंगली प्रजातियों से व्यावसायिक किस्मों में स्थानांतरित करने में सफलता मिली है।

3.**उत्परिवर्तन प्रजनन (Mutation Breeding):** इस विधि में भौतिक (जैसे एक्स-रे, गामा किरणें) या रासायनिक उत्परिवर्तजनों का उपयोग करके पौधों के आनुवंशिक पदार्थ में कृत्रिम रूप से परिवर्तन (उत्परिवर्तन) प्रेरित किए जाते हैं। इन उत्परिवर्तित पौधों में से वांछित गुणों वाले पौधों का चयन किया जाता है और उन्हें आगे बढ़ाया जाता है। कद्दू वर्गीय फसलों में बेहतर उपज, गुणवत्ता या रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली कुछ किस्में इस विधि से विकसित की गई हैं।

4.**बहुगुणिता प्रजनन (Polyploidy Breeding):** इस विधि में गुणसूत्रों के सामान्य द्विगुणित संख्या को कृत्रिम रूप से बढ़ाया जाता है, जिससे बहुगुणित पौधे प्राप्त होते हैं। बहुगुणिता से पौधों में बड़े फल, फूल और बीज जैसे गुण आ सकते हैं। कद्दू वर्गीय फसलों में कुछ मामलों में बहुगुणिता का उपयोग किया गया है, लेकिन इसकी सफलता सीमित रही है।

पारंपरिक प्रजनन की सफलता की कहानियां:

पी.पी.सिंह आर.व्ही.एस के व्ही व्ही,
कृषि विज्ञान केन्द्र ,मुरैना (म.प्र.)

चूजों में मृत्यु के कारक एवं उनका निवारण

परिचयः अच्छे जैनेटिक सामर्थ्य वाले चूजों को यदि विधिवत् पौष्टिक आहार तथा स्वास्थ्य सुरक्षा के बेहतर प्रबंधन में पाला जाए तो वे मांस और अण्डा उत्पादन का बढ़िया स्त्रोत बन सकते हैं। चूजों की जैनेटिक योग्यता से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए चूजों के जीवन के प्रारम्भिक काल के कुल सप्ताह बहुत ही नाजुक हैं जिस दौरान उन्हें, अतिरिक्त देखभाल की आवश्यकता होती है। शुरू में उन्हें पूरी देखभाल तथा एक अच्छी शुरूआत की ही आवश्यकता होती है। अच्छा लाभ कमाने की दिषा में पॉल्ट्री व्यवसाय में पहली सीढ़ी है अच्छी गुणवत्ता वाले चूजों की उपलब्धि। अच्छे चूजों की पहचान है उनमें एकरूपता, चमकती आंखें चुस्त-दुरूस्त गतिविधियां, अच्छा शारीरिक भार, भरा-भरा शरीर तथा शरीर पर पंखों का अच्छा कवच।

चूजों के जीवन के पहले तीन चार सप्ताह बड़े ही नाजुक होते हैं ऐसे मे उनहे अच्छी शुरूआत की भी आवश्यकता होती है। चूजों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए तथा अल्पायु में चूजों की मृत्यु को रोकने के लिए चूजों के विषय में निम्नलिखित बातो को ध्यान में रखना अति आवश्यक हैं।

1.ब्रूडर हाऊस का स्थान पुराने पक्षियो के रख-रखाव के स्थान से काफी दूर होना चाहिये ।

2.विभिन्न आयु वर्ग के पक्षियों को एक ही प्रांगण में न रखा जाए इससे हैचरी में पैदा हुए किसी संक्रमण के फेलने की आशंका बनी रहती हैं ।

3.पालतु पशुओ और आगन्तुकों को ब्रूडिंग इकाईयो की ओर न जाने दिया जाए इनसे मशीनी तौर पर रोग के जीवाणु इकाई में फेल सकते हैं ।

4.ब्रूडर इकाई में किसी भी काम से प्रवेश करने वाले व्यक्ति पहले अपने बाहय कपड़ों, जूतों तथा सिर के टोपो को बदल कर ही प्रवेश करें ।

5.ब्रूडिंग यूनिट में किसी भी काम से जाने से पहले कर्मचारी पहले अपने हाथ अवश्य धोंएं

6.ब्रूडिंग हाऊस में जंगली पक्षियों या चूहों आदि को न धूसने दें क्योंकि वे सक्रांमक रोगो के वाहक सिद्व हो सकते हैं।

चूजों की मृत्युः पॉल्ट्री फार्मर की सबसे बडी चिंता का विषय हैं। चूजों की अल्पावस्था में मृत्यु जिसके तीन प्रमुख जटिल कारक हो सकते हैं। प्रबन्धकीय जटिलताएं आहारीय जटिलताएं तथा रोग संबंधी मुश्किलें ।

प्रबन्धकीय जटिलताएंः

संभावित प्रबन्धकीय जटिलताएं इस प्रकार से हैंः

1.हैचरी से ब्रूडिंग हाऊस तक की लम्बी यात्रा चूजों में यात्रा की थकान तथा पानी की कमी का कारण बनते हैं । जिस कारण उनमें छुटपन में बातरोग हो जाता हैं। और चूजे अधिक मरते हैं।

2.अच्छे हवादार तथा वातायन वाले ट्रकों में सफर करने वाले चूजों की अपेक्षा बन्द ट्रकों में सफर करने वाले चूजे ऑक्सीजन की कमी के कारण होने वाली एसैसिटक अवस्था से अधिक प्रभावित होते हैं । उनमें जीवन के प्रति चाव नही रहता । वैराग्य आ जाता हैं । हैचरी में प्रयुक्त फोर्मलीन की अधिक मात्रा की तीखी गंध भी चूजों के श्वसन तंत्र को हानि पहुँचाती हैं ।

3.गर्मियो के दिनों और लम्बी यात्रा के दौरान चूजों को यदि जैल की खुराक या तरबूज आदि उनके डिब्बो में न रखा जाए तो चूजों में पानी की कमी हो जाती है जो मृत्यु का कारण बनती हैं ।

4.अपर्याप्त ब्रूडिंग स्थान, पीने के पानी को छोटा स्थान तथा आहार का छोटा बर्तन होने से ब्रूडिंग हाउस में चूजों के खाने के लिये होड़ सी लग जाती है । और उनमें से कई खुराक न मिल पाने के कारण भूख से मर जाते हैं ।

5.ब्रूडिंग हाऊस का अनियमित तापमान स्थान को या तो अतिशीत या फिर अति गर्म बनाता हैं । जिसके कारण जैवकि क्रियाओ में व्यवधान आ जाता हैं । चूजों के शरीर क पूर्ण विकास नही हो पाता और बहुत से तो मर ही जाते हैं ।

6.गैस ब्रूडिंग तथा अपर्याप्त वातायन से ब्रूडिंग हाऊस में अधिक कार्बनहाईक्साईड पैरा होती हैं । जिसके कारण हिपोक्सिया, एसेसाइट तथा मृत्यु तक हो सकती हैं ।

7.ब्रूडिंग हाऊस में ब्रूडर्स की ज्यादा भीड होने से बहुत से चूजे कुचले जाकर मारे जाते है कुछ सामाजिक तनाव से त्रस्त हो जाते हैं ।

8.चूजों को धटिया पुआली में रखना या पुरानी पुआली का ही इस्तेमाल करना उनमें ब्रूडर निमोनिया तथा आंत्रशोध बढ़ावा देता हैं।

9.अण्डे देने वाले चूजों को दसवे दिन होने वाली डिबीकिंग यदि असामान्य है तो इससे उनमें निरन्तर खून बहने से मृत्यु हो सकती हैं ।

10.भार तोलने या टीकाकरण के लिये पक्षियो का निर्दयता से पकड़ने से उनमें एक भयकारी तनाव पैदा होता हैं । जिससे कि मृत्यु हो सकती हैं।

आहारीय जटिलताएंः

1.पीने के पानी के तंग स्थान तथा आहार के छोटे स्थान के कारण चूजों में आहार न ले

पाने के कारण कमजोर निरहार रह कर मर सकते हैं ।

2.पहले ही दिन में चूजों को धूल धूसरित आहार में दिये जाने के कारण धेधा धूल के कारण फूल जाता है और सांस ठीक से न ले पाने के कारण पक्षी मर जाता हैं ।

3.एक दिन की आयु के चूजों के असामान्य आकार के दाने (मक्की) जैसी फीड देने से उनका गला जख्मी हो जाता हैं । उनमें लैक्टिक ऐसिडोसिट रोग होने से मृत्यु हो सकती हैं।

4.दुर्धटनावंष चूजों द्वारा पुआली पटसन के रेशे तारे प्लास्टिक की कोई चीज क्रस्टैटिका से बना कोई चिटिनस पदार्थ या मछली आदि खा लिये जाने से भी चूजों की मौत हो सकती हैं ।

5.दुर्धटनावंश चूजो को ग्रोअर्स तथा लेयर्स का आहार दिये जाने से भी चूजों की मौत हो सकती हैं । क्योकि यह अनाज चूजो के आहार से बडा अनाज के दानो के बराबर का होता हैं।

6.आहार में विटामिनो लवणो तथा अन्य पोषक तत्वो की कमी से भी चूजो में भुखमरी, कौशकीय वात तथा मृत्यु तक हो सकती हैं ।

रोग संबंधी जटिलताएंः चूजों में होने वाले कई संक्रमण माता-पिता से बच्चो में पहुंचते हैं और कुछ हैचरी के वातावरण की पैदावार होते हैं । उदाहरण के लिये सालमोनीला संक्रमण माइक्रोप्लाज्मा तथा एडिनो संक्रमण माता - पिता से बच्चो में पहुंचते हैं । ऐसे संक्रमण ई.कलाई, सूडोमोनास, कलेलीसिला प्रोटीयस तथा स्ऐफिलोकोकस ओर्गेमोजम अण्डे के छिलके के साथ लग कर आ आते हैं । और अण्डे का खो सड़ने लगता हैं। जिससे मुशी चिक्स रोग या जर्दी रस का संक्रमण हो जाता हैं।

चूजों की अल्पावस्था में मृत्यु का कारण बनने वाले कुछ संक्रमण निम्नलिखित प्रकार से हैंः

1.ई. कोलाई, स्टैफ, प्रोटियस, सूडोमोनास तथा सालमोनीला ओंफैलाईटिस तथा जर्दी रस का संक्रमण पैदा करते है जिससे 0.5 से 6 प्रतिशत तक चूजों की अल्पावस्था में मृत्यु होती हैं ।

2.माता पिता से बच्चो में पहुंचने वाले सालमोनीला संक्रमण के लक्षण 3-4 दिन मे चूजों में दिखाई देने लगते हैं ।

3.माइकोप्लाज्मा तथा सी.आर.डी तीन हफ्ते की आयु के चूजों में श्वसन तंत्र के रोग पैरा करते हैं।

4.गन्दे प्रांगण तथा दूषित पानी और आहार के लिये जाने से कोलाई वैसीलोसिस, एरिजानोसिस तथा पोटाटाईफाईड जैसे रोग होते हैं । जिनके कारण चूजों की भारी मात्रा में मृत्यु होती हैं ।

5. संयुक्त आयु वर्ग वाले पॉल्ट्री फार्म जहां कि आई.बी. टीकाकरण किया जाता है । वहाँ आई.बी. टीकाकरण किया जाता हैं । वहां आई.बी. के कारण छोटे चूजों में सांस के रोगो के साथ - साथ संक्रामक वात रोग भी हो जाता हैं ।

6.तीन चार सप्ताह की आयु के चूजों में गुम्बोरो रोग होने के कारण भी चूजों की मृत्यु हो जाती हैं ।

रोग निर्धारण तथा निदानः प्रत्येक पॉल्ट्री फार्मर का आदर्श वाक्स '' स्वस्थ चूजें विकसित करो '' होना चाहिए और उनका लक्ष्य होना चाहिए ब्रूडिंग हाऊस में मृत्यु दर को 5 से 3 प्रतिशत तक कम करना । छोटी आयु में मरने वाले चूजों की मृत्यु का कारण पोस्टमार्टम , सीरोलॉजी तथा अन्य परीक्षणों के माध्यम से निश्चितरूप निर्धारित कर लिया जाना चाहिए ।

ऐसी जॉच करने वाले यातायात के वातावरण, ब्रूडिंग आहारीय, विशेषताओं तथा चूजों के रख-रखाव के माहौल की व्यापक जानकारी होनी चाहिए । पहले दो निदो के दौरान होने वाली मौतों के पीछे प्रमुख कारक तत्व प्रबन्धकीय जटिलताएं भी हो सकती हैं । पक्षी की स्वस्थ अवस्था के लिए उनका प्रबधंन तथा पोषक वातावरण महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं । उदाहरण के लिये अनियमित तापमान में रखे जाने से ब्रूडिंग चूजों में निश्चित रूप प्रति जैविक तत्वो का विकास होता है । सामान्य तापमान मे रखे गए चूजों की अपेक्षा ठण्ड मे रखे गए चूजों में बी.एफ थोडा होता हैं । उचित तरीके से ब्रूडिंग किये जाने से जर्दी के पर्याप्त रूप से जज्ब होने तथा स्वस्थ चूजों का विकास करने में तो मदद मिलती ही है साथ ही जर्दी रस के संक्रमण की संभावनाएं भी क्षीण हो जाती हैं।

ब्रूडिंग हाऊस में अपर्याप्त वातायन होने से कार्बनडाईआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड , हाइड्रोजन सलफाईड, तथा अमोनिया जैसी नशीली गैसे पैदा हो जाती हैं । जो निश्चित रूप से चूजों के विकास तथा बी.एफ. की प्रक्रिया के लिये धातक हैं ।

तनाव ग्रस्त पक्षियों में प्राय देखा गया है कि उनके बी.एफ. थाईमस तथा झिल्ली में लिम्फ्रोटि इन्वोल्यूशन होता है । और वक्सीन लगाये जाने पर भी वे कम मात्रा में एन्टीबॉडीज के निर्माण कर पाते हैं ।

ककोड़ा की व्यवसायिक खेती एवं उससे होने वाले स्वस्थ्य लाभ

डॉ. राम कुमार राय, डॉ. निरंजन सरेयाम
गेस्ट फैकल्टी, कृषि महाविद्यालय पन्ना,
उद्यानकी विभाग जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर

वैज्ञानिक नाम- मोमोर्डिका डायोइका
परिवार- कुकुरबिटेसी

परिचय

मोमोर्डिका डायोइका, जिसे आमतौर पर स्पाइनी गॉर्ड या स्पाइन गॉर्ड या टीज़ल गॉर्ड और ब्रिस्टली बालसम नाशपाती के नाम से भी जाना जाता है, कुकुरबिटेसी/गॉर्ड परिवार का एक पौधा है। इसका प्रसारण भूमिगत कंदो से किया जाता है। इसका उत्पत्ति क्षेत्र भारत और दक्षिण एशिया के क्षेत्रों में माना जाता है गुणसूत्रों की संख्या 28 तथा प्रोटीन और विटामिन से भरपूर सब्जी है इसके पत्ते छोटे, पीले फूल होते हैं और फल छोटे, गहरे हरे, गोल या अंडाकार होते हैं। यह द्विलिंगी है, अर्थात इसमें नर और मादा जनन भाग अलग अलग पुष्प पर अवस्थित होते हैं। यह बहुमूल्य सब्जी भारत के पूर्वोत्तर राज्यों, उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और अंडमान द्वीप समूह में वनवासियों के संरक्षण में उगाई जाती है। इस सब्जी के कोमल फल(खाने योग्य भाग) सब्जियों के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

जलवायु एवं मृदा

ककोड़ा कई प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, ककोड़ा गर्म, आर्द्र जलवायु और 5.5 से 7.0 के बीच पीएच वाली अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी में पनपता है। यह कार्बनिक पदार्थों से भरपूर चिकनी मिट्टी की तुलना में रेतीली दोमट मिट्टी को अधिक पसंद करता है। इसके लिए इष्टतम तापमान 27एष्ट से 33एष्ट के बीच होता है, और अच्छी धूप विकास और उपज के लिए आवश्यक होती है। इस फसल की खेती मैदानी और शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले देशों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

उन्नत किस्में

ककोड़ा की व्यावसायिक खेती के लिए उन्नत किस्मों का चयन बहुत ही आवश्यक है, ककोड़ा (कंटोला) की उन्नत किस्मों में इंदिरा कंकोडा 1 और 2, तथा छत्तीसगढ़ कंकोडा-2 शामिल हैं। ये किस्में विशिष्ट क्षेत्रों के लिए विकसित की गई हैं और पारंपरिक किस्मों की तुलना में अधिक उपज देती हैं। इंदिरा कंकोडा 1 छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के लिए अनुशंसित है, जबकि इंदिरा कंकोडा 2 छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के लिए उपयुक्त है। छत्तीसगढ़ कंकोडा-2 विशेष रूप से छत्तीसगढ़ के लिए विकसित की गई है।

ककोड़ा फूल

बेल पर लगा ककोड़े का फल

ककोड़ा के फल

फल के अनुपृष्ठ काट का चित्र

अनुशंसित किस्में और उपज

इंदिरा कंकोडा 1: छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के लिए विकसित, 30-35 क्विंटल/हेक्टेयर उपज क्षमता।

इंदिरा कंकोडा 2: छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के लिए उपयुक्त, 35-45 क्विंटल/हेक्टेयर की उच्च उपज क्षमता के साथ।

छत्तीसगढ़ कंकोडा-2: विशेष रूप से छत्तीसगढ़ के लिए विकसित, 30-32 क्विंटल/हेक्टेयर उपज क्षमता।

अर्का भारत: इसे उच्च उपज देने वाली टीज़ल गॉर्ड के चयन से विकसित किया गया है

पौध रोपण एवं उपज: ककोड़ा के प्रसारण में कंद एवं बीजो को उपयोग में लाया जाता है कंद या पौधों को तैयार गड्ढों (30 × 30 × 30 सेमी3) या मेड़ों में 2 मीटर × 2 मीटर की दूरी पर रोपना चाहिए। जुलाई-अगस्त का महीना रोपाई के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिए ककोड़ा की पौध उगाने के लिए 3 से 5 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। आमतौर पर, एक पौधा एक मौसम में लगभग 3 से 5 किलोग्राम वजन वाले लगभग 30 से 50 फल देता है, जो प्रति हेक्टेयर 50 से 80 क्विंटल होता है। कंटोला के फल आमतौर पर रोपाई के 60-70 दिनों के बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फलों को नियमित रूप से तोड़ना चाहिए, ताकि बेल पर और नए फल आते रहे। वृद्धि नियामकों का उपयोग करके पुष्प लिंग परिवर्तन करके द्विलिंगी पौधों में स्व-निषेचन संभव बनाया गया है। नर पौधों को खेत में 8:1 के अनुपात (मादा: नर) में लगाया जाना चाहिए। पौधों को बांस की छड़ियों से सहारा दिया जाना चाहिए। जब पौधे लगभग 2.5 मीटर ऊँचे हो गए, तो उन्हें मिट्टी की सतह से 2.5 मीटर ऊपर खड़ी रस्सी के जाल पर चढ़ने दिया जाये । मिट्टी की नमी बनाए रखने और खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए मल्चिंग फायदेमंद होती है।

रोग एवं कीट

ककोड़ा (स्पाइन गॉर्ड) कीटों से ज़्यादा प्रभावित नहीं होते। कुछ सामान्य कीट, जैसे एफिड, फल मक्खियाँ और कैटरपिलर, नियंत्रित वातावरण में कई बार प्रभावित होते हैं, इसलिए इन्हें नीम के तेल या अन्य जैविक कीटनाशकों से आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। नियंत्रित वातावरण में कुछ रोग देखे गए, जैसे कि पाउडरी फफूंदी और डाउनी फफूंदी, जो सामान्य कवक रोग हैं। प्रबंधन के लिए सल्फर या कॉपर-आधारित उत्पादों जैसे कवकनाशी का उपयोग किया जा सकता है।

ककोड़ा के फायदे

ककोड़ा एक पौष्टिक सब्जी है, जो विटामिन, खनिज और फाइबर से भरपूर होती है।

* यह मधुमेह, हृदय रोग और कैंसर जैसी बीमारियों से बचाने में मदद करता है।

* ककोड़ा में एंटी-ऑक्सीडेंट और एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण भी होते हैं।

पोषक मान: प्रति 100 ग्राम खाद्य फल में औसत पोषण मूल्य 84.1% नमी, 7.7 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 3.1 ग्राम प्रोटीन, 3.1 ग्राम वसा, 3.0 ग्राम फाइबर और 1.1 ग्राम खनिज पाया गया। इसमें एस्कॉर्बिक एसिड, कैरोटीन, थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन जैसे आवश्यक विटामिन भी अल्प मात्रा में मौजूद थे। इस सब्जी को तब तक ज्यादा लोकप्रियता नहीं मिली जब तक यह पता नहीं चला कि इसमें उच्च पोषण और औषधीय गुण हैं। यह सब्जी अतिरिक्त पोषक तत्व प्रदान कर सकती है और शरीर को कई सामान्य बीमारियों से प्राकृतिक प्रतिरक्षा विकसित करने में मदद कर सकती है।

ककोड़ा की खेती से लाभ

* ककोड़ा की खेती किसानों के लिए एक लाभदायक व्यवसाय हो सकता है।

* यह एक बारहमासी फसल है, इसलिए इसे बार-बार बोने की आवश्यकता नहीं होती है।

* ककोड़ा की मांग बाजार में हमेशा बनी रहती है। इसकी कीमत स्थानीय बाजारों में 150-250 रुपया प्रति किलो तक रहती है

* जैविक खेती को प्राथमिकता देनी चाहिए, ताकि पर्यावरण को नुकसान न हो ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

भैंस पालन : बुनियादी बातें

डॉ. सुरभि यादव, डॉ. प्रदीप कुमार सिंह डॉ. सरलीन तोमर
डॉ. अंशुल खरे नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

1. परिचय और महत्व: घरेलू भैंस (Bubalus bubalis) एक महत्वपूर्ण पशुधन प्रजाति है, जिसे दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

स्वैम्प भैंस: मुख्यतः दक्षिण-पूर्व एशिया में पाई जाती है, दलदली क्षेत्रों में हल चलाने के लिए प्रयुक्त। दूध उत्पादन कम, बनावट में जंगली भारतीय भैंस (Bubalus arni) जैसी।

नदी भैंस: भारत, पाकिस्तान, यूरोप (इटली, बुल्गारिया) और दक्षिण अमेरिका (ब्राज़ील) में प्रमुख। बड़ी, मुड़ी हुई सींगें, अधिक दूध उत्पादन, स्वच्छ पानी पसंद करती है।

वैश्विक और भारतीय महत्व: भारत अपनी 56% दूध उत्पादन (50 मिलियन टन से अधिक प्रति वर्ष) और विश्व की 25% भैंस मांस पर निर्भर करता है। इस व्यवसाय में 1,295,603.15 मेट्रिक टन(2024) मांस निर्यात हुआ है। यह कृषि क्षेत्र भारत की ग्रामीण आबादी के 70% को रोजगार देता है और लघु/मध्यम किसान परिवारों का समर्थन करता है। भारत में 10+ स्वदेशी नस्लें हैं जो दूध उत्पादन और अनुकूलन क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं। भारत के पास विश्व की 56% भैंस जनसंख्या और 66.3% भैंस दूध उत्पादन है।

भारत में प्रमुख भैंस नस्लें

नस्ल	विशेषताएं	दूध उत्पादन (किग्रा/लैक्टेशन)	वसा %	बछड़ा अंतराल
मुर्रा	जेट काली, घुमावदार सींग, हरियाणा/पंजाब	1,752	7%	450–500 दिन
सूरती	भूरी/चांदी सी, कुटिल सींग, गुजरात	900–1,300	8–12%	400–535 दिन
जाफराबादी	भारी शरीर, झुकी सींगें, मालधारी समुदाय (गुजरात)	2,239	–	–
मेहसाणा	काले, लंबे सींग, गुजरात/महाराष्ट्र	1,988	6.83%	450–550 दिन
पंढरपुरी	गहरे काले, लंबे मुड़े सींग, महाराष्ट्र	1,790	–	13.6 माह
चिलिका	खारे पानी में अनुकूल, ओडिशा	500	8.7%	–
टोडा	मोटे बाल, नीलगिरी पहाड़ियों की स्थानीय नस्ल	500	8.2%	14–18 माह
भदावरी	तांबे जैसी चमड़ी, उत्तर प्रदेश/मध्य प्रदेश	1,294	6–12.8%	–
कालाहांडी	काले/स्लेटी, सुनहरे बाल माथे पर, ओडिशा/आंध्र	680–912	–	–

गायों की तुलना में भैंस पालन में लाभ: * दूध में अधिक वसा (भैंस: 7-7.5%, गाय: 3-4%)। * कम गुणवत्ता वाले चारे को प्रभावी रूप से उपयोग करती हैं। * कठोर जलवायु में भी जीवित रहने में सक्षम। * इनके व्यावसायिक जीवन की समाप्ति के बाद इनके वध के विरुद्ध कोई नियम नहीं हैं, इसीलिए यह आवारा पशुओं की श्रेणी में कभी नहीं आते।

3. आवास प्रबंधन-भैंसों के स्वास्थ्य, उत्पादकता और रोग रोकथाम के लिए उपयुक्त आवास आवश्यक है:

दो मुख्य प्रकार:-1.खुला आवास 2.परंपरागत शेड। * केवल दूध दुहने या इलाज के समय पाबद्ध। * कम लागत, हीट पहचान में आसान, व्यायाम को बढ़ावा।* बछड़ों, गर्भवती भैंसों और सांडों के लिए अलग। * मौसम से रक्षा करता है पर खर्चीला।

निर्माण आवश्यकताएँ:

स्थान: ऊँचा, उत्तर-दक्षिण दिशा में।

फर्श: ईंट/नालीदार कंक्रीट; ढलान: 1-1.5", क्षेत्र: 70-75 वर्गफुट/भैंस।

दीवारें/हवादारी: 4-5 फीट ऊँचाई; निरंतर वेंटिलेशन।

छत: ऐसबेस्टस/टाइल्स; लोहा न लें।

नांद और नालियाँ: सीमेंट से बनी, ढलान: 1" प्रति 10 फीट।

दरवाजे: चौड़ाई 5-9 फीट।

4. आहार प्रबंधन: भैंसें रुमिनेंट हैं, जो रेशेदार चारे को वसा युक्त दूध में परिवर्तित करती हैं। इनकी पोषण आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं:

पानी: 75-80 लीटर/दिन।

ऊर्जा: कार्बोहाइड्रेट (हरी घास, मक्का, ज्वार)।

प्रोटीन: दलहनी चारा, तेल खली (सोयाबीन/मूंगफली)।

वसा: बायपास फैट, कपास बीज।

खनिज/विटामिन: मुख्य स्रोत हरी घास।

प्रमुख अभ्यास: * चारा के टुकड़े करना, मिश्रित आहार (TMR) 3-4 बार दें। * अचानक चारा परिवर्तन न करें, खनिज लिक स्टोन से पूरकता।

आहार तालिका:

नस्ल	दूध उत्पादन	लैक्टेशन आहार	सूखा अवधि आहार
मुर्रा	(7–8L)	25–30 kg हरा 4–5 kg सूखा3.5–4 kg संकेंद्रित	20–25 kg हरा 5–6 kg सूखा0.5–1 kg संकेंद्रित
मेहसाणा	(6–7L)	15–20 kg हरा 4–5 kg सूखा 3–3.5 kg संकेंद्रित	10–15 kg हरा 5–6 kg सूखा 0.5–1 kg संकेंद्रित
सूरती	(5–6L)	10–15 kg हरा4–5 kg सूखा 2.5–3 kg संकेंद्रित	5–10 kg हरा 5–6 kg सूखा 0.5–1 kg संकेंद्रित

5. प्रजनन प्रबंधन: भैंसों में मौसमी प्रजनन, मौन उष्मा, लंबा बछड़ा अंतराल जैसी समस्याएँ आम हैं।

प्रजनन मापदंड: * मेचूरिटि: 15-36 माह। * हीट चक्र: 18-22 दिन, संकेत: 17-24 घंटे। * गर्भकाल: 305-330 दिन। * पहला बछड़ा: 36-56 माह। * बछड़ा अंतराल: 400-600 दिन (आदर्श: 450 दिन)।

हीट समय	उपयुक्त AI समय
सुबह	उसी शाम
दोपहर	अगले दिन सुबह

हीट पहचान: * संकेत: सूजन, चढ़ना, बेचैनी, कम निर्वहन। * मौन हीट सामान्य; टीज़र सांड/रेक्टल जांच उपयोगी।

कृत्रिम गर्भाधान (AI):

उपकरण: AI गन, थॉ यूनिट, सीमन स्ट्रॉ। लाभ: नस्ल सुधार, रोग नियंत्रण।

गर्भावस्था देखभाल: * बछड़ा से 2-3 माह पूर्व दूध सुखाएं। *संतुलित आहार, तनाव/यात्रा से बचाव।

बछड़ा प्रबंधन: कोलोस्ट्रम देना, नाल का विसंक्रमण, बिछावन

सामान्य समस्याएं: 1.एनएस्ट्रस: पोषण की कमी। 2.दोहराव गर्भधारण: हार्मोन या पोषण समस्या। 3.एंडोमेट्राइटिस: गर्भाशय संक्रमण। अवरोधित अपरा: 24-48 घंटे बाद हटाना।

झुंड स्वास्थ्य प्रबंधन

स्वच्छता:

डिवॉर्मिंग: जन्म के 1 सप्ताह बाद शुरू, पहले 6 माह मासिक, फिर त्रैमासिक।

सफाई: रोज़ाना गोबर हटाना, ब्लीच/चूना उपयोग।

जलपात्र: नियमित सफाई।

रिकॉर्ड रखना: * दूध उत्पादन, प्रजनन, उपचार, मृत्यु दर। * यह निर्णय लेने में सहायक।

सर्वोत्तम अभ्यास दिशानिर्देश - 1.तापमान नियंत्रण: गर्मियों में बौछारें, छायादार टैंक। 2.पोषण: संतुलित आहार, खनिज पूरक। 3.स्वास्थ्य निगरानी: टीकाकरण, डिवॉर्मिंग, लक्षण पहचान।4.प्रजनन: 2 बार हीट परीक्षण, 45-60 दिन में गर्भ जांच। 5.आवास: वेंटिलेशन, पुआल पर्दों का उपयोग। 6.आर्थिक प्रबंधन: कम उत्पादक पशुओं की छंटनी, प्रदर्शन रिकॉर्ड पर आधारित बिक्री।

सामान्य रोग और नियंत्रण

रोग	नियंत्रण
ब्लैक क्वार्टर	पेनिसिलिन, मानसून पूर्व टीका
रक्तस्रावी सेप्टीसीमिया	वार्षिक तेल-युक्त टीका
थनैला	दूध उबालें, स्वच्छता बनाए रखें
भैंस पॉक्स	$KMnO_4$ से धोना, अलगाव
फुट एंड माउथ रोग	6 माह में एक बार टीका

टीकाकरण तालिका

रोग	पहला टीका	बूस्टर	रोग प्रतिरोधकता
एंथ्रेक्स	4 माह	वार्षिक	1 सीज़न
ब्लैक क्वार्टर	6 माह	वार्षिक	1 सीज़न
एचएस	6 माह	वार्षिक	1 सीज़न
ब्रुसेलोसिस	4–8 माह	-	3–4 बछड़े
एफएमडी	6 माह	4 माह बाद	1 सीज़न

निष्कर्ष: भैंस पालन भारत में सतत कृषि का आधार है। नस्ल चयन, पोषण, आवास, प्रजनन, और स्वास्थ्य प्रबंधन के वैज्ञानिक उपायों को अपनाकर किसान दूध/मांस उत्पादन और मुनाफा बढ़ा सकते हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अहम योगदान दे सकते हैं।

कृत्रिम मांस: एक नवाचारपूर्ण विकल्प

डॉ. शिवानी धुरवे, डॉ प्रदीप कुमार सिंह
डॉ सुरभि यादव, डॉ. स्वाति गुप्ता
डॉ. अंजलि पटेल, डॉ अंशुल खरे
डॉ. सरलीन तोमर
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

कृत्रिम मांस या मांस विकल्प- वे खाध्य उत्पाद होते है,जो स्वाद, बनावट और पोषण में पारंपरिक मांस की तरह होते है।परन्तु वे शाकाहारी या प्लांट-बेस्ड स्रोतों से बनाए जाते हैं। यह मांस विकल्प मुख्यत पोधों या फंगस आधारित होते है।भारत में कृत्रिम मांस का प्रयोग तेज़ी से हो रहा है, खासकर आज की पढ़ी लिखी पीढ़ी जिनहे यह ज्ञान है की यह कृत्रिम मांसपशु हत्या द्वारा उत्पन्नक पारंपरिकमांस के लिए एक अच्छा विकल्प है, एवम कृत्रिम मांस में उन्हें उतना ही प्रोटीन और खनिज प्रदान करता है जितना की पारंपरिक मांस में पाया जाता है, और यह उनके लिए भी फायदेमंद है। जो शुद्ध शाकाहारी है, और पारंपरिक मांस की कड़ी निंदा करते है।

प्रमुख प्रवृत्तियां

स्वास्थ्य जागरूकता का प्रभाव

* शहरी आबादी में लो-फैट, कोलेस्ट्रॉल-मुक्त और उच्च प्रोटीन वाले विकल्पों की मांग बढ़ी है।

* भारत में स्वास्थ्य संकटों (हृदय रोग, मोटापा) ने उपभोक्ताओं को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित प्लांट-बेस्ड प्रोटीन की ओर मोड़ा है। सोया, मटर और मशरूम जैसे विकल्प न केवल बीमारियों का जोखिम घटाते हैं, बल्कि बाजार के विकास इंजन भी बन गए हैं। इन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि "स्वास्थ्य जागरूकता" केवल रुझान नहीं, बल्कि भारत के खाद्य भविष्य का आधार है।

शाकाहारी जनसांख्यिकी का लाभ

भारत की 30-40% शाकाहारी आबादी इन उत्पादों को ÷गैर-शाकाहारी स्वाद का सुरक्षित विकल्प" मानते। अब लोगो की विशेष रुचि- वेज "चिकन", "मटन" और "फिश" विकल्पों में है। कई नए स्टार्ट अप इस क्षेत्र में निवेश और काम कर रहे हैं जैसे, वेज चिकन-GoodDot, Blue Tribe Foods; वेज मटन- Imagine Meats, Vezley; वेज फिश- Ahimsa foods, VeggieChamp बाजार में अग्रणी हैं। बड़े सुपरमार्केट (बिग बाजार, डिबेनहम्स) और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म (ब्लिंकिट, मज़ॉन) पर अब "प्लांट-बेस्ड मीट" सेक्शन उपलब्ध किये जा रहे है। इन उत्पादों में उत्पादन की कीमत अभी चुनौती बनी हुई है और ये उत्पाद अभी पारंपरिक मांस से 30-50% महंगे हैं, जो इन्हे व्यापक रूप से अपनाने में बाधक है।

कृत्रिम मांस के प्रकार : यहाँ मांस विकल्पों को उनके स्रोत और निर्माण प्रक्रिया के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है-

1.पौधों पर आधारित मांस विकल्प

यह सबसे सामान्य प्रकार है और शाकाहारियों के बीच बहुत लोकप्रिय है। उदाहरण

सोया प्रोटीन आधारितः सोया चंक्स, सोया कीमा- यह सबसे सामान्य प्रकार है और सोया प्रोटीन, टेक्सचर्ड वेजिटेबल प्रोटीन (TVP) से बनता है। उदाहरणः सोया चंक्स, सोया कबाब, सोया बर्गर पैटी।

* **मटर प्रोटीन आधारित :** जैसे उत्पाद- मटर के प्रोटीन से बना होता है, यह एलर्जी-फ्री और हाई प्रोटीन विकल्प है। उदाहरणः मटर प्रोटीन बर्गर, मटर कबाब।

* गेहूं ग्लूटेन आधारितः 'विटन मीट' भी कहा जाता है- यह गेहूं के ग्लूटेन से बनता है और इसकी बनावट चिकन जैसी होती है। उदाहरणः सीतान कबाब, सीतान टिक्का।

* **कटहलः** प्राकृतिक रूप से मांस जैसी बनावट- कटहल से बना होता है और इसकी फाइबरयुक्त बनावट इसे pulled meat जैसा बनाती है। उदाहरणः कटहल बिरयानी, कटहल करी।

1.ओट बेस्ड प्रोटीन-जई के दानों में प्रोटीन की मात्रा (15-20%) अन्य प्रमुख अनाजों से काफी अधिक होती है।

* राइस बेस्ड मीट कृत्रिम-चावल के प्रोटीन में अमीनो अम्लों का मिश्रण कैसीन और सोया प्रोटीन आइसोलेट के मुकाबले ज़्यादा बेहतर है।

* **मूंग प्रोटीन** - मूंग दाल में खनिज (कैल्शियम, आयरन, मैंगनीज) और विटामिन-बी व सी भरपूर होते हैं। कम फैट की वजह से यह सेहत पर ध्यान देने वालों की पहली पसंद है।

* पम्पकिन(Pumpkin) सीड प्रोटीन-कद्दूके बीजों में 31.5-51% तक प्रोटीन होता है और ये पौधे-आधारित मांस जैसे उत्पादों में प्रोटीन के स्रोत के तौर पर इस्तेमाल किए जा सकते हैं।

2. माइकोप्रोटीन आधारित मांसः यह फंगस (कवक) से तैयार किया जाता है, खासतौर पर Fusarium venenatum नामक सूक्ष्मजीव से।

मशरूम आधारित त खासकर शिताके या पोर्टोबेलो- मशरूम का उपयोग स्वाद और बनावट के लिए किया जाता है, जो मांस जैसा लगता है। **उदाहरणः** मशरूम कबाब, मशरूम स्टिर फ्राय। क्वॉर्न(Quorn) ब्रांड के उत्पादः यह यूरोप में प्रचलित है

3. इनसेक्ट प्रोटीन आधारित मांसः इनसेक्ट प्रोटीन आधारित मांस विकल्प वे उत्पाद हैं जिनमें कीटों (जैसे टिड्डियाँ, ब्लैक सोल्जर फ्लाई लार्वा, मीट वर्म्स, क्रिकेट आदि) से प्राप्त प्रोटीन का उपयोग किया जाता है। यह एक उभरती हुई अवधारणा है जो स्थायी, पोषण-समृद्ध और पर्यावरण के अनुकूल प्रोटीन स्रोत प्रदान करने के उद्देश्य से विकसित की जा रही है।दुसरो देशो में यह बहोत ही प्रचलित है। भारत में कीट-आधारित खाद्य पदार्थ अभी तक आम नहीं हैं। सांस्कृतिक, धार्मिक और भावनात्मक कारणों से कीटों को भोजन के रूप में स्वीकार करना यहाँ कठिन है। हालांकि पूर्वोत्तर राज्यों के कुछ क्षेत्रों में कुछ विशेष कीट पारंपरिक रूप से खाए जाते हैं।

4. मिश्रित प्रोटीन मांस विकल्पः इनमें पौधे + पशु उत्पादों का मिश्रण हो सकता है। ये पूर्णतः शाकाहारी नहीं होते लेकिन मांस की खपत घटाने के लिए बनाए जाते है। मिश्रित प्रोटीन मांस विकल्प उन उपभोक्ताओं के लिए एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं जो स्वास्थ्य, पर्यावरण या नैतिक कारणों से मांस की खपत कम करना चाहते हैं, परंतु पूरी तरह शाकाहारी बनने को तैयार नहीं हैं। यह श्रेणी खाद्य उद्योग में एक लचीलापन और नवाचार का उदाहरण है।

उदाहरणः

* **मांस + मशरूम बर्गर पैटीः** जहाँ बीफ़ या चिकन को 30-50% मशरूम या सोया प्रोटीन से बदला गया हो।

* चिकन नगेट्स जिनमें सब्जियों और सोया प्रोटीन की मात्रा जोड़ी गई हो।

उपयोग के अनुसार प्रकार

उपयोग के आधार पर कृत्रिम मांस को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें कीमा के रूप में उपयोग होने वाले उत्पाद शामिल हैं, जो पारंपरिक कीमे वाले व्यंजनों के विकल्प के रूप में काम आते हैं। इसके अलावा नगेट्स, सॉसेज और बर्गर पैटीज जैसे सुविधाजनक और तेजी से पकने वाले रूप भी लोकप्रिय हैं। वहीं, स्टीक या फाइबरयुक्त मांस के रूप में तैयार किए गए उत्पाद उन उपभोक्ताओं के लिए उपयुक्त हैं जो वास्तविक मांस जैसी बनावट और अनुभव की अपेक्षा रखते हैं।

चुनौतियां

कृत्रिम मांस के विस्तार में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। उपभोक्ताओं के बीच इन उत्पादों को लेकर संदेह बना रहता है, विशेष रूप से इनके "प्रोसेस्ड" होने की छवि और पारंपरिक मांस की तुलना में स्वाद में अंतर के कारण। इसके अतिरिक्त, आपूर्ति श्रृंखला संबंधी समस्याएँ भी एक बड़ी बाधा हैं, क्योंकि कच्चे माल, जैसे सोया प्रोटीन आइसोलेट, के लिए आयात पर निर्भरता बनी हुई है, जो उत्पादन लागत और उपलब्धता को प्रभावित कर सकती है।

भविष्य के अवसर

भविष्य में कृत्रिम मांस के क्षेत्र में कई संभावनाएँ हैं। रिसर्च और इनोवेशन के तहत कद्दू के बीज, मूंग और जई जैसे स्थानीय स्रोतों से प्रोटीन निष्कर्षण पर प्रयोग किए जा सकते हैं, जिससे स्वदेशी और पोषक तत्वों से भरपूर विकल्प तैयार किए जा सकें। सांस्कृतिक अनुकूलन के अंतर्गत भारतीय स्वाद और परंपराओं को ध्यान में रखते हुए बिरयानी, कबाब जैसे लोकप्रिय व्यंजनों के लिए कस्टमाइज्ड कृत्रिम मांस विकसित किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, सरकारी नीति के स्तर पर भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (FSSAI) द्वारा "वेगन फूड" के लिए स्पष्ट मानकों का विकास इस क्षेत्र को एक मजबूत कानूनी और व्यावसायिक आधार प्रदान कर सकता है।

शिवानी क्षीरसागर (पी.एच.डी. स्कॉलर)
डॉ. एल.एस. वर्मा (प्राध्यापक, पुष्प विज्ञान विभाग), इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

फ्लोरीकल्चर में कंप्यूटर एडेड डिज़ाइन (CAD): एक नवाचार की ओर बढ़ता कदम

परिचयः वर्तमान समय में जब संपूर्ण कृषि एवं बागवानी उद्योग डिजिटल क्रांति की ओर बढ़ रहा है, तब फ्लोरीकल्चर (पुष्प विज्ञान) भी इससे अछूता नहीं रहा है। फ्लोरीकल्चर (पुष्प विज्ञान) न केवल फूलों की खेती तक सीमित है, बल्कि यह फूलों की सजावट, भूनिर्माण, ग्रीनहाउस डिजाइन, और शहरों के सौंदर्यीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे-जैसे तकनीक का विकास हुआ है, कंप्यूटर एडेड डिज़ाइन (CAD) का उपयोग अब सिर्फ इंजीनियरिंग और वास्तुकला तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह फ्लोरीकल्चर उद्योग में भी तेजी से अपनी जगह बना रहा है। CAD का उपयोग अब फूलों के डिजाइन, ग्रीनहाउस लेआउट, लैंडस्केप प्लानिंग और प्रदर्शनी योजनाओं में किया जा रहा है। परंपरागत पुष्प खेती, जो मुख्यतः अनुभव आधारित रही है, अब प्रौद्योगिकी-संचालित रणनीतियों और उपकरणों को अपनाकर अधिक सटीक, लाभकारी और नवाचारशील बन रही है। इस दिशा में कंप्यूटर एडेड डिज़ाइन (CAD) एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है।

CAD, जो मूलतः यांत्रिक, स्थापत्य और सिविल इंजीनियरिंग डिज़ाइनिंग के लिए प्रयुक्त होता रहा है, अब फ्लोरीकल्चर में डिजाइन, नियोजन, पूर्वानुमान और सौंदर्यशास्त्रीय मूल्यवर्धन के लिए अपनाया जा रहा है। चाहे वह फूलों की सजावट का पूर्व-दृश्य हो या ग्रीनहाउस की सटीक स्थान योजना, CAD फ्लोरीकल्चर को एक संगठित, दक्ष और पेशेवर रूप प्रदान कर रहा है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ फूलों की मांग पारंपरिक त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों, आयोजनों, सजावट, और निर्यात उद्योग में लगातार बढ़ रही है, वहाँ इस क्षेत्र को तकनीक से जोड़ना अत्यंत आवश्यक हो गया है। CAD का उपयोग कर न केवल फूलों की खेती की गुणवत्ता और डिज़ाइन में सुधार लाया जा सकता है, बल्कि उत्पादन लागत में कमी, नवाचार में वृद्धि, और उपभोक्ता संतुष्टि में भी बढ़ोतरी की जा सकती है। आज जब सरकारें भी स्मार्ट सिटी, हरित शहर, और पर्यावरणीय स्थिरता जैसे अभियानों को बढ़ावा दे रही हैं, CAD आधारित फ्लोरीकल्चर शहरी भूनिर्माण (urban landscaping) में एक सशक्त उपकरण के रूप में उभर कर सामने आ रहा है।

CAD क्या है और यह फ्लोरीकल्चर में कैसे काम करता है?: कंप्यूटर एडेड डिज़ाइन (CAD) एक ऐसा सॉफ्टवेयर आधारित तकनीक है, जिससे किसी भी वस्तु, संरचना या व्यवस्था की सटीक डिज़ाइन, आरेख और 3D मॉडल तैयार किया जा सकता है। फ्लोरीकल्चर में इसका उपयोग फूलों की सजावट, बगीचों के नक्शे, ग्रीनहाउस के प्लान, तथा शहरी उद्यानों के डिज़ाइन हेतु किया जाता है।

फ्लोरीकल्चर में CAD के प्रमुख उपयोग

1. **फूलों की सजावट और डिजाइन :** CAD सॉफ्टवेयर की सहायता से विवाह, समारोह, गिफ्ट बकेट्स, आदि की फूलों की सजावट का वर्चुअल डिजाइन तैयार किया जा सकता है। डिजाइन को ग्राहक को दिखा कर पहले से अनुमोदन प्राप्त किया जा सकता है। फूलों की रंग योजना, बनावट और प्रकार का विश्लेषण डिजिटल रूप से संभव होता है।

2. **ग्रीनहाउस और नर्सरी की योजना Ñ** CAD सॉफ्टवेयर ग्रीनहाउस के भीतर के लेआउट की डिजाइनिंग में मदद करता है। यह रोपण पंक्तियों, सिंचाई पथ, तापमान क्षेत्रों और छायांकन जैसी चीज़ों को प्लान करने में सक्षम होता है। इससे अधिकतम स्थान उपयोग और उत्पादन क्षमता सुनिश्चित की जाती है।

3. **भूनिर्माण (लैंडस्केप डिज़ाइन):** शहरों के पार्क, गार्डन, वर्टिकल गार्डन, रूफ टॉप गार्डन के डिज़ाइन के लिए CAD टूल्स जैसे AutoCAD, SketchUp, और Land F/X का उपयोग किया जाता है। CAD के माध्यम से मौसमी फूलों की योजना, प्रकाश प्रभाव, जल निकासी प्रणाली, आदि का पूर्वानुमान संभव होता है।

4. **प्रदर्शनी और इवेंट प्लानिंग :** फूलों की प्रदर्शनियों, पुष्प शो, या शादी समारोहों में CAD से सजावट की पूरी योजना पहले से बनाई जा सकती है।इससे स्थान के अनुसार सटीक फूलों की संख्या और वितरण योजना तैयार की जा सकती है।

5. **शिक्षा और प्रशिक्षण:** फ्लोरीकल्चर के छात्रों को लैंडस्केप डिज़ाइन, प्लांटिंग स्कीम, और फ्लोरल अरेंजमेंट सिखाने के लिए CAD का प्रयोग किया जाता है। यह त्रिविमीय (3D) और द्विविमीय (2D) मॉडलिंग के माध्यम से स्पष्ट समझ प्रदान करता है।

फ्लोरीकल्चर में उपयोग किए जाने वाले प्रमुख CAD सॉफ्टवेयर

सॉफ्टवेयर	उपयोग
AutoCAD	ग्रीनहाउस, लैंडस्केप और नर्सरी डिजाइन
SketchUp	फ्लोरल अरेंजमेंट और इवेंट सजावट
Land F/X	उन्नत लैंडस्केप और सिंचाई योजना
Vectorworks Landmark	बागवानी और स्थल विश्लेषण हेतु
Floral Design Pro (विशेषीकृत)	पेशेवर फ्लोरल डिजाइन हेतु

CAD के लाभ

लाभ	विवरण
सटीकता	डिज़ाइन की सूक्ष्मता और संतुलन सुनिश्चित करता है।
पूर्वदर्शन (Visualization)	डिज़ाइन को 3D रूप में देख कर पहले से समझा जा सकता है।
समय की बचत	मैन्युअल डिजाइनिंग की तुलना में तेज और त्रुटिहीन प्रक्रिया।
किफायती	अनावश्यक प्रयोग और संसाधनों की बर्बादी से बचाव।
रचनात्मकता में वृद्धि	नई शैली, रंग संयोजन, और लेआउट पर प्रयोग संभव।

भविष्य की संभावनाएं: जैसे-जैसे कृषि और बागवानी क्षेत्रों में डिजिटलीकरण बढ़ रहा है, फ्लोरीकल्चर भी अब पारंपरिक तरीकों से हटकर तकनीक आधारित समाधान की ओर अग्रसर हो रहा है। CAD तकनीक ने इस क्षेत्र में सटीक डिज़ाइन, लागत नियंत्रण, रचनात्मकता, और उपभोक्ता-केंद्रित समाधान की संभावनाओं को जन्म दिया है। आने वाले वर्षों में इसके साथ जुड़े कई और आयाम विकसित होने की संभावना है, जो न केवल उत्पादन और विपणन को प्रभावित करेंगे, बल्कि शहरी हरित विकास, रोजगार, और सतत कृषि में भी योगदान देंगे।

1. **विशेष CAD सॉफ्टवेयर का विकास:** भविष्य में ऐसे CAD टूल्स विकसित होंगे जो केवल फूलों की डिज़ाइनिंग, लेआउट, और लैंडस्केपिंग के लिए अनुकूलित होंगे।इनमें पहले से इनबिल्ट डेटाबेस होगा जैसे-फूलों की किस्मों का चयन (रंग, मौसम, ऊंचाई, सुगंध)संयोजन सुझाव (bouquet, centerpieces, arches आदि के लिए) इससे छोटे उद्यमियों को डिज़ाइनिंग सेवाएं सुलभ और किफायती मिलेंगी।

2. आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग का समावेश CAD को AI से जोड़कर स्मार्ट डिजाइन सजेशन प्राप्त किए जा सकते हैं: कौन सा डिज़ाइन किस मौसम और आयोजन के लिए उपयुक्त है?कौन से फूल एक-दूसरे के साथ सौंदर्य दृष्टि से मेल खाते हैं?AI आधारित CAD टूल्स उपयोगकर्ता की पसंद और जरूरतों के अनुसार व्यक्तिगत डिज़ाइन सुझाएंगे। इससे ग्राहक संतुष्टि और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा दोनों में वृद्धि होगी।

3. **वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) का एकीकरण :** ग्राहक या आयोजक फूलों की सजावट को पहले से वर्चुअल स्पेस में अनुभव कर पाएंगे:विवाह स्थल की सजावट का 3D वॉकथ्रू ,टेरेस गार्डन या वर्टिकल वॉल की वास्तविकता के करीब झलक ,इससे निर्णय लेने में आसानी होगी और डिज़ाइन में अंतिम समय में बदलाव की आवश्यकता कम होगी।

4. **सेंसर आधारित स्मार्ट ग्रीनहाउस डिजाइन :** CAD टूल्स को IoT (Internet of Things) उपकरणों से जोड़कर ग्रीनहाउस की सटीक डिज़ाइन और निगरानी संभव होगीः तापमान, नमी, CO2 स्तर आदि की रियल-टाइम मैपिंग CAD मॉडल में इनपुट करके सर्वोत्तम प्लांटिंग ज़ोन निर्धारित करनाइससे फ्लोरीकल्चर उत्पादन अधिक प्रभावी, संसाधन-कुशल और पर्यावरण-अनुकूल होगा।

5. **मोबाइल आधारित CAD ऐप्स और क्लाउड इंटीग्रेशन :** भविष्य में CAD डिज़ाइनिंग को मोबाइल ऐप्स के माध्यम से कहीं से भी एक्सेस और एडिट किया जा सकेगा। क्लाउड-आधारित CAD प्लेटफॉर्म्स से डिज़ाइन को साझा करना, सहयोग करना और संग्रह करना सरल होगा।इससे ग्रामीण स्तर पर कार्यरत छोटे उत्पादकों को डिज़ाइनिंग में सशक्त किया जा सकेगा।

6. **3D प्रिंटिंग और फ्लोरल प्रोटोटाइप :** CAD डिज़ाइन को सीधे 3D प्रिंटर से आउटपुट लेकर फ्लोरल संरचनाओं के प्रोटोटाइप बनाए जा सकेंगे। जैसे-वॉलबेस, टेबल सेटअप, स्टैंड्स, आर्च आदि इससे नवाचार, उत्पाद परीक्षण, और अनुकूलन की गति बढ़ेगी।

7. **सतत (Sustainable) और जलवायु-अनुकूल डिज़ाइन :** CAD के माध्यम से भविष्य में ऐसे डिज़ाइन बनाए जा सकेंगे जोः कम पानी खपत वाले फूलों का चयन करें, स्थानीय जैव विविधता को बढ़ावा दें, गैर-बायोडिग्रेडेबल सजावट सामग्री से परहेज करें, यह शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों हेतु पर्यावरण अनुकूल फ्लोरीकल्चर को प्रोत्साहित करेगा।

8. **स्मार्ट सिटी और शहरी भूनिर्माण में सहयोग :** CAD डिज़ाइन फ्लोरीकल्चर को स्मार्ट सिटी प्लानिंग से जोड़ सकता हैः हरित दीवारें (Green Walls) ,वर्टिकल गार्डन,रोटरी, पार्क, मेट्रो पिलर सजावट आदि की योजना इससे न केवल सौंदर्य बढ़ेगा बल्कि हवा की गुणवत्ता और तापमान नियंत्रण जैसे लाभ भी मिलेंगे।

निष्कर्ष : CAD तकनीक आने वाले समय में फ्लोरीकल्चर के हर पहलू को छूने वाली है- चाहे वह डिज़ाइनिंग, उत्पादन, विपणन, शहरी नियोजन या प्रशिक्षण हो। इसके माध्यम से प्रदर्श, स्थायित्व और नवाचार को नया आयाम मिलेगा। CAD आधारित फ्लोरीकल्चर न केवल व्यवसाय को डिजिटल युग में प्रतिस्पर्धी बनाएगा, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन, ग्राहक संतुष्टि, और युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर भी उत्पन्न करेगा।

ऑयस्टर मशरूम की खेती: किसानों की आर्थिक उन्नति के अवसर

✍ डॉ. आकांक्षा पाण्डेय सहायक प्राध्यापक
कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र कोरबा
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़)

ऑयस्टर मशरूम की खेती किसानों के लिए एक आकर्षक और लाभदायक विकल्प बनाते हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो कम लागत वाली, उच्च-लाभ वाली खेती पद्धतियों की तलाश में हैं। ऑयस्टर मशरूम को हिंदी में "ढिंगरी मशरूम" कहा जाता है। यह एक उच्च प्रोटीन, लो-फैट और पौष्टिक खाद्य पदार्थ है जिसकी खेती कम लागत में और कम जगह में भी की जा सकती है। ऑयस्टर मशरूम एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन (ए, बी3, बी5, बी6 और डी सहित) और पोटेशियम, आयरन, फॉस्फोरस और जिंक जैसे खनिजों से भरपूर होते हैं। माना जाता है कि वे खराब कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करके हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं और रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में भूमिका निभाते हैं। मशरूम एक तेजी से बढ़ने वाली फसल है जिसे आसानी से छोटी जगहों पर उगाया जा सकता है, जिससे वे ग्रामीण और शहरी दोनों तरह की खेती के लिए उपयुक्त हैं। न केवल उन्हें उगाना आसान है, बल्कि वे आवश्यक पोषक तत्वों से भी भरपूर हैं, जो उन्हें किसी भी आहार का एक स्वस्थ हिस्सा बनाते हैं।

ऑयस्टर मशरूम की खेती के लाभ: 1. उच्च उत्पादकता 2. सुखाने और स्टोर करने में आसान 3. कम निवेश 4. कम प्रतिस्पर्धा 5. स्वास्थ्य लाभ 6. स्थायित्व 7. निर्यात क्षमता 8. न्यूनतम स्थान की आवश्यकता 7

उगाने की आदर्श परिस्थितियाँ: ऑयस्टर मशरूम 20°C और 25°C के बीच के तापमान में सबसे अच्छे से उगते हैं, जिसमें 80-85% की आर्द्रता होती है। नमी को नियंत्रित करने के लिए स्प्रेयर से मैन्युअल रूप से पानी का छिड़काव किया जा सकता है या अधिक सुसंगत नियंत्रण के लिए ह्यूमिडिफ़ायर का उपयोग किया जा सकता है।

आदर्श तापमान: 20°C से 30°C, आद्रता (Humidity): 80% से 90% अच्छी वेंटिलेशन जरूरी है। साफ-सफाई बनाए रखें। बैग में फफूंदी लगे तो हटा दें।

आवश्यक सामग्री: 1. सब्सट्रेट के लिए खेत का कचरा वो माध्यम होता है जिस पर मशरूम उगते हैं। सबसे आम माध्यम हैं: गेहूं या धान की भूसी, सूखे पत्ते, कॉटन वेस्ट, गन्ने की खोई 2. पानी के ड्रम 3. पॉलीथीन शीट 4. गैस स्टोव/आटोक्लेव/नसबंदी के लिए रसायन 5. पॉलीथीन कवर 6. स्पॉन 7. बेड की व्यवस्था के लिए रैक या रस्सियाँ 8. पैकेजिंग सामग्री 9. पानी का स्प्रेयर स्पॉन मशरूम की खेती के लिए इस्तेमाल की जाने वाली बीज सामग्री है। हालाँकि, बीजों के बजाय, इसमें एक वाहक सामग्री (जैसे अनाज, चूरा या पुआल) होती है, जिसे मशरूम माइसेलियम (कवक का वनस्पति भाग) द्वारा उपनिवेशित किया गया है। स्पॉन को सरकारी और निजी दोनों आपूर्तिकर्ताओं से प्राप्त किया जा सकता है। मशरूम अनुसंधान निदेशालय, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान और अन्य कृषि अनुसंधान संस्थान जैसे प्रसिद्ध संस्थान उच्च गुणवत्ता वाले स्पॉन प्रदान करते हैं। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आपके द्वारा चुना गया स्पॉन अच्छी गुणवत्ता का हो, क्योंकि यह आपके मशरूम की खेती की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मशरूम की खेती में, सब्सट्रेट वह सामग्री है जो मशरूम को बढ़ने के लिए भोजन के रूप में काम करती है। उदाहरण के लिए, धान का भूसा, मकई के दाने, खोई आदि सब्सट्रेट के रूप में काम कर सकते हैं। ये सामग्री पोषक तत्व और संरचना प्रदान करती हैं जो मशरूम माइसेलियम को पनपने के लिए आवश्यक है। सब्सट्रेट तैयार करने के लिए, खेत के कचरे को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटना शुरू करें। उदाहरण के लिए, धान के भूसे को लगभग 2-3 इंच लंबे टुकड़ों में काटा जाना चाहिए ताकि खेती की प्रक्रिया के दौरान इसे संभालना आसान हो सके। एक बार कट जाने के बाद, सब्सट्रेट स्टरलाइज़ेशन प्रक्रिया के लिए तैयार हो जाता है, जो मशरूम को बिना किसी संदूषण के बढ़ने के लिए एक स्वच्छ वातावरण सुनिश्चित करता है।

सब्सट्रेट का स्टरलाइज़ेशन: ऑयस्टर मशरूम की खेती की प्रक्रिया में सब्सट्रेट को स्टरलाइज़ करना एक ज़रूरी कदम है। यह हानिकारक बैक्टीरिया, फफूंद और अन्य सूक्ष्मजीवों को खत्म करता है **जो मशरूम की वृद्धि में बाधा डाल सकते हैं, सब्सट्रेट को स्टरलाइज़ करने के दो मुख्य तरीके हैं:** 1. गर्म पानी का उपचार : इस विधि में, सबसे पहले, कटे हुए धान के भूसे को 4 घंटे के लिए ठंडे पानी में भिगोएँ। भिगोने के बाद, पानी को निकाल दें और इसे ताज़ा पानी से बदल दें। भूसे को एक बर्तन में रखें और इसे 1 घंटे के लिए आंच पर उबालें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यह ठीक से स्टरलाइज़ हो गया है। भूसे को एक साफ कपड़े या पॉलीथीन शीट पर एक पतली परत में फैलाएँ और इसे छाया में तब तक सूखने दें जब तक कि इसमें 60-65त्र नमी न हो जाए। 2. रासायनिक उपचार: वैकल्पिक रूप से, आप सब्सट्रेट को स्टरलाइज़ करने के लिए रासायनिक उपचार का उपयोग कर सकते हैं। 100 लीटर ठंडे पानी में 10 ग्राम कार्बेन्डाजिम और 120 मिली फॉर्मेलिन मिलाएं। इस घोल में एक बैग में रखे 10 किलो सूखे भूसे को भिगोएं और इसे हवाबंद करने के लिए कसकर ढक दें। इसे 16 घंटे तक भीगने के लिए छोड़ दें। भीगने के बाद भूसे को हटा दें और अतिरिक्त रासायनिक घोल को निकाल दें। भूसे को कीटाणुरहित कपड़े या पॉलीथीन शीट पर एक पतली परत में फैलाएं, फिर इसे छाया में तब तक सूखने दें जब तक कि इसमें 60-65त्र नमी न हो जाए। यह जाँचने के लिए कि नमी की मात्रा सही है या नहीं, एक मुट्ठी स्ट्रॉ लें और उसे कसकर निचोड़ें। स्ट्रॉ नम महसूस होना चाहिए, लेकिन पानी बाहर नहीं टपकना चाहिए।

मशरूम बेड की तैयारी: ऑयस्टर मशरूम की खेती आमतौर पर पारदर्शी पॉलीथीन कवर में की जाती है। कवर का आकार 60 × 30 सेमी होना चाहिए, जिसकी मोटाई 80 गेज हो। एक बैग के लिए लगभग 150 से 200 ग्राम अच्छी तरह से उगाए गए स्पॉन लें। पॉलीथीन बैग के निचले हिस्से में 3 इंच की परत में पुआल डालें। फिर, मुट्ठी भर स्पॉन लें और इसे पुआल की परत पर छिड़कें, किनारों पर ज़्यादा ध्यान दें। लगभग 5 इंच ऊँची पुआल की दूसरी परत डालें और उसी तरह स्पॉन डालें। स्पॉन के साथ पुआल की पाँच से छह परतें बनाने के लिए इस प्रक्रिया को दोहराएँ। बेड को धीरे से दबाएँ ताकि यह थोड़ा संकुचित हो जाए और फिर कवर के ऊपरी हिस्से को धागे से कसकर बाँध दें। वेंटिलेशन के लिए पॉलीथीन कवर के चारों ओर बेतरतीब ढंग से छोटे छेद करने के लिए सुई का उपयोग करें। आप उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इस तरह से कई बिस्तर तैयार कर सकते हैं।

स्पॉन रनिंग के लिए बिस्तरों की व्यवस्था: स्पॉन रनिंग मशरूम की खेती में वह चरण है, जहां मशरूम माइसेलियम (फंगल नेटवर्क) बढ़ता है और पूरे सब्सट्रेट में फैलता है। प्रभावी स्पॉन रनिंग सुनिश्चित करने के लिए, बेड को एक अंधेरे कमरे में व्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि अंधेरा प्रक्रिया को गति देने में मदद करता है। आप बेड को रैक पर रख सकते हैं या हैंगिंग सिस्टम का उपयोग कर सकते हैं। कमरे का तापमान 22-25 डिग्री सेल्सियस के बीच बनाए रखा जाना चाहिए, और सापेक्ष आर्द्रता लगभग 85-90त्र होनी चाहिए। नमी के स्तर को उच्च रखने के लिए समय-समय पर पानी छिड़कना महत्वपूर्ण है। संदूषण के किसी भी संकेत के लिए प्रतिदिन बेड की निगरानी करें। यदि संदूषण का पता चलता है, तो इसे फैलने से रोकने के लिए प्रभावित बेड को तुरंत हटा दें और नष्ट कर दें। स्पॉन रनिंग प्रक्रिया को पूरा होने में आमतौर पर 20 से 30 दिन लगते हैं। एक बार जब स्पॉन पूरी तरह से बेड पर बन जाता है, तो उन्हें मशरूम बटन के निर्माण को आरंभ करने के लिए क्रॉपिंग रूम में ले जाया जा सकता है।

ऑयस्टर मशरूम बेड को क्रॉपिंग रूम में स्थानांतरित करना: बटन गठन को ट्रिगर करने के लिए स्पॉन-रन बेड को संभालने के कई तरीके हैं: ओपन बेड विधि: पॉलीथीन कवर को पूरी तरह से हटा दिया जाता है, जिससे बेड को फसल के लिए खुला छोड़ दिया जाता है। बंद बेड विधि: पॉलीथीन कवर बरकरार रहता है, और कवर में छेद किए गए छिद्रों के माध्यम से मशरूम बटन बढ़ते हैं। आधा कवर खुला तरीका: फसल के लिए पॉलीथीन कवर का आधा हिस्सा हटा दिया जाता है, और दूसरा आधा पहली कटाई के बाद हटा दिया जाता है। धारीदार विधि: पॉलीथीन कवर को बेड पर 4-6 स्थानों पर अनुदैर्ध्य पट्टियों में काटा जाता है। काटने के बाद, बेड को एक दिन के लिए सूखने दें, क्योंकि ताज़ा खुले बेड में नमी की मात्रा अधिक होती है। दूसरे दिन से, स्प्रेयर का उपयोग करके क्यारियों पर पानी का छिड़काव करें। मौसम की स्थिति के आधार पर, दिन में दो से तीन बार छिड़काव पर्याप्त होना चाहिए। सुनिश्चित करें कि क्यारियाँ पूरी तरह से सूख न जाएँ। बेड खोलने के दो से तीन दिन के भीतर, आपको पिनहेड (छोटे मशरूम बटन) दिखाई देने लगेंगे। ये अगले 7 से 10 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाएँगे।

ऑयस्टर मशरूम की कटाई: सुबह-सुबह मशरूम के पूरे गुच्छे को सावधानी से काटें। जब मशरूम का किनारा थोड़ा ऊपर मुड़ने लगे, तब काट लें। कटाई के बाद अगले 10-15 दिन में दूसरी कटाई भी हो सकती है। बेड की स्थिति के अनुसार आवृत्ति को समायोजित करते हुए, प्रतिदिन बेड पर स्प्रे करें। आमतौर पर, प्रति दिन दो से तीन स्प्रे की आवश्यकता हो सकती है। दूसरी और तीसरी कटाई 10 से 15 दिन के अंतराल पर की जा सकती है। तीसरी कटाई के बाद क्यारियों को नष्ट कर दें, क्योंकि इस बिंदु से आगे उन्हें रखना आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं होता। मशरूम की कटाई करके उन्हें तुरंत पैक करना सबसे अच्छा है। ऑयस्टर मशरूम की खेती प्रभावशाली उपज प्रदान करती है। सिर्फ़ 1 टन धान के भूसे से, आप 45 से 60 दिनों के भीतर लगभग 500 से 800 किलोग्राम ताज़ा ऑयस्टर मशरूम की कटाई कर सकते हैं। प्रति बैग 500-700 ग्राम तक उत्पादन। बाजार में भाव 100 से 200 प्रति किलो तक।

कटाई के बाद ऑयस्टर मशरूम की हैंडलिंग: कटाई के बाद, मशरूम को उनकी ताज़गी बनाए रखने के लिए सावधानी से पैक करना ज़रूरी है। प्रत्येक पॉलीथीन बैग में लगभग 200 ग्राम मशरूम पैक करें, यह सुनिश्चित करते हुए कि हवा के संचार के लिए कुछ वेंटिलेशन छेद बनाए गए हों। कटे हुए मशरूम को 2-4 छोटे पिनहोल वाले पॉलीथीन बैग में पैक करें। पैकिंग के बाद, मशरूम को रेफ्रिजरेटर में 5°C पर स्टोर करें। यह उनकी श्वसन दर को कम करके और पानी की कमी को रोककर उनके शेल्फ़ लाइफ़ को 3-5 दिनों तक बढ़ाने में मदद करता है।

ऑयस्टर मशरूम की बिक्री: ऑयस्टर मशरूम को विभिन्न वितरण चैनलों के माध्यम से बेचा जा सकता है। आप उन्हें सीधे अपनी कंपनी के आउटलेट पर बेच सकते हैं या उन्हें रेस्तराँ, सुपरमार्केट, कैटरर्स और घरों में भी सप्लाई, निर्यात के अवसर का कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

मुर्गियों में ग्रीष्मकालीन तनाव प्रबंधन

डॉ. पीयूश कुमार, डॉ. डी.के जोल्हे
डॉ रजनी फ्लोरो कुजुर, डॉ. प्रीती सिंह
डॉ. दिव्या महिलाने, डॉ. योगेश नाग
पशु विकृति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

गर्मी का मौसम मुर्गी पालक किसानो के लिए सबसे मुश्किल समय में से एक है। गर्मी के महीने में ग्रीष्म कालीन तनाव आमतौर पर देखा जाता है जिसके प्रभाव में अंडे के उत्पादन में कमी, मुर्गी के अंडे की गुणवत्ता और ब्रायलर उत्पादन में वृद्धि दर में कमी शामिल है जिसके परिणाम स्वरूप गरीब किसानों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। पक्षियों में पसीने की ग्रंथि के अनुपस्थिती के कारण गर्मी के मौसम में ताप नियंत्रण मुश्किल हो जाता है। वायु संचालन का प्रावधान, पक्षी का घनत्व, पोषण संबंधी हेरफेर, खनिजों - इलेक्ट्रोलाइट की पूर्ति गर्मियों के तनाव को कम करने के लिए कुछ मुख्य उपाय है।

तनाव क्या है

हीट स्ट्रेस (ताप तनाव) तब होता है जब किसी पक्षी के शरीर का तापमान उसकी सामान्य सीमा से ऊपर बढ़ जाता है, जिसका मुख्य कारण पर्यावरण में ऊष्मा का प्रभावी रूप से छोड़ने में विफलता है।

ग्रीष्म कालीन तनाव के स्त्रोत और फ्लॉक पर उनका प्रभाव

* शरीर की गर्मी ही तापमान बढ़ने का मुख्य स्त्रोत है।
* शेड में हवा का तापमान
* छत और दीवारो से गर्मी

चूंकि पक्षियों में पसीना लाने वाली ग्रंथि नही होती, इसलिए उच्च पर्यावरणीय तापमान में, वे अपने व्यवहार और ताप संतुलन को ताप नियमन की तलाश में बदल देते हैं, जिससे रक्त की गर्मी कम हो जाती है, पक्षियों में सिर झुकाने और बैठने में असमर्थता जैसे लक्षण दिखते है । भोजन करने, हिलने-डूलने या चलने में कम समय बिताते है, लेकिन पीने, हॉफने और आराम करने की स्थिति में अधिक समय बिताते है। गर्मियों में तनाव के कारण मुर्गियों की वृद्धि धीमी हो जाती है और उनका वजन कम हो जाता है। दाना का कम उपयोग होता है बीमारी के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

मुर्गियों में ग्रीष्म कालीन तनाव का संकेत

जब पक्षी गर्मियों में तनाव की स्थिति में होते है, तो वे मुँह खोलकर हॉफते है अपने पंख फैलाते है और जमीन के किनारे बैठ जाते है। आँख बंद करना, लेट जाना, अंडे का उत्पादन कम होना, भूख में कमी अन्य पक्षियों से दूर जाना, ठंडी सतहो की तरफ जाने का प्रयास करते है।

गर्मियों में ताप तनाव कम करने के उपाय

गर्मियों में तनाव को कम करने के विभिन्न उपाय अपनाए जा सकते है -

1.**आवास प्रबंधन**-मुर्गी घर के सतहो को उस हिसाब से बनाना चाहिए ताकि उसमें गर्मी के प्रवेश को रोका जा सके। पोल्ट्रीशेड की दिशा पूर्व से पश्चिम होना चाहिए ताकि सूर्य की किरणी सीधा पोल्ट्री शेड में न जाए ।

2.फॉगर और स्प्रिंकलर का उपयोग करना चाहिए।

3.लिटर प्रबंधन

गर्मी के मौसम में लिटर का तापमान बढ़ जाता है, लिटर के तापमान को कम करने के लिए, लिटर को सही रूप से गीला रखना चाहिए नही तो खराब गंध और अमोनिया गीले लिटर के कारण होते है जो विकास दर को बाधा डाल सकते है, मक्खियों को आकर्षित कर सकते है और पक्षियों में तनाव बढ़ा सकते है।

4.सीलिंग फैन

शेड के अंदर सीलिंग फैन होने से शेड के अंदर तापमान को नियंत्रित कर सकते है।

5.जल प्रबंधन

* मुख्य जल टैंक को सुखे घास की परत से ढक दे, और उस पर सफेदी रंग दे।

Fig. 121 Curtain management

* पाइपलाइनों को जूट की बोरियों से ढकना चाहिए। पाइप लाइन रिसाव की समय-समय पर जाँच करते रहे।
* ऑटो ड्रिंकर को शेड के अंदर बीच-बीच में फ्लश किया जाना चाहिए।

6.पर्दा प्रबंधन

बुर्डिंग के समय अच्छे और मुक्त वायु संचार के लिए पर्दे का उपयोग करना चाहिए, जब भी अंदर का तापमान अधिक हो, तो शेड के अंदर अच्छे वायु-संचार के लिए दोनों तरफ के बाहरी पर्दे नीचे खीच दें।

7. पानी के खपत को बढ़ाने के तरीके

गर्मी के समय में पानी की खपत को बढ़ाने के लिए- आँवला, नींबू का रस, छाछ इत्यादि पिलाए । शुरूआती बारह घंटे में चूजो को इलेक्ट्राल पानी दे।

8. दाना प्रबंधन

* चूजों को ताजा दाना दें * यदि पक्षी कमजोर है, तो भोजन में लीवर टॉनिक, विटामिन, वृद्धि बढ़ाने वाले पदार्थ मिलाएं ।

अन्य तरीके - शेड के दोनो तरफ पेड़-पौधो लगाने से 5°F तापमान कम कर सकते है।

01/2023-24

डॉ. योगेश नाग, डॉ. आर.एफ. कुजूर
डॉ. डी.के. जोलहे, डॉ. पी. सिंह
डॉ. आर.सी. घोष, डॉ. पी.सिदार
डॉ. एन. भगत, डॉ.के. कंवर, डॉ. डी. महिलाने
पशु विकृति विज्ञान विभाग पशु चिकित्सा व पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

बकरियों में फड़किया (एंटेरोटॉक्सिमिया/ PULPY KIDNEY DISEASE)

एंटरोटॉक्सिमिया बकरियों में मौत का एक सामान्य कारण है। विशेष रूप से अच्छे से खिलाये जाने वाले मेमनो में मृत्यु दर 10% से 40% तक घातक प्रकोपो में हो सकती है। यह बकरियो के लिए एक महत्वपूर्ण रोग है। कुछ क्षेत्रों में यह बकरियों का एक व्यापक रोग है। हांलाकि इसे 'ओवरईटिंग डिजीज' भी कहा जाता है। वास्तव में यह अधिक खाने से नही होता। इसका असली कारण बैक्टीरिया क्लास्ट्रिडियम परफ्रिंजेस टाइप (सी) या टाइप (डी) द्वारा उत्पादित विष है।

रोग के कारक

यह रोग जीवाणु (बैक्टीरिया) क्लोस्ट्रिडियम परफ्रिजेंस टाइप डी के कारण होता है। यह जीवाणु सामान्यतः अधिकाश जानवरों की आंतो में मौजूद रहता है। भारी मात्रा में और उच्च गुणवत्ता वाले आहार के कारण यह जीवाणु तेजी से बढ़ता है। तथा एक शक्तिशाली विष उत्पन्न करता है। यह विष आंत की दीवारों के माध्यम से अवशोषित होता है और कुछ ही घंटो में जानवर की मृत्यु का कारण बन सकता है।

बकरियों में इस घातक बीमारी के विकसित होने की सूची -:

1.आहार में अचानक बदलाव। 2.बहुत अधिक ऊर्जा वाला आहार (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्टार्च)। 3. सघन आहार (कंसस्ट्रेट) की मात्रा को अचानक और तेजी से बढ़ाना। 4.पेट में अंन्तः परजीवियो का संक्रमण। 5. प्राकृतिक प्रतिरक्षा की कमी 6.आंत में आंशिक रूप से पचा हुआ भोजन अधिक मात्रा में होना जिससे आंत कमजोर हो जाती है और विष अधिक अवशोषित होता है।

बकरियों में एंटेरोटक्सिमिया के लक्षण

1.भोजन बंद करना और सुस्त होना-प्रभावित जानवर अचानक खाना बंद कर सकते हैं और बहुत निष्क्रिय (Lethargic) हो जाते है।

2.पेट दर्द के संकेत-जानवर पेट दर्द के लक्षण दिखाते हैं। जैसे पेट पर लात मारना बार-बार लेटना और उठना तेज सांस लेना ।

3.दस्त -प्रभावित जानवरो में दस्त हो सकता है।

4.खड़े होने में असमर्थ-जानवर खड़े होने की क्षमता खो सकते हैं। अपने शरीर को किनारे पर लिटा सकते हैं। अपने पैरो को फैला सकते है। यह स्थिती विष के मस्तिष्क पर प्रभाव के कारण होती है।

5.अचानक मृत्यु - एंटेरोटाक्सिमिया इतनी तेजी से बढ़ सकता है कि जानवर बिना किसी लक्षण दिखाये मृत पाए जा सकते हैं।

रोग का निदान

मरणोपरांत जांच (Necropsy) निदान में मदद करती है। यदि मृत्यु के तुरंत बाद या थोड़े समय के भीतर नेक्रोप्सी की जाती है तो खास बदलाव दिखाई नहीं देते, विशेषकर यदि जानवर अचानक मरा हो। हांलाकि जब बदलाव देखे जाते हैं। तो आमतौर पर इस तरह दिखाई देते हैं।

1. फेफड़ों में जमाव और तरल पदार्थ का संग्रह।
2. हृदय की थैली में (पेरीकार्डियल सैक) में तरल पदार्थ का बढ़ना और फाइब्रिन का जमाव।
3. हृदय की दीवारों के बाहरी और भीतरी मांसपेशी झिल्लियों के नीचे छोटे रक्तस्राव ।
4. गुर्दे के ऊतक तरल पदार्थ से भरे हो सकते हैं। और तेजी से खराब हो सकते हैं। यही वह स्थिती है, जिसे 'पल्पी किडनी' कहा जाता है।
5. घाव तेजी से सड़ता है और गैस से भर जाता है।
6. मरे हुए जानवर के मूत्र में यदि परिक्षण किया जाए, तो आमतौर पर उच्च स्तर की ग्लूकोज पाई जाती है।

इस रोग की पुष्टि मृत जानवर पर किए गए प्रयोगशाला परीक्षणों के माध्यमों से की जा सकती है।

उपचार

1.मामूली मामलों में का उपचार

दर्द निवारक दवाएं - दर्द को कम करने के लिए उपयोगी होती है।

प्रोबायोटिक्स – जेल या पेस्ट के रूप में अच्छे बैक्टीरिया प्रदाए किए जाते हैं। जो आंत के स्वास्थ्य को सुधारते है।

एंटीसिरा - यह एक केन्द्रीत एंटीबाडी घोल होता है। जो बैक्टीरिया द्वारा उत्पादित विष को निष्क्रिय करता है।

2.गंभीर मामलों का उपचार

इंट्रावेनस फ्लूइड – निर्जलीकरण को रोकने और शरीर के सामान्य कार्यो को बनाए रखने के लिए दिया जाता है।

एंटीबायोटिक थेरेपी – संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए

टीकाकरण -: बकरियों के लिए कई प्रकार के टीके उपलब्ध है जो क्लोस्ट्रिडियम परफ्रिंजेस टाइप सी टाइप डी द्वारा उत्पन्न विषों के लिए प्रतिरक्षा विकसित करते हैं। ये टीके अक्सर थ्री-वे वैक्सीन कहलाते हैं क्योंकि ये तीन बैक्टीरिया के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करते हैं।

1.क्लोस्ट्रिडियम परफ्रिंजेस टाइप सी 2.क्लोस्ट्रिडियम परफ्रिंजेस टाइप डी 3.क्लोस्ट्रिडियम टिटेनी

चूंकि टिटनेस भी बकरियों में एक महत्वपूर्ण रोग है। इसलिए अधिकांश पशु चिकित्सक यह सलाह देते हैं कि उन्हें ऐसे टीके दीये जाये जो उन्हें टिटनेस के खिलाफ भी सुरक्षा प्रदान करें।

प्रबंधन : 1.चारागाह से चारा देने की स्थिती में बदलाव को धीरे-धीरे करें। * सबसे पहले बकरियों को घास पर रखें।* उसके बाद धीरे-धीरे उन्हें केन्द्रित आहार का आदि बनायें।

2.पशुओं में परजीवी की जाँच करे और टीकाकरण से पहले डी वर्मिंग करें। * परजीवी का भार प्रतिरोधी एंटीबाडी के उत्पादन में प्रभाव डालता है।

3.बकरियों के लिए हमेशा पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध करें। * इससे वे एक बार में ज्यादा खाने से बचेंगी।

'खरीफ फसलों का आर्थिक महत्व: भारत की ग्रामीण समृद्धि की रीढ़'

डॉ. सत्यनारायण सोनी कृषि अर्थशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, रायगढ़ (छ.ग.)

प्रस्तावना: भारत की कृषि व्यवस्था मुख्य फसल ऋतुओं पर आधारित है- रबी, जायद और खरीफ। इन दोनों में खरीफ फसलों का विशेष महत्व है, क्योंकि ये फसलें मानसून पर आधारित होती हैं और देश के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में गहरी भूमिका निभाती हैं। खरीफ फसलें, जो मुख्यतः मानसून (जून से सितंबर) के दौरान बोई जाती हैं, देश की खाद्य सुरक्षा व ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल आधार हैं। धान, मक्का, सोयाबीन, कपास, अरहर आदि खरीफ की प्रमुख फसलें हैं। परंतु वर्तमान में बदलते मौसम, बाजार की अस्थिरता और नीतिगत चुनौतियों ने इन फसलों के उत्पादन और किसानों की आय को प्रभावित किया है।धान, मक्का, कपास, सोयाबीन, बाजरा और दलहन जैसी फसलें खरीफ सीजन की पहचान हैं। इन फसलों का केवल खाद्य सुरक्षा ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आय, रोजगार, निर्यात और औद्योगिक विकास में भी बड़ा योगदान है।

राष्ट्रीय आय में योगदान

खरीफ फसलें भारतीय कृषि सकल घरेलू उत्पाद (Agri-GDP) में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी रखती हैं।

* धान और कपास जैसी प्रमुख खरीफ फसलें बड़ी मात्रा में उत्पादन देती हैं और देश की कुल कृषि आय में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

* कृषि से जुड़ी यह आय ग्रामीण उपभोग और क्रय शक्ति को भी प्रभावित करती है, जिससे संपूर्ण अर्थव्यवस्था को गति मिलती है।

रोजगार सृजन

* भारत में कृषि क्षेत्र 60% से अधिक जनसंख्या को रोजगार प्रदान करता है, जिसमें खरीफ सीजन की भूमिका अहम है।

* खरीफ सीजन में बुआई से लेकर कटाई तक बड़ी मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता होती है, जिससे मजदूर वर्ग को रोजगार मिलता है।

* कृषि से जुड़े सहायक कार्य जैसे खाद वितरण, कीटनाशक बिक्री, ट्रैक्टर किराया, कटाई मशीन, मजदूरी इत्यादि भी इस समय तेज हो जाते हैं।

3. खाद्य सुरक्षा और आत्मनिर्भरता

* धान, मक्का, दालें और मोटे अनाज जैसी फसलें देश की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करती हैं।

* खरीफ सीजन में उत्पादन की सफलता सीधे तौर पर सरकारी राशन प्रणाली (PDS) और पोषण योजनाओं को प्रभावित करती है।

4. औद्योगिक कच्चा माल

कई खरीफ फसलें औद्योगिक इकाइयों का आधार हैं-

* कपास : वस्त्र उद्योग का प्रमुख कच्चा माल

* सोयाबीन व तिलहन : खाद्य तेल उद्योग का आधार

* गन्ना (कुछ क्षेत्रों में खरीफ में बोया जाता है) : चीनी मिलों का कच्चा माल

इससे न केवल औद्योगिक उत्पादन होता है, बल्कि करोड़ों लोगों को गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार भी मिलता है।

5. निर्यात और विदेशी मुद्रा अर्जन

भारत धान (चावल), कपास, मक्का और दालों का प्रमुख निर्यातक है।

* 2023-24 में बासमती और गैर-बासमती चावल के निर्यात से अरबों डॉलर की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

* खरीफ फसलों का निर्यात भारत की विदेश व्यापार नीति में एक मजबूत स्तंभ के रूप में काम करता है।

6. सहायक व्यवसायों का विकास

खरीफ फसलें बीज उद्योग, कृषि रसायन, कृषि यंत्र, ट्रांसपोर्ट, मंडी व्यापार, और भंडारण जैसे कई सहायक व्यवसायों को भी बढ़ावा देती हैं, जिससे ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियाँ तीव्र होती हैं।

7. वित्तीय संस्थानों और ऋण प्रणाली पर प्रभाव

खरीफ सीजन में कृषि कार्यों के लिए किसानों को बड़े पैमाने पर फसल ऋण की आवश्यकता होती है। इससे बैंकों और सहकारी संस्थाओं की क्रेडिट गतिविधियाँ बढ़ती हैं।

* बैंकिंग क्षेत्र का ग्रामीण विस्तार और मुद्रा प्रवाह कृषि आधारित ऋण प्रणाली से सीधे जुड़ा होता है।

सुधार और संभावनाएं

1. जल-संवेदनशील खेती को बढ़ावा देना

* धान जैसी पानी-प्रधान फसलों के स्थान पर वैकल्पिक फसलें (जैसे कोदो, बाजरा) को प्रोत्साहित करना।

2. डिजिटल कृषि और स्मार्ट तकनीक

* मौसम पूर्वानुमान, मिट्टी परीक्षण, मोबाइल-ऐप आधारित कृषि सलाह से किसान बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

* ड्रोन और सटीक खेती (precision farming) खरीफ फसलों में मददगार हो सकती है।

एफपीओ (FPO) और बाजार से सीधा जुड़ाव

* किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के माध्यम से किसान अपनी फसलों का सीधा विपणन कर सकते हैं।

4. फसल बीमा और ऋण सुविधा में पारदर्शिता

* PM-Fasal Bima Yojana को पारदर्शी बनाकर छोटे किसानों तक पहुंचाया जाए।

सिंचाई और जल संरक्षण योजनाओं का विस्तार

* प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना और जल शक्ति अभियान जैसे कार्यक्रम खरीफ के लिए बेहद जरूरी हैं।

निष्कर्ष

खरीफ फसलें भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, लेकिन बदलते समय में इनकी उत्पादकता, लाभप्रदता और स्थायित्व पर प्रश्नचिह्न खड़े हो रहे हैं। इसके समाधान के लिए जरूरी है कि किसान केंद्रित नीतियाँ बनें, नवाचारों को अपनाया जाए और सरकारी योजनाओं को जमीनी स्तर तक प्रभावी रूप से पहुँचाया जाए। खरीफ फसलों की सफलता न केवल किसान की समृद्धि, बल्कि पूरे राष्ट्र की आर्थिक स्थिरता का आधार बन सकती है।

खरीफ फसलों का भारत की अर्थव्यवस्था में बहुआयामी योगदान है - चाहे वह आय सृजन हो, रोजगार हो, खाद्य सुरक्षा हो, निर्यात हो या औद्योगिक विकास। इन फसलों की सफलता से न केवल किसानों की आमदनी बढ़ती है, बल्कि देश की आर्थिक मजबूती भी सुनिश्चित होती है। आज आवश्यकता है कि खरीफ फसलों को लेकर सिंचाई, बाजार, बीमा और तकनीकी नवाचारों पर विशेष ध्यान दिया जाए, ताकि भारत का कृषि क्षेत्र आत्मनिर्भर और प्रतिस्पर्धी बन सके।

गौरी नन्दन गणेश जी के प्रिय फल कैंथ एवं जामुन

रोमा वर्मा शाक-सब्जी विभाग
महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सांकरा, दुर्ग (छ.ग.)

दस जुलाई, 2025 की सुबह पांच बजे मैं जग गई और हाथ जोड़कर अपने माता-पिता, गुरूदेव और श्रीकृष्ण एवं भगवान शंकर को हृदय से प्रणाम किया। तथा रोज की क्रियाएं कर स्नान करके नारंगी रंग की टी-शर्ट एवं लोवर डालकर तेजी से उस टहलने वाले रास्ते पर पहुंच गई जहां हमारे परम पूज्य गुरूदेव टहलते हैं। दूर से ही मैं उनको देख लिया था। अतः अपनी चाल की गति बढ़ा दिया और गुरूदेव के पैरों पर गिरकर लिपट गई। गुरूदेव ने मुझे दोनों हाथों से तुरन्त उठा लिये और बोले 'शिवदुषी भव' उनका आशीर्वाद पाकर मेरे आंखों से गंगा यमुना छलक पड़ी। मेरे गुरूदेव बड़े ही सरल स्वभाव के अति विनम्र व्यक्ति है जो सबकी मदद करते हैं।

मैं गुरूदेव के पीछे-पीछे चल रही थी। उस दिन आकाश में बादल छायी हुई थी और ठण्डी हवा चल रही थी। टहलते-टहलते मैंने देखा कि गुरूदेव एक वृक्ष के तने को पकड़ कर प्रणाम बोल रहे हैं। मैंने भी वैसा ही किया, मैंने पूछा गुरूदेव ऐसा आपने क्यों किया? गुरूदेव मेरी तरफ देखते हुए मुझसे पूछा कि क्या तुम श्री गणेश जी के प्रार्थना वाले श्लोक पर ध्यान दिया है? नहीं तो अब इसे ध्यान पूर्वक सुनों जो इस प्रकार है-

गजाननं, भूतगणादि सेवितम्।
कपिथ, जम्बू फल चारू भक्षणम्।।
उमा सुतं शोक विनाश कारकम्।
नमामि विघ्नेश्वरम् पाद पंकजम्।।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि हाथी के मुंह वाले भूतों तथा देवता द्वारा पूजे जाने वाले, कैंथ और जामुन के सुन्दर फल खाने वाले, उमा नन्दन जो दुख को नष्ट करने वाले हैं उस विघ्नेश्वर के कमल रूपी चरणों में प्रणाम समर्पित हैं।

ज्ञातब्य हो कि गणेश भगवान का अति प्रिय भोजन (प्रसाद) लड्डू और मोदक है जिसमें चीनी की बहुलता होती है। इसलिए मधुमेह से बचने के लिए गणेश जी ने कैंथ और जामुन को अपना प्रिय फल बना लिया होगा। **आओ आज हम कैंथ की चर्चा करें:-**

कैंथ

कैंथ एक उष्णकटिबन्धी क्षेत्र का ऐसा फल है जिसमें औषधीय गुणों का भरमार तो है परन्तु अभी भी यह मनुष्य का चहेता नहीं बन सका है।

उत्पत्ति तथा इतिहास

कैंथ की जन्मभूमि भारत की पवित्र धरती है। इसकी उत्पत्ति भारत के दक्षिण प्रदेशों में मुख्यतः दक्षिण कर्नाटक में लगभग 2500-3000 वर्ष पूर्व हुई थी। तभी तो उस समय के चिकित्सा विज्ञान के महान वैज्ञानिक चरक तथा सुश्रुत ने अपनी पुस्तक चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में कैंथ के औषधीय गुणों का विस्तार से वर्णन किया है। कर्नाटक के एक वैद्य श्री चौवुन्डरैया ने भी अपनी पुस्तक में कैंथ के कच्चे तथा पक्के फलों के सेवन द्वारा असाध्य रोगों को दूर करने की विधि बताई है। आज भी यह फल आम, जामुन, नीम के साथ जी.टी. रोड के किनारे लगे हैं।

पेड़ पर लगे हुए कैंथ के फल

कैंथ के फल के भीतर का गुदा तथा बीज

कैंथ भारत की धरोहर है। यही से यह फल बौध्द भिक्षुओं द्वारा श्रीलंका, बर्मा, थाईलेंड मलेशिया, चीन, जापान और कम्बोडिया लाया गया था। आज यह पूरे साउथ ईस्ट एशिया में पाया जाता है, परन्तु अब सागर की लहरों ने कैंथ को सोमालिया तथा यूरोपिया पहुंचा दिया।

कैंथ का नामकरण

कैंथ को विभिन्न देषों तथा भाषाओं में अलग-अलग नाम से पहचान मिली हैं। हिन्दुस्तान के लोग इसे कैंथ, कैंथा, कांटा, दही फल, कठबेल, कपिफल, हाथीसेव, कठसेव के नाम से विख्यात है। अग्रेज लोग इसे वुड एप्पल, एलिफेन्ट एप्पल तथा मंकी फ्रूट के नाम से पुकारते हैं। परन्तु वनस्पत्ति वैज्ञानिकों ने इसे लिमोनिया एसीडिसीमा एल. या फेरोनिया लेमोनिया नाम दिया है।

भारत में वितरण

कैंथ असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान और हरियाणा तथा पंजाब में पाया। महाराष्ट्र के चंद्रपुर तथा थाने जिले कैंथ के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं।

कैंथ के वृक्षों का विवरण

कैंथ के पेड़ काफी कठोर होते हैं, जो 60-70 फीट तक ऊंचे होते हैं। इस पर 8-10 साल बाद फूल-फल लगते हैं। फल लगने से 10-12 महीने बाद फल पकने लगते हैं। फलों का रंग पेड़ के तने के रंग से मिलता जुलता है। फल अक्टूबर से मार्च तक पकते हैं जिनका रंग हल्का पीला होता है। पके फल के गुदा का स्वाद सड़े केले या सड़े चीज से मिलता है। कैंथ के फल कच्चे तथा पके दोनों अवस्था में खाये जाते हैं। कैंथ के पेड़ की पत्तियां, टहनिया तथा फलों को हाथी बड़े चाव से खाते हैं, इसलिये ही इसे 'एलिफैंट एप्पल' का नाम ब्रिटेन के लोगों ने दिया है।

कैंथ का पोषणमान

कैंथ के 100 ग्राम खाने योग्य गुदे से जल-72.00 प्रतिशत, प्रोटिन-7.14 प्रतिशत, वसा-1.45 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेटस-7.24 प्रतिशत, राख-4.98 प्रतिशत, कैल्शियम-0.12 प्रतिशत, फॉस्फोरस-0.07 प्रतिशत, तथा लौह-1.0 प्रतिशत पाया जाता है। कैंथ में विभिन्न प्रकार के फाइटो केमिकल्स जैसे एल्कल्वायड, फेनोलिक्स, सैपोनीन्स, स्टेरोयड, प्लेमीन्वायड, ग्लुको साईड्स, टरपेन्वायड, टेनीन्स, एलिफैटिक एल्कोहल, एसिड्स आदि पाये जाते हैं।

कैंथ के परिरक्षित पदार्थ

कैंथ के गुदे से आप जैम, जेली, चटनी तथा शर्बत बना सकते हैं।

कैंथ औषधि के रूप में

चरक एवं सुश्रुत के अनुसार कैंथ एक महान औषधि भी है। यह फल कैंसर, मधुमेह, अल्सर, श्वेत एवं रक्त प्रदर, रक्त चाप, हृदय रोग, पाचन संबंधी रोग एवं रूक-रूक कर पेशाब की बीमारी की अचूक दवा है।

यह आलेख गुरू पूर्णिमा पर गुरू का प्रसाद है।

✍डॉ. प्रतिमा घृतलहरे पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग, (छत्तीसगढ़)

छत्तीसगढ़ कृषकों के आजीविका में बकरी पालन की भूमिका

छत्तीसगढ़ के ग्रमीण इलाको में बकरी पालन का विशेष स्थान है। ग्रामीण परिवेश में 'गरीब की गाय' कहलाने वाली बकरी से हमें मांस, दूध और चमड़ी मिलती हैं जो आय का अच्छा साधन है। प्रदेश में लगभग 40.05 लाख बकरियों को 12% परिवारो के द्वारा पालन किया जा रहा है। इन परिवारो में से 42% परिवार सीमांत कृषक हैं और 24% परिवार लघु कृषक वर्ग के हैं। बकरी पालन में कम लागत एवं कम देखरेख की जरूरत के कारण छोटे किसान इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं एवं उनकी आजीविका के लिए यह अतिरिक्त आय का साधन बना हुआ है।

प्रदेश के ग्रामों का शहरीकरण, जनसंख्या में वृद्धि एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण बकरी के मांस की मांग बढ़ती जा रही है। हर वर्ष बकरियों की जनसंख्या में वृद्धि के बावजूद बकरी मांस की मांग बाजार में बनी हुई है क्योंकि प्रति व्यक्ति रोजाना मांस खपत में भी वृद्धि हुई है। इस कारण से बकरी मांस का मूल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ऐस में हमारे प्रदेश में बकरी पालन की अपार सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही है। बस जरूरत उचित मार्गदर्शन में बकरी पालन करने की है।

"अंजोरी" एक पहल : भारत की 41 पंजीकृत प्रजातियों मे से 38 वे क्रम में अंजोरी बकरी को भी पंजीकृत किया गया है। यह प्रदेश की एकमात्र स्थानीय बकरी के रूप में पंजीकृत है। अंजोरी नस्ल लम्बी प्राकृतिक चयन प्रक्रिया का परिणाम हैं जो राज्य की जलवायु परिस्थितियों और आहार स्थितियो के स्वतः अनुकूलित है। अंजोरी नस्ल जुड़वा बच्चे व कभी-कभी तीन बच्चे एक साथ देने मे भी सक्षम है, अतः हम यह कह सकते है कि अंजोरी स्थानीय नस्ल किसानों की आय दोगुनी करने में भी सक्षम है।

छत्तीसगढ़ के किसानो के लिए शासन की पहल- छत्तीसगढ़ के 32 जिलो (रायपुर जिला के अलावा) में "धरती आबा जनजाति ग्राम उत्कर्ष अभियान योजना" के अन्तर्गत नेशनल लाईव स्टॉक मिशन योजना क्रियान्वित है जिसमे हितग्रहियों का चयन कर लाभान्वित करने की नीतियाँ निम्नानुसार हैं-

घटक	विवरण	इकाई लागत	शासन अंशदान			हितग्राही अंशदान
			केन्द्र 60%	राज्य 40%	योग	राशि रु में
10 बकरी + 02 बकरा प्रजनन इकाई की स्थापना	मादा (उम्र 07 वर्ष) नर (उम्र 1.5 वर्ष) नाईट शेल्टर का निर्मणाण, 06 माह हेतु दाना, पशु चिकित्सा तथा पशु बीमा (01 वर्ष)	110000	60000	40000	100000	10000
05 बकरी + 01 बकरा प्रजनन इकाई की स्थापना	मादा (उम्र 01वर्ष) नर (उम्र 1.5 वर्ष) नाईट शेल्टर का निर्माण, 06 माह हेतु दाना, पशु चिकित्सा तथा पशु बीमा (01 वर्ष)	55000	30000	20000	50000	5000

उपर्युक्त योजना के लाभ हेतु आवश्यक हैं कि हितग्राही के पास "वन अधिकार पट्टा" अथवा "राजस्व पट्टा" हो।

पशुधन विकास विभाग द्वारा संचालित योजना-

अनुदान पर नर बकरा वितरण योजना	4000 रु	01 नर बकरा विभाग से प्रदाय किया जायेगा अथवा स्वयं खरीदना होगा	अनु०जा०/अनु०ज०जा०- वित्तीय इकाई लागत का 90%, अधिकतम 4000रु का अनुदान

बकरी पालन हेतु लोन सुविधा: बकरी पालन लोन एक प्रकार का वर्किंग कैपिटल लोन हैं जिसका उपयोग बकरी पालन व्यवसाय के लिए किया जा सकता हैं। बकरी पालन के लिए चष्टष्ट लोन, जिसका फायदा किसान या तो इंडिविजुअल या ज्वॉइंट उधारकर्ता या स्वयं सहायता समूह, किराये या पट्टे पर शेड हो लाभ उठा सकते है। बकरी पालन हेतु नाबार्ड लोन, कैनरा बैंक बकरी पालन लोन योजना आदि शामिल हैं। इस प्रकार किसान इससे न केवल आजीविका अपितु उच्च स्तरीय व्यवसायी के रूप में भी अपनी पहचान बना सकता है।

छत्तीसगढ़ में वानस्पतिक वितरण के अनुकूल बकरी की आहार प्रणाली: चूँकि छत्तीसगढ़ प्रदेश विभिन्न भौगोलिक दशाओं में विभाजित हैं अतः अनेको वनस्पतियों से परिपूर्ण हैं हैसे बबूल, आम, पीपल की पत्तियाँ आदि बकरियों मे रेशेदार चारे को पचाने की अधिक क्षमता होती है। वैसे बकरियां छ.ग. मे पाई जाने वाली रिजका, बरसीम की पत्तियां को भी बड़े चाव से खाती है। बकरियो को प्रोटीन से भरपूर राशन देना चाहिए। बकरिया अपने शारीरिक भार का 3-3.5 प्रतिशत शुष्क पदार्थ खा सकती है। बकरियों को उत्पादन क्षमता एवं शारीरिक वृद्धि के लिए शुष्क पदार्थों के अतिरिक्त दाना मिश्रण भी दिया जाना चाहिए। दाना मिश्रण मे अवयव निम्न प्रकार के होने चाहिए जैसेः-

दाना अवयव	प्रतिशत	दाना अवयव	प्रतिशत
चना	15%	गेहूँ का चोकर	25%
जौ या मक्का	37%	खनिज लवण	2.5%
मूंगफली या खली	25%	साधारण नमक	0.5%

बकरी पालन से अधिक आय:- बकरी पालन हमारे देश मे एक प्रचीनतम व्यवसाय है। यह व्यवसाय सदैव समाज के आर्थिक रूप से कमजोर लोगों से जुड़ा रहा हैं जो शिक्षा के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं रहे हैं वह इस क्षेत्र में विकसित हुई तकनीकियों से अनभिज्ञ हैं। यहां कुछ महत्वपूर्ण व सरल वैज्ञानिक जानकारियों के वर्णन किया जा रहा है जिसके प्रयोग से लाने से बकरी पालको को निश्चित रूप से अधिक आर्थिक लाभ होगा-

बकरे एवं बकरियों का चयन- परिपक्वता आयु - प्रौढ़ आयु लगभग 10-12 माह में आती है। बड़े आकार की बकरियों में 10-12 माह और छोटे आकार वाली बकरियो में 6-8 साल मे आ जाती है इनकी प्रौढ़ावस्था से लगभग 2 माह बाद गर्भित करना उचित रहता है क्योंकि इस समय तक इनका जनन तंत्र पूर्ण विकसित हो जाता है तथा शारीरिक भार मे वृद्धि होकर मजबूती आ जाती है।

अन्तः प्रजनन से बचाव - सम्बन्धियों के आपस मे प्रजनन को अन्तः प्रजनन कहते है। इससे बकरियों के उत्पदान एवं आय गुणों में गिरावट आ जती है अन्य उत्पादन दोष पैदा होते हैं जिसके प्रतिकूल प्रभाव किसानो की आमदनी पर होता है। अतः अन्तः प्रजनन रोकने के लिए आवश्यक है कि प्रजनन योग्य बकरा का प्रजनन इसके स्वतः सम्बन्धियों के साथ तो नहीं किया जा रहा है। प्रजनन योग्य बकरे को बकरियों के झुण्ड मे 2-3 वर्ष से अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जानवारो की छटनी- उत्पादन आयु - सामान्यतः बकरियों की कुल जीवन उत्पादन आयु 10-12 वर्ष की होती है लेकिन उनकी अधिकतम उत्पादन क्षमता 4-6 वर्ष की आयु के मध्य पायी जाती है। अतः बकरियों के समूह में 7 वर्ष की अधिक आयु की मादाओं को रखने से समूह का औसत उत्पादन एवं जनन स्तर घट जाता है।

बेहतर आजीविका हेतु बकरी की उत्पादकता में वृद्धि * ऐसी नस्ल का चयन करे जो इस क्षेत्र की जलवायु मे पूर्णरूपेण अभ्यस्त हो जैसे जमुनापारी, ब्लैक बंगाल इत्यादि। * बकरियो में उत्पदनकता संवर्धन एवं सुनिश्चित सुधार हेतु चयन प्रजनननीति ही सर्वश्रेष्ठ नीति है। * एक बार में एक से अधिक बच्चे देने वाली मादाओं काचयन कर उनके प्रजनन को बढ़ावा देना चाहिए जिससे उत्पादन सुधार किया जा सके। * किसानो को स्थानीय बाजार की माँग की ध्यान में रख उत्पाद की गुणवत्ता एवं मात्रा तय करीन चाहिए, ऐसे बाजारो का चयन करना चाहिए जिनमें उत्पादक अधिकाधिक लाभ पर तथा उपभेक्ता अपेक्षाकृत कम मूल्य पर उत्पादो के बेच व खरीद सके। उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाकर अच्छी मांग वाले बाजारों में बेचकर अथवा निर्यात कर भी बकरी पालन से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।* स्थानीय बकरियों के क्रमोन्यन (Grading -up) हेतु जमुनापारी, सिरोही, बीटल, ओस्मानाबादी नस्ल के साथ संकरण कर अधिक मांस एवं मेमने जनने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता हे जिससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होगा।

बकरी पालन कैलेण्डर

माह	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
टीका	फड़किया टीका (मेमने)	पी.पी.आर. टीका (मेमने)	-	फड़किया टीका (मेमने)		-	फड़किया टीका(व्यस्क)	अंतः कृमिनाशक दवा (नियमित)	फड़किया टीका (मेमने)		पी.पी.आर. टीका (प्रत्येक 3 वर्ष पर)	भेड़ चेचक टीका
बिमारी	खाज / खुजली	नाभि रोग, भूखा रहना, अल्पताप, कोक्सीडियोसिस, मेमनों मे दस्त		भेड़ चेचक टीका (मेमने) डिपिंग ऊन कतरने के 21 दिन बाद		-	घाव के कीड़े, नील-सरी रोग			पाश्चुरेल्लोसिस न्यूमोनिया		खाज / खुजली

बकरी एक बहुउपयोगी और सीधा-साधा पशु है जो अपने छोटे कद हर तरह की जलवायु में रहने की क्षमता तथा रहन-सहन की आसान आदतों के कारण आज देश की सभी वर्गों का चहेता पशु है।बकरी पालन व्यवसाय कम पूँजी एवं कम साधन से आरंभ कर परिवार के भरण-पोषण के लिए नियमित आय प्राप्त की जा सकती है। राज्य मे बकरी पालन चिरकाल से गाँव के भूमिहीन और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की जीविकोपार्जन का सशक्त साधन रहा है। पशु गणना के अनुसार प्रदेश मे 40.05 लाख बकरी सम्पदा उपलब्ध है। बकरी पालक उचित रख-रखाव, संतुलित पोषाहार और बेहतर प्रबन्धन के द्वारा बकरियो का रोगग्रस्त होने से बचाकर दुधारू बकरी बेचकर, मांस के रूप में बेचकर, बाल व खाल द्वारा प्राप्त आय से व गोबर को खाद के रूप मे बेचकर भी किसान आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते है।

किसानो के समक्ष चुनौतियाँ- अपनी महत्ता के बावजूद प्रदेश में बकरी पालन कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें गुण्वत्तापूर्ण प्रजनन पशुओं तक सीमित पहुँच, अपर्याप्त स्वास्थय सेवाएँ किसानो में वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल का अभाव, विपणन और मूल्य श्रृंखला की बाधाएँ और जलवायु परिवर्तन की प्रभावों के प्रति संवेदनशीलता आदि शामिल हैं। क्षमता निर्माण बेहतर बुनियादी ढाँचे, बेहतर पशु चिकित्सा सेवाओं और बाजार संपर्कों के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान छत्तीसगढ़ में बकरी पालन के विकास और स्थायित्व को और बढ़ा सकता है।

उपसंहारः अतः हम यह कह सकते हैं बकरी जो कि एक बहुउद्देशीय पशु है, जिसे भारत मे गरीबों की गाय वही यूरोप में धात्री (दूध पिलाने वाली माता) के नाम से जाना जाता है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों और प्राकृतिक संसाधनो की सीमित उपलब्धता के कारण छत्तीसगढ़ के सीमांत व भूमिहीन किसानो की बढ़ी आबादी के लिए आजीविका का मुख्य स्त्रोत है। चूँकि छत्तीसगढ़ मे मौजूद पठारी व पर्वतीय बनावट के कारण यहाँ बकरी पालन में आपार संभावनाएँ दिखाई देती हैं। सहायक नीतियों, अनुसंधान एवं विकास में निवेश और ज्ञान प्रसार के साथ, इस क्षेत्र को और मजबूत किया जा सकता है ताकि किसानो को लाभ मिल सके और न सिर्फ छत्तीसगढ़ के अपितु भारत तथा विदेशो मे बकरी उत्पादों की बढ़ती माँग को पूरा किया जा सकें।

फॉल आर्मीवर्म

डॉ. रिंकी कुमारी चौहान विषय वस्तु विशेषज्ञ (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, हैदरगढ़ (बाराबंकी) 225124, (उ.प्र.)

पहचान

फ़ॉल आर्मीवर्म (स्पोडोप्टेरा फ्रुगीपर्दा) पतंगे की एक प्रजाति है जो आमतौर पर भूरे-भूरे रंग की होती है और इसके पंखों का फैलाव लगभग 3 से 4 सेमी होता है। नर पतंगों के पंखों पर विशिष्ट सफ़ेद त्रिकोण होते हैं जो मादाओं में नहीं होते। फ़ॉल आर्मीवर्म के लार्वा काले, हरे या भूरे रंग के हो सकते हैं, इनकी त्वचा चिकनी होती है और ये 4 सेमी तक लंबे होते हैं। इनके सिर पर एक विशिष्ट 'Y' आकार होता है और चार काले धब्बे होते हैं जो इनके दूसरे से अंतिम खंड पर एक चौकोर आकार बनाते हैं। अण्डों का समूह हल्के से गहरे भूरे रंग का होता है तथा वे रोयेंदार पदार्थ से ढके होते हैं, तथा प्रत्येक समूह में सैकड़ों अंडे होते हैं।

जीवन चक्र

फ़ॉल आर्मीवर्म का जीवन चक्र मौसम के आधार पर 1-3 महीने का हो सकता है, गर्मियों में चक्र तेज़ और ठंडे महीनों में लंबे होते हैं। मादाएं अपने अंडे हल्के रंग की सतहों पर रखना पसंद करती हैं, और अंडे के समूह आमतौर पर मिट्टी के करीब मेजबान पौधों की पत्तियों के नीचे पाए जाते हैं। अंडे कुछ ही दिनों में फूट सकते हैं, और लार्वा 2-4 सप्ताह में छह विकासात्मक चरणों (जिन्हें पहले इंस्टार, दूसरे इंस्टार आदि के रूप में जाना जाता है) से गुजरते हैं। फ़ॉल आर्मीवर्म लार्वा आमतौर पर भूमिगत एक कोकून बनाते हैं और 8 से 30 दिनों के बीच वयस्क पतंगे के रूप में निकलते हैं।

फ़ॉल आर्मीवर्म का प्रभाव क्या है?

फ़ॉल आर्मीवर्म के लार्वा सीधे पत्तियों और अन्य भागों को खाकर पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं। ऐसे 80 से ज़्यादा पौधे हैं जिन पर फ़ॉल आर्मीवर्म फ़ीड करते हैं, जिनमें कई घासें भी शामिल हैं। हालांकि, वे मकई की फ़सलों को नुकसान पहुँचाने के लिए कुख्यात हैं। फ़ॉल आर्मीवर्म के लार्वा मकई की फ़सलों की पत्तियों और विकसित होने वाले दानों को खाते हैं। लार्वा मकई के बढ़ते बिंदु (व्हर्ल) को भी खाते हैं, जिससे नई पत्तियों की वृद्धि प्रभावित होती है।

मकई

शुरुआती विकास चरणों में, फ़ॉल आर्मीवर्म लार्वा निचली मकई की पत्तियों के हरे भागों को खाते हैं और पारदर्शी (गैर-हरे) परतों को नहीं खाते हैं। यह "विंडो पैन इफ़ेक्ट" का कारण बनता है और मौसम की शुरुआत में नुकसान का संकेत हो सकता है। बाद के चरणों में, फ़ॉल आर्मीवर्म पत्तियों में छेद करके खाते हैं और मकई के पौधों के भंवर में छिपना पसंद करते हैं। यदि लार्वा मकई के भंवर को खाते हैं, तो यह पत्ती के बढ़ने पर छिद्रों का एक विशिष्ट पैटर्न बना सकता है।

फाल आर्मीवर्म से कैसे छुटकारा पा सकते हैं

फ़ॉल आर्मीवर्म से निपटने के लिए कई प्रभावी नियंत्रण विधियां मौजूद हैं, जिनमें टिकाऊ जैविक विकल्प भी शामिल हैं। पहला कदम नुकसान के स्रोत के रूप में प्रजाति की पहचान करना और संक्रमण की सीमा की निगरानी करना है।

निगरानी

फ़ॉल आर्मीवर्म लार्वा अवस्था के दौरान फसलों को नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए, इन लार्वा की उपस्थिति हेतु अपनी फसलों की पहले से ही जांच करना महत्वपूर्ण है।

सैम्पलिंग

यह फ़ॉल आर्मीवर्म के आक्रमण की सीमा निर्धारित करने का एक व्यवस्थित तरीका है। वयस्क पतंगों की निगरानी आम तौर पर अलग-अलग ट्रैपिंग विधियों का उपयोग करके की जाती है। एक सामान्य दृष्टिकोण एक खेत में 10 स्थानों पर 10 पौधों या 20 स्थानों पर 5 पौधों की जांच करना है।

सांस्कृतिक नियंत्रण

फसलों को जल्दी बोना या अधिक तेज़ी से विकसित होने वाले स्ट्रेन का उपयोग करना युवा, अधिक कमजोर पौधों को नुकसान से बचाने में मदद कर सकता है।

यांत्रिक नियंत्रण

जाल का उपयोग वयस्क फ़ॉल आर्मीवर्म को आकर्षित करना उनकी संख्या को ट्रैक करने और नियंत्रित करने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है। जाल में आमतौर पर एक चिपचिपा पदार्थ होता है जो पतंगों को भागने से रोकता है। कीटों की संख्या को नियंत्रित करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले हार्मोन एक प्रकार के जैविक नियंत्रण हैं जिन्हें के रूप में जाना जाता है स्वीप नेट का उपयोग फ़ॉल आर्मीवर्म की संख्या को नियंत्रित करने के लिए भी किया जा सकता है।

जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक पदार्थ: ये जैव कीटनाशक हैं जो प्राकृतिक स्त्रोतो से जैसे कि पौधे, नीम का तेल इसका उपयोग फाल आर्मीवर्म सहित विभिन्न कीटों से निपटने के लिए किया जाता है। azardirechtin नीम के पौधे के बीजों में पाया जाता है और यह फॉल आर्मीवर्म के भोजन और प्रजनन को रोक सकता है। ये उपाय आम तौर पर युवा फॉल आर्मीवर्म लार्वा पर अधिक प्रभावी होते हैं क्योंकि परिपक्व लार्वा के मेज़बान पौधे के भीतर छिपने और पदार्थ के संपर्क से बचने की अधिक संभावना होती है।

सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीव कीटों की संख्या को नियंत्रित करते हैं और इनमें बैक्टीरिया, कवक और वायरस शामिल हैं। कई वायरस फ़ॉल आर्मीवर्म लार्वा में घातक संक्रमण का कारण बनते हैं और इन्हें एक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। जीवाणु बैसिलस थुरिन्जिनिसस आम कीटों के लार्वा से निपटने के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, जिसमें फ़ॉल आर्मीवर्म भी शामिल है। इन्हें आम तौर पर स्प्रे में लगाया जाता है और इस प्रकार यह अपरिपक्व लार्वा के खिलाफ़ विशेष रूप से प्रभावी हो सकता है और अधिक विकसित लार्वा के खिलाफ़ कम प्रभावी हो सकता है।

रासायनिक कीटनाशक

यदि रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करना हो, तो किसानों को कम जोखिम वाले रासायनिक कीटनाशकों का चयन करना चाहिए, जिन्हें आईपीएम रणनीति के हिस्से के रूप में उपयोग किए जाने पर, मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों को कम करते हुए कीट समस्याओं का प्रबंधन करने में मदद मिलती है। कृषि सलाहकार सेवा प्रदाता कम जोखिम वाले रासायनिक कीटनाशकों के बारे में जानकारी प्रदान कर सकते हैं जो स्थानीय रूप से उपलब्ध हैं और आईपीएम रणनीति के अनुकूल हैं। ये विशेषज्ञ आवश्यक व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों के बारे में भी सलाह दे सकते हैं।

01/2023-24

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

शिवम दीक्षित शोध छात्र (उद्यान), सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर (उ.प्र.)

डॉ. हिमांशु त्रिवेदी सह प्राध्यापक (उद्यान), सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी कानपुर (उ.प्र.)

डॉ. अंकित सिंह भदौरिया सहायक प्राध्यापक (उद्यान), सी. एस. जे. एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर

आदित्य कुमार गिरि परास्नातक छात्र (शाक भाजी विज्ञान), सी.एस.जे.एम. यूनिवर्सिटी, कानपुर

नैनो यूरिया और नैनो डीएपी: कृषि में नवाचार की दिशा में एक क्रांति

प्रस्तावना

भारतीय कृषि क्षेत्र में उर्वरकों की अत्यधिक आवश्यकता होती है, विशेषकर यूरिया और डीएपी (डाय-अमोनियम फॉस्फेट) जैसे उर्वरकों की। परंतु परंपरागत उर्वरकों की अंधाधुंध और असंतुलित उपयोग से पर्यावरण और मिट्टी की उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस चुनौती से निपटने के लिए नैनो तकनीक का उपयोग करते हुए विकसित किए गए नैनो यूरिया और नैनो डीएपी को कृषि में एक क्रांतिकारी खोज के रूप में देखा जा रहा है। ये उर्वरक न केवल पोषक तत्वों की दक्षता बढ़ाते हैं, बल्कि मिट्टी, जल और पर्यावरण की रक्षा भी करते हैं।

नैनो यूरिया क्या है?

नैनो यूरिया एक अत्याधुनिक तरल उर्वरक है जिसे नैनो तकनीक के माध्यम से तैयार किया गया है। इसे विशेष रूप से भारतीय किसानों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए इफको (IFFCO) द्वारा विकसित किया गया है। पारंपरिक यूरिया जहाँ 45 किलोग्राम की बोरी के रूप में दी जाती है, वहीं नैनो यूरिया मात्र 500 मिलीलीटर की एक बोतल में समान प्रभाव देने की क्षमता रखता है।

नैनो यूरिया में नाइट्रोजन अणु का आकार 20 से 50 नैनोमीटर होता है, जो पौधों की पत्तियों द्वारा आसानी से अवशोषित हो जाता है। इससे न केवल उर्वरक की उपयोग दक्षता (se Efficiency) बढ़ती है, बल्कि मिट्टी, जल और पर्यावरण प्रदूषण में भी कमी आती है।

नैनो यूरिया का मुख्य उद्देश्य पारंपरिक यूरिया के अत्यधिक और अव्यवस्थित उपयोग को नियंत्रित करना है, जिससे नाइट्रोजन की लीचिंग (मिट्टी से बहकर निकलना) और वाष्पन (evaporation) की समस्या कम हो सके। यह पर्यावरण के प्रति ज़िम्मेदार और टिकाऊ खेती की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

मुख्य विशेषताएं

* प्रति बोतल (500 मिली) में 40,000 पीपीएम नाइट्रोजन।
* 45 किलोग्राम परंपरागत यूरिया की जगह ले सकता है।
* पर्यावरण के लिए सुरक्षित और कम अपव्ययी।
* मिट्टी और भूजल प्रदूषण में कमी लाता है।

निर्माता: इफको (IFFCO) ने 2021 में नैनो यूरिया का व्यावसायिक उत्पादन शुरू किया।

नैनो डीएपी क्या है?

नैनो डीएपी (Nano DAP) एक नवीन तरल उर्वरक है जिसे नैनो तकनीक के माध्यम से विकसित किया गया है। यह पारंपरिक डाय-अमोनियम फॉस्फेट (DAP) का सूक्ष्म और अधिक प्रभावशाली विकल्प है। नैनो डीएपी में मुख्यतः दो प्रमुख पोषक तत्व होते हैं - नाइट्रोजन (N) और फॉस्फोरस (P) — जो पौधों की प्रारंभिक वृद्धि और जड़ विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं।

इस उर्वरक के कणों का आकार नैनो स्तर (20-100 नैनोमीटर) का होता है, जिससे यह पौधों की पत्तियों और जड़ों द्वारा शीघ्रता से अवशोषित हो जाता है। इसकी उच्च जैव-उपलब्धता के कारण बहुत कम मात्रा में ही फसल को पर्याप्त पोषण मिल जाता है। इसका विकास IFFCO (इफको) द्वारा किया गया और 2023 में व्यावसायिक उपयोग के लिए जारी किया गया।

नैनो डीएपी का उद्देश्य पारंपरिक डीएपी पर निर्भरता को कम करना, फॉस्फोरस उपयोग दक्षता (Phosphorus Use Efficiency) बढ़ाना और भूमिगत जल एवं पर्यावरण प्रदूषण को कम करना है। यह टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल खेती के लिए एक बड़ा कदम है।

मुख्य विशेषताएं

* कम मात्रा में उपयोग से अधिक पोषक तत्वों की उपलब्धता।
* फॉस्फेट उपयोग दक्षता में वृद्धि।
* जल-प्रदूषण में कमी और पोषक तत्वों की लीचिंग घटती है।
* IFFCO द्वारा 2023 में व्यावसायिक स्तर पर लांच किया गया।

नैनो उर्वरकों के लाभ

1.उच्च दक्षता: नैनो कणों का आकार छोटा होने के कारण पौधे उन्हें आसानी से अवशोषित कर लेते हैं।

2.कम लागत: पारंपरिक उर्वरकों की तुलना में मात्रा में कमी पर भी समान या बेहतर परिणाम मिलते हैं।

3.पर्यावरण संरक्षण: अवशिष्ट नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की मात्रा में कमी, जिससे जल स्रोत प्रदूषित नहीं होते।

4.लॉजिस्टिक सुविधा: तरल अवस्था में होने के कारण भंडारण, परिवहन और वितरण सरल होता है।

चुनौतियाँ और सीमाएं

1.प्रौद्योगिकी की समझ: किसानों को नई तकनीक अपनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

2.उपलब्धता: ग्रामीण क्षेत्रों में नैनो उर्वरकों की समय पर उपलब्धता अब भी एक चुनौती है।

3.लंबी अवधि के प्रभाव: नैनो कणों का मिट्टी एवं सूक्ष्मजीवों पर दीर्घकालिक प्रभाव अभी पूरी तरह से ज्ञात नहीं है।

अनुसंधान एवं अध्ययन

IFFCO (2021): फील्ड ट्रायल्स में नैनो यूरिया से 8-10त्र अधिक उपज और 50% यूरिया की बचत पाई गई।

ICAR TrialsÑ भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के अनुसार नैनो डीएपी के प्रयोग से पादप वृद्धि और उपज में वृद्धि दर्ज की गई है।

Ramesh et al. (2022): नैनो उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की पोषक संरचना में स्थायित्व पाया गया।

सरकार की भूमिका

भारत सरकार ने वर्ष 2022 में नैनो यूरिया को नीति स्तर पर बढ़ावा देने की घोषणा की थी। इसके तहत IFFCO को उत्पादन, विपणन एवं प्रसार की अनुमति दी गई। साथ ही "आत्मनिर्भर भारत" अभियान के अंतर्गत नैनो डीएपी को भी तेजी से अपनाया जा रहा है।

निष्कर्ष

नैनो यूरिया और नैनो डीएपी भारतीय कृषि क्षेत्र में उर्वरक उपयोग के पारंपरिक स्वरूप को बदलने की क्षमता रखते हैं। इनका विवेकपूर्ण और संतुलित उपयोग, किसानों की आय में वृद्धि, पर्यावरण संरक्षण और खाद्य सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हालांकि, इसके लिए व्यापक जागरूकता, शोध, और नीति समर्थन की आवश्यकता है।

संदर्भ

* IFFCO (2021). “Nano Urea LiquidÑ Product Brochure.” Indian Farmers Fertiliser Cooperative Limited.
* Ramesh K. et al. (2022). “Effect of Nano-fertilizers on Soil Health and Crop Yield.” Journal of Plant Nutrition.
* ICAR (2023). “Field Evaluation of Nano DAP on Major Crops.” Indian Council of Agricultural Research.
* Ministry of Agriculture and Farmers Welfare, Government of India Reports (2022–2024).
* Patel A. et al. (2023). “Nano-Fertilizer Innovation in India: Opportunities and Challenges.” Indian Journal of Agricultural Sciences.

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

✍समरेंद्र कुमार यादव (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

✍अंकित शर्मा (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

✍सुष्मिता कुमारी मौर्या (शोध छात्र) पादप रोग विज्ञान विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

✍अनीश सिंह (मृदा विज्ञान विभाग) कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

धान में लगने वाले रोग एवं उनका नियंत्रण

धान एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है जो पूरे विश्व की आधी से ज्यादा आबादी को भोजन प्रदान करती है। चावल के उत्पादन में सर्वप्रथम चाइना के बाद भारत दूसरे नंबर पर आता है। भारत में धान की खेती लगभग 450 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है छोटी होती जोत एवं कृषि श्रमिकों की अनुपलब्धता व जैविक, अजैविक कारकों के कारण धान की उत्पादकता में लगातार कमी आ रही है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए आज हम इस लेख में धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग तथा पहचान और उनके प्रबंधन के बारे में बात करेंगे जिससे कि हमारे किसान साथी अपनी धान की फसल में उस रोग की समय से पहचान करके फसल का बचाव कर सकें।

1.धान का झोंका रोग : यह धान की फसल का मुख्य रोग है जो एक पाइरीकुलेरिया ओराइजी नामक फफूंद से फैलता है।

रोग के लक्षण : इस रोग के लक्षण पौधे के सभी वायवीय भागों पर दिखाई देते हैं। परंतु सामान्य रूप से पत्तियां और पुष्पगुच्छ की ग्रीवा इस रोग से अधिक प्रभावित होती हैं। प्रारंभिक लक्षण पौधे की निचली पत्तियों पर धब्बे दिखाई देते हैं जब ये धब्बे बड़े हो जाते हैं तो ये धब्बे नाव अथवा आंख की जैसी आकृति के जैसे हो जाते हैं। इन धब्बों के किनारे भूरे रंग के तथा मध्य वाला भाग राख जैसे रंग का होता है। बाद में धब्बे आपस में मिलकर पौधे के सभी हरे भागों को ढंक लेते हैं जिससे फसल जली हुई प्रतीत होती है।

रोग प्रबंधन • रोगरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए। • बीज का चयन रोगरहित फसल से करना चाहिए। • बीज को. सदैव ट्राइकोडरमा से उपचारित करके ही बुवाई करना चाहिए। • फसल की कटाई के बाद खेत में रोगी पौध अवशेषों एवं ठूठों इत्यादि को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। फसल में रोग नियंत्रण हेतु बायोवेल का जैविक कवकनाशी बायो ट्रूपर की 500 मिली. मात्रा का प्रति एकड़ में 120 से 150 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

2.जीवाणु झुलसा या झुलसा रोग: यह रोग जेंथोमोनास ओराइजी नामक जीवाणु से फैलता है। इसे 1908 में जापान में सबसे पहले देखा गया था।

रोग की पहचान : पौधों की चोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह बीमारी कभी भी लग सकती है। इस रोग में पत्तिया नोंक अथवा किनारों से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगती हैं। सूखे हुए किनारे अनियमित एवं टेढ़े मेढ़े या झुलसे हुये दिखाई देते हैं। इन सूखे हुये पीले पत्तों के साथ साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। संक्रामण की उग्र अवस्था में पत्ती सूख जाती है। बालियों में दाने नहीं पड़ते हैं।

रोग प्रबंधन • शुद्ध एवं स्वस्थ बीजों का ही प्रयोग करें। • बीजों को बुआई करने से 2.5 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन और 25 ग्राम कापर आक्सी क्लोराइड के घोल में 12 घंटे तक डुबोयें। • इस बीमारी को लगने की अवस्था में नत्रजन का प्रयोग कम कर दें। • जिस खेत में बीमारी लगी हो उस खेत का पानी किसी दूसरे खेत में न जाने दें। साथ ही उस खेत में सिंचाई न करें। • बीमारी को और अधिक फैलने से रोकने के लिए खेत में समुचित जल निकास की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3.धान का भूरा धब्बा रोग • यह एक बीज जनित रोग है जो हेलिमेन्थो स्पोरियम ओराइजी नामक फफूंद द्वारा फैलता है। इस रोग की वजह से 1943 में बंगाल में अकाल पड़ गया था।

रोग की पहचान : इस रोग में पत्तियों पर गहरे कत्थई रंग के गोल अथवा अण्डाकार धब्बे बन जाते हैं। इन धब्बों के चारों तरफ पीला घेरा बन जाता है तथा मध्य भाग पीलापन लिये हुए कत्थई रंग का होता है तथा पत्तियां झुलस जाती हैं। दानों पर भी भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। इस रोग का आक्रमण पौध अवस्था से लेकर दाने बनने की अवस्था तक होता है।

4.शीत झुलसा या आवरण झुलसा रोग : यह एक फफूंद जनित रोग है जिसका रोग कारक राइजोक्टोनिया सोलेनाई है। पूर्व में इस रोग को अधिक महत्व का नहीं माना जाता था। अधिक पैदावार देने वाली एवं अधिक उर्वरक उपभोग करने वाली प्रजातियों के विकास से यह रोग धान के रोगों में अपना प्रमुख स्थान रखता है जो कि उपज में 50% तक नुकसान कर सकता है।

रोग की पहचान: इस रोग का संक्रमण नर्सरी से ही दिखना आरंभ हो जाता है जिससे पौधे नीचे से सड़ने लगते हैं। मुख्य खेत में ये लक्षण कल्ले बनने की अंतिम अवस्था में प्रकट होते हैं। लीफ शीथ पर जल सतह के ऊपर से धब्बे बनने शुरू होते हैं। इन धब्बों की आकृति अनियमित तथा किनारा गहरा भूरा व बीच का भाग हल्के रंग का होता है। पत्तियों पर घेरेदार धब्बे बनते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में कई छोटे छोटे धब्बे मिलकर बड़ा धब्बा बनाते हैं। इसके कारण शीथए तनाए ध्वजा पत्ती पूर्ण रूप से ग्रसित हो जाती है और पौधे मर जाते हैं। खेतों में यह रोग अगस्त एवं सितंबर में अधिक तीव्र दिखता है। संक्रमित पौधों में बाली कम निकलती है तथा दाने भी नहीं बनते हैं।

रोग प्रबंधन • धान की रोगरोधी प्रजातियों का चयन करें। • शुद्ध एवं स्वस्थ बीजों का ही प्रयोग करें। • बीजों को फफूंद नाशक से उपचारित करके बुआई करें। • मुख्य खेत एवं मेड़ों को खरपतवार से मुक्त रखें। • संतुलित उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। • नाइट्रोजन उर्वरकों को दो या तीन बार में देना चाहिए। • खेतों से फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। • फसल में रोग नियंत्रण हेतु बायोवेल का जैविक कवकनाशी बायो ट्रूपर की 500 मिली.मात्रा का प्रति एकड़ में 120 से 150 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

5.धान का खैरा रोग: यह बीमारी जस्ता की कमी के कारण होती है। इसके लगने पर पौधे की निचली पत्तियां पीली पड़ना शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के अनियमित धब्बे उभरने लगते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पौधे की पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। कल्ले कम निकलते हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

रोग प्रबंधन • धान की फसल में यह बीमारी न लगे उसके लिए 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए। • बीमारी लगने के बाद इसकी रोकथाम के लिए 2 किलोग्राम जिंक सल्फेट और 1 किलोग्राम चूना 250 से 300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10 दिन के बाद फिर से स्प्रे करें।

6.आभासी कंड रोग या ध्वज कंड रोग या हल्दी रोग: यह रोग क्लेविसेप्स ओराइजी नामक फफूंद से फैलता है। पहले इस रोग का ज्यादा महत्व का नहीं माना जाता था बल्कि इसे किसान के लिए शुभ संकेत माना जाता था। परंतु अधिक पैदावार देने वाली एवं अधिक उर्वरक उपयोग करने वाली प्रजातियों के विकास तथा जलवायु परिवर्तन से अब यह रोग धान के रोगों में अपना प्रमुख स्थान रखता हैए जोकि संक्रमण के अनुसार उपज में 2 से 40 प्रतिशत तक नुकसान करता है।

रोग की पहचान : इस रोग के लक्षण पौधों की बालियों में केवल दानों पर ही दिखाई देते हैं। रोगजनक के विकसित हो जाने के कारण बाली में कहीं कहीं बिखरे हुए दाने बड़े मखमल के समान चिकने हरे समूह में बदल जाते हैंए जो अनियमित रूप में गोल अंडाकार होते हैं। इनका रंग बाहरी ओर नारंगी पीला और मध्य में लगभग सफेद होता हैए इस रोग से बाली में कुछ ही दाने प्रभावित होते हैं।

समन्वित रोग प्रबंधन • सदैव बीज उपचार करके ही बुवाई करनी चाहिए • खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। • खेत की तैयारी के वक्त खेत की सफाई कर उसकी गहरी जुताई करके तेज धूप लगने के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। फसल में रोग नियंत्रण हेतु बायोवेल का जैविक कवकनाशी बायो ट्रूपर की 500 मिली मात्रा का प्रति एकड़ में 120 से 150 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885

अमित राय
मै. माँ उर्वरक केन्द्र
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2023-24

गन्ने में पायरिल्ला या पर्ण फुदका का एकीकृत प्रबंधन

डॉ. चंद्र कान्त (सहायक प्राध्यापक) कीट विज्ञान विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा (उ.प्र.)

रजनीश पाल शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौधोगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

शची तिवारी, स्वर्णिमा तिवारी शोध छात्रा, वनस्पति विज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

गन्ना भारत मे उगाई जाने वाली एक प्रमुख्य नगदी फसल है। गन्ने का उपयोग मुख्यत: मिठास जैसे गुड, चीनी और बूरा बनाने के साथ-साथ गन्ने का उपयोग एथेनॉल, मोलेसस, रम इत्यादि बनाया जाता है। इसके अलावा गन्ने की खोई का उपयोग पेपर बनाने तथा मीलों में ईंधन के रूप मे उपयोग किया जाता है। गन्ने के हरे पत्ते का उपयोग हरे चारे के रूप में तथा सूखे पत्तों का उपयोग छप्पर एवं खेतों मे मल्च बनाने मे भी प्रयोग किया जाता है। गन्ने मे सूक्रोस तथा ग्लूकोस की मात्रा अधिक होने के कारण इसमे कीड़ों का प्रकोप भी सर्वाधिक होता है। गन्ने के खेत मे लगभग 60 से अधिक कीट पाए जाते हैं, जिसमे मुख्यत: 10 कीट ही फसल को भारी नुकसान पहुचते हैं। जिसमे तना वेधक, जड़ वेधक, गांठ वेधक, शीर्ष वेधक, पर्ण फुदका, दीमक तथा सफेद गिड़ार प्रमुख हैं। जिसमे पर्ण फुदका अधिक नुकसान पहुंचता है। गन्ने में पायरिल्ल पर्ण फुदका आमतौर पर मार्च से जून मे दिखाई देना शुरू होता है, भारत में फुदका जुलाई से सितम्बर तक सबसे अधिक सक्रिय रहता है। हालाँकि, यह पूरे वर्ष सक्रिय रहता है तथा प्रतिवर्ष इसकी 3-6 जीवन चक्र पूरा करता है।

पर्ण फुदका से होने वाले नुकसन के लक्षण

- फुदका का निम्फ और वयस्क दोनों अवस्थाएं पत्तियों के रस को चूसती हैं, जिससे पत्तियों मे नमीं एवं क्लोरोफिल की कमी हो जाती है जिससे पत्तियां पीली हो जाती हैं।
- अत्यधिक प्रकोप से पत्तियाँ काली कालिख से ढकी हुई दिखाई देती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया अवरुद्ध होता है।
- फुदके के अत्यधिक प्रकोप से गन्ने की ऊपरी पत्तियां सूख जाती हैं और पार्श्व कलियाँ अंकुरित हो जाती हैं।
- पर्ण फुदका पत्तियों पर एक गाढ़ा पारदर्शी तरल पदार्थ भी छोड़ता है, जिसे हनीड्यू के नाम से जाना जाता है, जो ब्लैक मोल्ड नामक सैप्रोफाइटिक फंगस के विकास के लिए एक अच्छा माध्यम बन जाता है। यह फफूंद पत्तियों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया को कम कर देता है, जिसके कारण गन्ने में सुक्रोज की मात्रा 2-34% और गन्ने की चीनी की शुद्धता 3-26% तक कम हो जाती है।

पर्ण फुदका कीट की पहचान

अंडा: मादा फुदका दिन के समय, पत्तियों की मध्यशिरा के पीछे की सतह पर अंडे देती है। मादा आमतौर पर सफेद, हरे-पीले रंग के अंडे देती है, जो 0.9-1.0 मिमी लंबे और 0.45-0.64 मिमी चौड़े होते हैं। एक बार में लगभग 25-55 अंडे देती है, जिनकी जीवन-काल प्रजनन क्षमता 600-800 अंडे होती है।

निम्फ: नए निकले हुए निम्फ 0.8-1.0 मिमी लंबे और 0.54-0.64 मिमी चौड़े, दूधिया सफेद रंग के होते हैं और वयस्क बनने के लिए पाँच निर्मोचन से गुजरते हैं, प्रत्येक निर्मोचन 7-40 दिन का हो सकता है, और अधिकतम कुल निम्फ अवधि 134 दिनों की होती है। निम्फ के पृष्ठ भाग पर मुलायम, हल्के भूरे तथा सफेद रंग का तथा अधर भाग पर हल्के नारंगी रंग का, जिसमें दो विशिष्ट गुदा तंतु होते हैं।

- **वयस्क:** गहरे हरे, भूसे के रंग का, सिर थूथन की तरह आगे की ओर इशारा करता हुआ। नर और मादा के लिए पंखों का फैलाव क्रमशः 16-18 मिमी और 19-21 मिमी तक होता है। वयस्क जीवन काल 14-200 दिनों तक होता है।

एकीकृत कीट प्रबंध

- निम्नलिखित में से किसी भी कीटनाशक का छिड़काव करें
- **रोपण-पूर्व पद्धतियाँ:** बुवाई की तारीखों में परिवर्तन, कूड़े की मल्चिंग।
- **सेट्स का उपचार:** रोपण से पहले सेट्स को क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी घोल (2 मिली/लीटर) में डुबोया जाना चाहिए।
- खेत खरपतवारों से रहित होना चाहिए।
- गन्ने की पेड़ी फसल से बचें क्यूकी पेड़ी की फसल मे फुदके का प्रकोप ज्यादा होता है।
- अंतर फसल/बाधा फसल, जैसे- गर्मी की मूंगफली, सोयाबीन, खीरा, तरबूज इत्यादि।
- जैविक कीट नियंत्रण में जब 3-5 पाइरिला प्रति पत्ती दिखाई दें तो प्रति एकड़ 4000-5000 कोकून या 4 से 5 लाख अंडे एपिरिकेनिया मेलानोल्यूका का खेत में छोड़ें।
- 107 बीजाणु/एमएल की दर से मेटारिज़ियम एनीसोप्लिए का पत्तियों पर छिड़काव करें।
- 250/हेक्टेयर की दर से मेटारिज़ियम एनीसोप्लिए युक्त पाइरिला व्यस्कों को छोड़ें।
- अत्यधिक गंभीर प्रकोप की दशा मे ही रासायनिक कीटनाशक का छिड़काव करें जैसे मैलाथियान 50 ईसी 2 लीटर प्रति हैटेयर की दर से छिड़काव करें।
- क्लोरिपीरिफॉस 20 ईसी @ 2.5 मिली/लीटर पानी।
- लाम्डा सीलोथ्रिन 5 ईसी @ 2 मिली/लीटर पानी।
- थायामेथाक्सम 25 डब्लूजी @ 2 मिली/लीटर पानी।
- इमिडाक्लोपृड 17.8 एसएल @ 1 मिली/लीटर पानी।

12/2022-23

कुलदीप सिंह (पीएचडी रिसर्च स्कॉलर)
सस्य विज्ञान विभाग सैम हिगिनबॉटम यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज, प्रयागराज (उ.प्र.)

कृषि मौसम विज्ञान संचार और विस्तारः अंतिम मील तक पहुंचने की नवाचारी रणनीतियां

परिचय

कृषि मौसम विज्ञान (Agrometeorology) संचार और विस्तार सेवाएँ किसानों को जलवायु जोखिमों का प्रबंधन करने, कृषि पद्धतियों को अनुकूलित करने और खाद्य सुरक्षा बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जलवायु परिवर्तन की तेज़ गति और मौसमी अस्थिरता के कारण, ग्रामीण समुदायों के लिए समय पर, सटीक और क्रियात्मक कृषि मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। हालांकि, तकनीक और सूचना प्रसार में प्रगति के बावजूद, कई छोटे और संसाधनहीन किसान–विशेषकर जो "अंतिम मील" (last mile) पर हैं–अभी भी इस तरह की जानकारी तक पहुंचने और उसका उपयोग करने में बड़ी बाधाओं का सामना करते हैं।

इस अंतर को दूर के लिए आधुनिक डिजिटल उपकरणों, पारंपरिक मीडिया और सामुदायिक भागीदारी के मिश्रण वाली नवाचारी रणनीतियों की आवश्यकता है। प्रभावी संचार न केवल मौसम पूर्वानुमान और सलाह देता है, बल्कि क्षमता निर्माण, विश्वास और किसानों को सशक्त बनाने में भी मदद करता है ताकि वे उत्पादकता और अनुकूलन क्षमता बढ़ाने वाले निर्णय ले सकें। यह लेख कृषि मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी को सबसे दूरस्थ और संवेदनशील किसानों तक पहुंचाने की रणनीतियों, चुनौतियों और सर्वोत्तम प्रथाओं पर प्रकाश डालता है।

कृषि मौसम विज्ञान संचार और विस्तारः अंतिम मील तक पहुंचनाः कृषि मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी किसानों को मौसमी अस्थिरता के अनुसार खेती करने, जोखिमों का प्रबंधन करने और कृषि पद्धतियों को अनुकूलित करने में एक महत्वपूर्ण सहायक है। हालांकि, इन सेवाओं का वास्तविक प्रभाव तभी दिखता है जब ये सबसे दूरस्थ और संसाधनहीन किसानों–जिन्हें कृषि विस्तार की "अंतिम मील" कहा जाता है–तक पहुंचती हैं और उनकी समझ में आती हैं।

संचार माध्यमः औपचारिक और अनौपचारिक

औपचारिक माध्यमः इनमें राष्ट्रीय मौसम विज्ञान और जल विभाग (NMHSs) की आधिकारिक वेबसाइटें, सोशल मीडिया, सार्वजनिक-सेवा प्रसारण मीडिया (रेडियो, टीवी) और विस्तार अधिकारियों द्वारा आमने-सामने संपर्क शामिल हैं। ये माध्यम सटीक और समय पर जानकारी देने के लिए आवश्यक हैं, लेकिन अक्सर दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुंचने में चुनौतियों का सामना करते हैं।

अनौपचारिक माध्यमः किसान अक्सर परिवार, दोस्तों, पेशेवर नेटवर्क और धार्मिक समूहों से जानकारी प्राप्त करते हैं। ये माध्यम किफायती हैं और सलाह को तेज़ी से फैला सकते हैं, लेकिन इनमें सटीकता की कमी और संदेशों के विकृत होने की संभावना होती है।

डिजिटल और पारंपरिक तकनीकें

डिजिटल उपकरणः मोबाइल ऐप, एसएमएस और व्हाट्सएप जैसे प्लेटफार्म विकासशील देशों में तेज़ी से महत्वपूर्ण हो रहे हैं। ये उपकरण वास्तविक समय में प्रतिक्रिया देने, जानकारी प्रदाताओं और किसानों के बीच विश्वास बढ़ाने और स्थानीय अवलोकनों को शामिल करने में मदद करते हैं।

ग्रामीण रेडियोः डिजिटल तकनीकों के उदय के बावजूद, ग्रामीण रेडियो कई विकासशील क्षेत्रों में सबसे प्रभावी माध्यम बना हुआ है। यह सुलभ है, इंटरनेट कनेक्टिविटी की आवश्यकता नहीं होती और बड़े दर्शक वर्ग तक पहुंच सकता है, जिसमें कम पढ़े-लिखे लोग भी शामिल हैं। हाथ से चलने वाले, कम बिजली वाले रेडियो जैसी नवाचारी तकनीकें दूरस्थ क्षेत्रों में पहुंच को और बढ़ाती हैं।

अंतिम मील तक पहुंचने हेतु सर्वोत्तम प्रथाएँ

स्थानीयकृत और स्थानीय भाषा में सामग्रीः जानकारी को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए और किसानों की भाषा में दिया जाना चाहिए। इससे समझ और विश्वास बढ़ता है।

सामुदायिक भागीदारीः किसानों को डेटा संग्रह और प्रतिक्रिया प्रक्रियाओं (जैसे वर्षामापी या स्थानीय मौसम नेटवर्क) में शामिल करने से सलाह की प्रासंगिकता और स्वीकृति बढ़ती है।

प्रशिक्षण और क्षमता निर्माणः किसानों और विस्तार अधिकारियों को नियमित रूप से कृषि मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी के उपयोग पर प्रशिक्षण देना सुनिश्चित करता है कि सलाह क्रियात्मक हो और बेहतर निर्णय लेने में मदद करे।

बहु-माध्यम प्रसारः डिजिटल, रेडियो और आमने-सामने विस्तार को मिलाकर पहुंच को अधिकतम किया जा सकता है और संदेशों को विभिन्न किसान समूहों तक पहुंचाया जा सकता है।

ग्राम पंचायत स्टेशन का उपयोग

किसान नियमित रूप से ग्राम पंचायत कार्यालय या स्टेशन पर आते हैं। यह स्थान कृषि मौसम पूर्वानुमान और कृषि सलाहकार संदेशों को प्रदर्शित करने के लिए एक आदर्श मंच है। ग्राम पंचायत स्टेशन पर बोर्ड, पोस्टर या डिजिटल स्क्रीन के माध्यम से मौसम पूर्वानुमान, फसल सलाह और अन्य महत्वपूर्ण जानकारी प्रदर्शित की जा सकती है। इससे सभी किसानों तक जानकारी की नियमित और सटीक पहुंच सुनिश्चित होती है।

सरकारी बीज और उर्वरक स्टेशन का उपयोग

सरकारी बीज और उर्वरक स्टेशनों का भी उपयोग कृषि मौसम पूर्वानुमान और एग्रो-एडवाइजरी प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता है। ये स्टेशन किसानों के लिए एक प्रमुख संपर्क केंद्र हैं, जहां वे बीज, उर्वरक और अन्य सामग्री प्राप्त करने आते हैं। इन स्टेशनों पर बोर्ड, पोस्टर या डिजिटल स्क्रीन के माध्यम से मौसम पूर्वानुमान, फसल सलाह और अन्य महत्वपूर्ण जानकारी प्रदर्शित करने से किसानों तक जानकारी की पहुंच और भी सुगम हो जाती है।

उदाहरण

भारतः ग्रामीण कृषि मौसम सेवा (Gramin Krishi Mausam Seva, GKMS) कार्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं में फसल-विशिष्ट सलाह एसएमएस और मोबाइल ऐप के माध्यम से 43 मिलियन से अधिक किसानों तक पहुंचाता है। जिला स्तर की सलाह भी फील्ड यूनिट और सामुदायिक बैठकों के माध्यम से दी जाती है, जिसमें प्रतिक्रिया तंत्र शामिल होते हैं।

बांग्लादेशः कृषि विस्तार विभाग डिजिटल कियोस्क, मोबाइल ऐप और सामुदायिक रेडियो का उपयोग करके कृषि मौसम विज्ञान संबंधी सलाह देता है। प्रशिक्षण मॉड्यूल और स्थानीय भागीदारी ने छोटे किसानों के बीच स्वीकृति और अनुकूलन क्षमता को बढ़ाया है।

चुनौतियां और समाधान

अवसंरचना की कमीः ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और बिजली की कमी डिजिटल पहुंच में बाधा डालती है। समाधान के रूप में रेडियो और मुद्रित सामग्री जैसे कम-तकनीकी विकल्पों का उपयोग किया जा सकता है, साथ ही ग्रामीण कनेक्टिविटी में निवेश भी आवश्यक है।

विश्वास और साक्षरताः सुसंगत, सटीक जानकारी और सहभागी दृष्टिकोण के माध्यम से विश्वास बनाना महत्वपूर्ण है। दृश्य और चित्रात्मक सहायक (जैसे फसल मौसम कैलेंडर) साक्षरता की बाधा को दूर करने में मदद करते हैं।

प्रतिक्रिया तंत्रः किसानों की प्रतिक्रिया को शामिल करने से सेवाएँ प्रासंगिक बनी रहती हैं और निरंतर सुधार होता है

निष्कर्ष

कृषि मौसम विज्ञान संचार में अंतिम मील तक पहुंचने के लिए डिजिटल नवाचार, पारंपरिक मीडिया और सामुदायिक भागीदारी का मिश्रण आवश्यक है। स्थानीय नेटवर्क का उपयोग करके, संदेशों को सरल बनाकर और किसानों की जरूरतों के अनुसार लगातार अनुकूलन करके, कृषि मौसम विज्ञान विस्तार सेवाएँ कृषि अनुकूलन क्षमता और उत्पादकता को काफी हद तक बढ़ा सकती हैं।

धान की रोपाई: चावल की खेती में एक महत्वपूर्ण कदम

सुरेश हरितवाल (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन) कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड वि.वि. झांसी

युवराज कुमावत (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन) कृषि एवं प्राकृतिक विज्ञान संस्थान, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

परिचय

धान (चावल) दुनिया की आधी से ज्यादा आबादी का मुख्य भोजन है, और इसकी खेती कई चरणों में होती है जिनमें से एक सबसे महत्वपूर्ण है रोपाई। धान की रोपाई, चावल के छोटे पौधों को नर्सरी से मुख्य खेत में ले जाने की प्रक्रिया है, जहाँ वे पूरी तरह विकसित होते हैं। यह विधि सदियों से चली आ रही है और इसके कई कृषि संबंधी लाभों के कारण आज भी इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

धान रोपाई क्या है?: धान की रोपाई का मतलब है नर्सरी में उगाए गए 20-30 दिन पुराने चावल के पौधों को उखाड़कर उन्हें तैयार और दलदली मुख्य खेत में नियमित अंतराल पर रोपना। यह कदम एक समान वृद्धि, उचित पौध घनत्व और उच्च उत्पादकता सुनिश्चित करता है।

प्रत्यक्ष बीजारोपण की अपेक्षा रोपाई को क्यों प्राथमिकता दी जाती है?: हालाँकि कुछ क्षेत्रों में मजदूरों की कमी के कारण चावल की सीधी बुवाई लोकप्रिय हो रही है, फिर भी रोपाई सबसे प्रभावी और विश्वसनीय तरीका है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ पानी का ठहराव या खरपतवार का प्रकोप ज्यादा होता है। इससे पोखर के कारण खरपतवार पर बेहतर नियंत्रण। एकसमान फसल स्टैंड. मजबूत जड़ पकड़. उर्वरकों के प्रति बेहतर प्रतिक्रिया।

धान की रोपाई के चरण

1.नर्सरी की तैयारी - जल स्रोत के पास उपजाऊ, अच्छी जल निकासी वाला भूखंड चुनें। पूर्व-अंकुरित चावल के बीजों को सघनता से बोएं। नर्सरी बेड को नियमित रूप से पानी दें। 20-30 दिनों के बाद, पौधे 15-20 सेमी की ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं और रोपाई हेतु तैयार हो जाते हैं।

2. मुख्य क्षेत्र की तैयारी-खेत को अच्छी तरह से जोतकर समतल करें। पानी का समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए खेत को समतल करें। पानी की एक पतली परत (2-5 सेंमी) बनाए रखें।

3. पौधों को उखाड़ना और बंडल बनाना जड़ों को नुकसान से बचाने के लिए पौधों को सावधानीपूर्वक उखाड़ें। मुख्य खेत तक आसानी से ले जाने के लिए उन्हें छोटे बंडलों में बाँध दें।

4. मुख्य खेत में रोपाई। प्रति टीले 2-3 पौधे रोपें। उचित दूरी बनाए रखें, आमतौर पर 20×15 सेमी। गहरी रोपाई से बचें (आदर्श रूप से 2-3 सेमी गहराई)। दिन के ठंडे समय में रोपाई करें -सुबह या शाम।

जल एवं उर्वरक प्रबंधन: पहले 2-3 सप्ताह तक 2-5 सेमी पानी बनाए रखें। मृदा परीक्षण की सिफारिशों के अनुसार नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम का प्रयोग करें। यदि आवश्यक हो तो जिंक और आयरन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का समय पर प्रयोग सुनिश्चित करें।

प्रत्यारोपण विधियों के प्रकार

1.पारंपरिक तरीका: श्रम-प्रधान और समय-साध्य। एशिया और अफ्रीका के कई छोटे-छोटे खेतों में अभी भी प्रचलित है।

2.यांत्रिक प्रत्यारोपण: धान रोपाई मशीनों का उपयोग करता है। श्रम और समय कम करता है एकसमान अंतराल और गहराई सुनिश्चित करता है। बड़े पैमाने पर या वाणिज्यिक चावल की खेती के लिए आदर्श है।

धान की रोपाई के लाभ: चावल के पौधों की रोपाई से कई लाभ होते हैं, जिनमें एक समान पौधा, बेहतर खरपतवार नियंत्रण और संभावित रूप से अधिक उपज शामिल है। इससे किसान स्वस्थ पौधों का चयन कर सकते हैं, पानी का अधिक कुशलता से प्रबंधन कर सकते हैं और आवश्यक बीज की मात्रा कम कर सकते हैं। हालाँकि यह श्रमसाध्य हो सकता है, लेकिन चावल रोपाई मशीन जैसी आधुनिक मशीनें इस प्रक्रिया को सुव्यवस्थित कर सकती हैं।

यहाँ चावल की रोपाई के महत्व पर एक विस्तृत नजर डाली गई है:

लाभ:

1.एक समान पौधा और खरपतवार नियंत्रण: रोपाई से पौधों का अधिक समान वितरण सुनिश्चित होता है, जो चावल को एक बढ़त देकर और प्रतिस्पर्धा को कम करके खरपतवार प्रबंधन में मदद करता है।

2.अनुकूलित संसाधन उपयोग: रोपाई से पानी और पोषक तत्वों का अधिक कुशल उपयोग हो सकता है क्योंकि पौधे एक निश्चित दूरी पर लगाए जाते हैं, जिससे बर्बादी और प्रतिस्पर्धा कम होती है।

3.अधिक उपज: एक स्वस्थ और एक समान फसल की रोपाई करके, रोपाई से उपज में वृद्धि हो सकती है, जैसा कि रोपाई मशीनों और पारंपरिक तरीकों से उपज की तुलना करने वाले अध्ययनों में देखा गया है।

4.कम बीज की आवश्यकता: सीधे बीज बोने की तुलना में रोपाई में कम बीज की आवश्यकता होती है, क्योंकि केवल स्वस्थ पौधों का चयन और रोपण किया जाता है।

5.जल्दी फसल की संभावना: पुराने पौधों की रोपाई करके, किसान कुल फसल अवधि को कम कर सकते हैं और जल्दी फसल प्राप्त कर सकते हैं।

6.मशीनरी के साथ बेहतर श्रम दक्षता: हालाँकि हाथ से रोपाई श्रमसाध्य हो सकती है, चावल रोपाई मशीनों के उपयोग से रोपाई के लिए आवश्यक कार्यभार और समय में उल्लेखनीय कमी आ सकती है।

7.बेहतर कीट और रोग प्रबंधन: एक समान और स्वस्थ फसल की निगरानी और कीटों और रोगों का प्रबंधन आसान हो सकता है।

विचारणीय बातें:

श्रम प्रधान (मैन्युअल): मैन्युअल रोपाई श्रम प्रधान और समय लेने वाली हो सकती है, खासकर बड़े खेतों में।

नर्सरियों की आवश्यकता: रोपाई के लिए नर्सरी की स्थापना की आवश्यकता होती है ताकि पौधे उगाए जा सकें, जिससे खेती की प्रक्रिया में एक और चरण जुड़ जाता है।

सारांश : कुल मिलाकर, चावल की रोपाई एक मूल्यवान तकनीक है जिससे बेहतर फसल प्रबंधन, अधिक उपज और संसाधनों का बेहतर उपयोग हो सकता है। हालांकि इसमें अपनी चुनौतियां हैं। खासकर शारीरिक श्रम के मामले में, लेकिन मशीनों का उपयोग इसे चावल किसानों के लिए अधिक कुशल और सुलभ बना रहा है।

01/2023-24

बुंदेलखंड के मौसम में एक उपयुक्त फसल धान

सुभी सिंह (शोधकर्ता) आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृमि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)

एकता आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी (उ.प्र.)

डॉ. महीपत सिंह यादव (सहायक प्राध्यापक) आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृमि विनान संस्था, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)

धान पोएसी परिवार की एक फसल है इसकी उत्पत्ति भारत के एशिया में की बाती है। धान भारत की एक प्रमुख फसल मानी जाती है। इसका उपयोग चावल के रूप में किया जाता है। भारत में यह कई स्थानों में जैसे-वेस्ट बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, केरल आदि स्थानों में उगाई जाती है। इसके अलावा भी छत्तीसगढ़ में इसे धान का कटोरा भी कहा जाता है। यह पिख में भी कई स्थानों चीन में भी इसका उत्पादन किया जाता है।

धान के उपयोग

* चावल, जो धान से प्राप्त होता है। दुनिया भर में एक प्रमुख खाद्य फसल है।
* धान के भूसे को पशुओं के चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
* धान के भूसे को खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
* धान भारत सहित एशिया एवं विश्व के बहुत से देशों का मुख्य भोजन है। विश्व में मक्का के बाद धान ही सबसे अधिक उत्पन्न होने वाला अनाज है।
* धान के लावा का उपयोग हिन्दू, त्योहारों जैसे नागपंचमी और दीपावली में पूजा के लिए किया जाता है।

पोषण सुरक्षा एवं महत्व

धान (चावल) भारत और अन्य एशियाई देशों की प्रमुख खाद्य फसल है इसकी अच्छी पैदावार और पोषण गुणवत्ता बनाए रखने के लिए उचित पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

मुख्य पोषक ताप की धान के लिए आवश्यक

(1) नाइट्रोजन: पौधों की वृद्धि और पत्तियों की हरियाली के लिए जरूरी है।

(2) फॉस्फोरस : जड़ प्रणाली के विकास के लिए आवश्यक है।

(3) पोटाश: रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।

(4) जिंक आयरन, सल्फर आदि पोषक तत्व हैं। अंकुरण फूल-फल की गुणवत्ता और अनाज के पोषण स्तर को बेहतर बनाते हैं।

धान की पोमाण द्वारा सुरक्षा का महत्व

* उच्च उत्पादन में
* मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार
* स्वस्थ पौधे
* मानव पोमाण
* जलवायु अनुकूलता

प्रतिकूल वातावरण हेतु एक उपयुक्त फसल

धान (चावल) एक उपयुक्त फसल है, जो प्रतिकूल वातावरण में भी उगाई जा सकती है।

धान को उमणकटिबंधीय और उपोमणकटिबंधीय जलवायु में उगाया जा सकता है। जहा तापमान 20°c से 40°c के बीच रहता है। धान की खेती के लिए पानी की, उपलब्धता एक महत्व पूर्ण कारक है।

उच्च उत्पादन हेतु कृषि तकनीक

उच्च उत्पादन के लिए कृषि में विभिन्न आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे कि स्मार्ट सिंचाई, सटीक खेती जीनोम संपादन और ड्रोन ये तकनीकें पानी उर्वरक और कीटनाशकों के उपयोग को कम करते हुए फसल की पैदावार बढ़ाने, लागत कम करने और पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद करती हैं।

कृषि में उपयोग की जाने वाली कुछ प्रमुख आधुनिक तकनीकें

(1) स्मार्ट सिचाई : स्मार्ट सिंचाई प्रणालियां जैसे-ड्रिप सिचाई और स्प्रिंकलर पानी के उपयोग की अनुकृवित करती हैं।

(2) सटीक खेती: सटीक खेती तकनीके जैसे कि जीपीएस और खेतर मिट्टी की स्थिति फसल की वृद्धि और कीटों भौर रोगों के बारे में जानकारी प्रदान करती है।

(3) जीनाम संपादनद् जीनोम संपादन तकनीके जैसे-CRISPR&C459 फसलों की आनुवांशिक संरचना को संशोधित करने हेतु उपयोग की जाती है।

(4) ड्रोन: ड्रोन का उपयोग खेतो की निगरानी फसलो की वृद्धि का आकलन करने और कीटनाशकों और उर्वरकों को छिड़काव करने के लिए किया जाता है।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)

01/203-24

गाँठ गोभी (Knol-khol) की उन्नत खेती

पंकज कुमार, सूरज पासवान
एम. एल. मीणा उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

गाँठ गोभी (Knol-khol)

वानस्पतिक नाम Brassica oleracea L. var. gongylodes

कुल-Brassicaceae

गाँठ गोभी का पौधा लगभग 30-50 सेमी0 ऊँचा होता है। घड़ फूल कर गाँठ के रूप में हो जाता है। इसी को शाक के लिये प्रयोग किया जाता है। इसके फूले हुये घड़ पर थोड़े से पत्ते होते हैं। गाँठ गोभी का मूल-स्थान उत्तरी यूरोप है।

उन्नत किस्में

गाँठ गोभी की किस्म को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है- 1.अगेती अथवा अल्पकालिक किस्में- व्हाइट वियना, अर्लीएस्ट ग्रीन वियना। 2.पछेती अथवा दीर्घकालिक किस्में परपिल वियना, यलो वियना,

भूमि: गांठ गोभी के लिये दोमट (Loam) भूमि सर्वोत्तम रहती है। लेकिन बलुई दोमट की अपेक्षा मृत्तिका दोमट (Clay loam) भूमि में गाँठ गोभी अच्छी उपज देती है।

भूमि की तैयारी: प्रायः 4-5 बार की जुताइयों पर्याप्त होती है। खेत को 2-3 बार पटेला देकर चौरस और ढेले रहित बना लेना चाहिये। खेत की तैयारी के समय ही उसमें गोबर इत्यादि का खाद डाल देना चाहिये।

खाद तथा उर्वरक: गाँठ गोभी की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये लगभग 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किग्रा. फॉस्फोरस तथा 80 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। खेत को तैयार करते समय लगभग 100-150 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर मिला देनी चाहिये। खेत में रोपाई से पूर्व लगभग 60 किग्रा. नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की ऊपर बताई गई पूरी मात्रा खेत में डाल देनी चाहिये। इसके बाद पौध रोपने के लगभग एक महीने बाद खड़ी फसल में 40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टयर की दर से टापड्रेसिंग के द्वारा दे देनी चाहिये और इसके बाद हल्की सिचाई कर देनी चाहिये।

पौध तैयार करना: गाँठ गोभी की पहले रोपण क्यारी में पौध तैयार करनी होती है। रोपण क्यारी (नर्सरी) का आकार 5 म 1.2 मीटर रखना चाहिये। 125 वर्ग मीटर में नर्सरी डालनी चाहिये। एक हैक्टेयर में बोने के लिये लगभग 1 से 1.25 किलो बीज की आवश्यकता होती है। गाँठ गोभी की पौध तैयार करने का सर्वोत्तम समय सितम्बर का महीना है। लेकिन अगस्त से लेकर अक्टूबर-नवम्बर तक गाँठ गोभी की पौध बोयी जाती है। रोपण क्यारी तैयार करने और बीज बोने का ढंग से करना चाहिए। नर्सरी में बीज एक-एक सप्ताह के अन्तर से बोना चाहिये जिससे कि सारी पौध एक समय ही खेत में रोपे जाने के लिये तैयार न हो जाये। पहाड़ी क्षेत्रों में गाँठ गोभी का बीज मई-जून में बोया जाता है।

पौध रोपना: जब रोपण क्यारी में गाँठ गोभी के पौधे 10 सेन्टीमीटर ऊँचे हो जायें तो उन्हें खेत में रोपे जाने योग्य समझ लेना चाहिये। 3-4 सप्ताह पुरानी पौध लगाते हैं। गाँठ गोभी की पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी 30 सेंटीमीटर और पंक्तियों में पौधों की आपस की दूरी 20 सेंटीमीटर रखनी चाहिये। पौध रोपने के तुरन्त बाद खेत में सिंचाई करनी चाहिये। अधिक समय तक इस तरकारी को प्राप्त करने के लिये पौध को खेत में आठ-आठ अथवा दस-दस दिन के अन्तर से तीन-चार बार रोपना चाहिये। गाँठ गोभी की पौध तैयार न कर उसका बीज भी खेत में सीधे बोया जा सकता है। लेकिन ऐसा करने पर प्रति हैक्टेयर लगभग 4-5 किलोग्राम बीज प्रयोग करना होगा।

सिंचाई: गाँठ गोभी की फसल में कई बार सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। असल में गाँठ गोभी की सफल खेती हेतु सिंचाई के उत्तम प्रबन्ध की आवश्यकता होती है।

निकाई-गुड़ाई: निकाई-गुड़ाई इस फसल के लिये पातगोभी के समान ही की जानी चाहिये। यदि गाँठ गोभी की फसल सीधे खेत में ही बोकर उगाई गई हो तो पहली निकाई के समय लाइनों में फालतू पौधों को इस प्रकार निकाल फेंकना होगा कि उनकी आपस की दूरी 25-30 सेमी0 हो जाये। यह काम उस समय करना सर्वोत्तम रहता है जबकि पौधों में 3-4 पत्तियों आ जायें।

कटाई: जब गाँठ गोभी का व्यास 5 सेन्टीमीटर और 7 सेन्टीमीटर के बीच में हो, उसे सब्जी के लिये काट लेना चाहिये। देर से काटे जाने पर गाँठ गोभी कड़ी और स्वादहीन हो जाती है। फरवरी-मार्च में गाँठ गोभी की फसल तैयार हो जाती है। अधिक उम्र की हो जाने पर इस गोभी की गाँठ में रेशे पड़ जाते हैं जिसके कारण इनकी कोमलता नष्ट हो जाती है और स्वाद भी खराब हो जाता है।

उपज: एक हैक्टेयर भूमि से लगभग 200 से 250 क्विंटल गाँठें निकलती है।

बीज लेना: गाँठ गोभी का बीज सब जगह उत्पन्न नहीं किया जा सकता। पहाड़ों अथवा अन्य ऐसे स्थानों में जहाँ जलवायु ठण्डी है, गाँठ गोभी का बीज उत्पन्न किया जाता है। अतः अधिकांश लोग गाँठ गोभी का बाहर से मंगाया बीज ही प्रयोग करते हैं। गाँठ गोभी का बीज उत्पन्न करने के लिये अच्छे, स्वस्थ, सुडौल गाँठ वाले पौधों को अलग लगा देते हैं। कुछ समय बाद उसमें फूल, फली लगती है और पकने पर बीज इकट्ठा कर लिया जाता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन आर्द्र पतन (Damping off)-यह नर्सरी में लगने वाली मुख्य बीमारी है। इससे पौधे की जड़ें सड़ जाती हैं। बीमार पौधे भूमि की सतह से गलकर गिर जाते हैं। यह रोग फफूंद के द्वारा होता है। इस फफूंद द्वारा बीज पत्राधार (hypocotyl) पर भूरे रंग के धब्बे पैदा होते हैं, जो क तथा भूमि की सतह के निकट तने के निचले भाग पर फैल जाते हैं। इन भागों में सड़न हो जाने के कारण पौधे गिर जाते है और अन्त में मर जाते हैं।

रोकथाम : * नर्सरी को फारमेल्डीहाइड (20-30 मिली प्रति ली. पानी) से उपचारित करना चाहिये। * बीज को कैप्टान वा थायराम से (2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज) उपचारित करके बोयें। * बोआई के पहले नर्सरी की मिट्टी को 0.2 प्रतिशत ग्रेसीकाल के घोल से सिंचित कर दिया जाये।

पत्ती का धब्बा रोग: यह रोग भी एक फफूंद के द्वारा होता है। इस रोग के कारण पत्तियों पर बहुत से छोटे-छोटे गोल तथा गहरे रंग के धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के केन्द्रीय स्थान पर नीलापन लिये हुये फफूंद की वृद्धि पायी जाती है। इनमें बाद में चक्करदार रेखायें बनने लगती हैं।

रोकथाम: * फसल के मलबे को जलाकर नष्ट कर देना चाहिये। * फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही 2.5 किलोग्राम इण्डोफिल एम-45 को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर देना चाहिये।

काली मेखला (Black leg): यह रोग भी फफूंदी के कारण होता है। इस रोग के लक्षण पहले नर्सरी में ही बोआई के 15-20 दिन बाद दिखाई देते हैं। पत्तियों पर धब्बे बनते हैं जिनके बीच का भाग राख की तरह धूसर रंग का होता है। तनों पर धब्बे पक्तिबद्ध होते हैं और ये नील-लोहित रंग के किनारों से घिरे रहते हैं। रोगी पौधे जल्दी नहीं गिरते परन्तु जब पौधों के शीर्ष (फूल) बड़े हो जाते हैं तो उनके भार के कारण रोगग्रस्त तनों के कमजोर क्षेत्र से पौधे गिर जाते हैं।

रोकथाम * बीज को बोने से पहले गर्म पानी (50ए से0) में 30 मिनट तक उपचारित करना चाहिये। * तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिये।

कीट नियंत्रण

आरा मक्खी (Saw fly)

इस कीट की सुंडी काले रंग की लगभग 20 मिलीमीटर लम्बी होती है। इसके शरीर के ऊपर पाँच धारियाँ होती हैं। ये सुँडियाँ मुलायम पत्तियों को खाकर फसल को नुकसान पहुँचाती हैं।

रोकथाम: यदि फसल घोड़े क्षेत्र में उगाई गई है तो सूंडियों को हाथ से पकड़कर भी नष्ट किया जा सकता है। फसल पर 10% सेविन धूल का 30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करें अथवा एक लीटर मैलाथियान 50 ईसी को 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

माहू (Aphids): ये पीले-हरे रंग के छोटे-छोटे कीट होते हैं जो पत्तियों की निचली सतह पर काफी संख्या में देखे जा सकते हैं। इस कीट का आक्रमण मुख्यतः दिसम्बर से मार्च तक होता है। इनके आक्रमण के कारण फसल कमजोर हो जाती है

रोकथाम: * साइपरमेथ्रिन का 0.2% का घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें। * फसल की प्रारम्भिक अवस्था में जबकि फूल न आये हों नुवान का 0.05 प्रतिशत घोल बनाकर भी छिड़काव किया जा सकता है।

डायमंड बैंक मोथ (Diamond back: moth):इस कीट की सूँडी पत्तियों में छेद करके खाती है जिससे पत्तियों में केवल नसें ही शेष रह जाती हैं। यदि पत्तियों को धोरे से हिलाया जाये तो छोटी-छोटी हरी स्लेटी रंग की सूंडियाँ नीचे गिर जाती हैं। इसका आक्रमण अगस्त से दिसम्बर तक होता है।

रोकथाम * मैलाथियान 5% धूल अथवा सेविन 10% धूल का 30 और 20 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से फसल पर बुरकाव करना चाहिये।

फ्लिया बीटल (Flea beetle): यह कीट अक्सर पौधों की छोटी अवस्था में ही नुकसान पहुँचाता है। ये बीटल लगभग 2 मिलीमीटर लम्बे, नीले-हरे रंग के होते हैं जो एक पौधे से फुदक कर दूसरे पर चले जाते हैं। ये मुलायम पत्तियों को काटकर उनमें छेद बनाते हैं और कभी-कभी पूरी पत्ती ही खत्म कर देते हैं।

रोकथाम * सेविन 10 प्रतिशत धूल को 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से फसल पर बुरकना चाहिये, अथवा 0.15 प्रतिशत साइपरमेथ्रिन के घोल का छिड़काव करें।

पत्तियों में जाला बुनने वाला कीट (Leaf webber)

यह हरे रंग की सुंडी होती है जो पत्तियों में जाला बुनकर अन्दर उसे खाकर क्षति पहुंचाती है। कभी-कभी यह कीट फसल को काफी हानि पहुंचा देता है।

रोकथाम: इस कीट की रोकथाम के लिये 0.15 प्रतिशत सुमीसीडान के घोल का छिड़काव करें अथवा नुवान 0.05 प्रतिशत (0.5 मि. ली. लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती

धन्य कुमार (शोध छात्र) आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, कृषि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

आरती (शोध छात्रा)आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, कृषि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

डॉ. अनुराग दुबे (सहायक प्राध्यापक) आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, कृषि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)

परिचय: सोयाबीन एक तिलहन फसल है इसमें प्रोटीन 40ः एवं वसा 20ः होने के कारण यह प्रोटीन का एक प्रभावी माध्यम है मध्य प्रदेश की जलवायु सोयाबीन के लिए काफी अनुकूल है भारत में 2014-15 में लगभग 102 लाख टन उत्पादन हुआ मध्य प्रदेश में इस दौरान लगभग 60 लाख टन का उत्पादन हुआ। आधुनिक जमाने में सोयाबीन का इस्तेमाल सिर्फ तेल के लिए ही नहीं हो रहा बल्कि इससे कई अन्य उत्पाद जैसे सोया दूध सोया पनीर इत्यादि बनाए जा रहे और इस्तेमाल किया जा रहे जो स्वास्थ्य हेतु काफी फायदेमंद माने जाते हैं।

सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती पद्धति: सोयाबीन फसल के लिए बुवाई का समय खेत का चयन एवं तैयारी बी का चयन बुवाई का तरीका खाद्य सच्चाई खरपतवार रोग बीमारियों की पहचान एवं नियंत्रण तथा कटाई ट्रेकिंग ग्रेडिंग एवं संग्रह आदि की आधुनिक कृषि पद्धति से उचित समय पर पूर्ण करके फसल की गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करना वैज्ञानिक खेती पद्धति है।

बुवाई: सोयाबीन की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह में सर्वोत्तम होती है तथा बुवाई के समय यह ध्यान रखना चाहिए की जमीन में पर्याप्त मात्रा में नमी हो मानसून आने पर लगभग 4 से 5 इंच वर्षा होने के बाद अंकुरण बाद में फसल विकास के लिए जमीन में पर्याप्त नमी हो जाती हैं तथा वायुमंडल एवं मृदा का तापमान 28 से 30 डिग्री सेल्सियस होने से फसल का विकास अच्छा होता है 15 जुलाई के बाद सोयाबीन की बुवाई लाभदायक नहीं होती है।

खेत की तैयारी: खेत की तैयारी करते समय यह ध्यान रखना चाहिए की गहरी काली मिट्टी वाले खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था हो एवं गर्मी की जुताई हर तीसरे वर्ष 9 से 12 इंच गहराई तक करना चाहिए इससे गॉड्स बीटल के पा तथा अन्य कीट एवं फफूंद गर्मी में खुले खेत में नष्ट हो जाएंगे।

बीच का चयन: बेहतर उत्पादन के लिए उन्नत प्रजातियों के अच्छे बीच का उपयोग बहुत जरूरी है जैसेय अहिल्या तीन माह 90-99 दिन में जाती है तथा उत्पादन 12-44 कुंतल एकड़ होता है तथा यह जल्दी पकने वाली बीमारियों एवं पर्णवाक्षी कीटों की प्रतिरूप किस्म है

बीज दर: सोयाबीन की बुवाई के लिए दोनों के अनुसार के तीन से 40 किलो बीज दर एवं 15 से 20 किलो बीच की प्रतिबद्ध की दर से उपयोग करें। बीज के साथ किसी भी रासायनिक उर्वरक का प्रयोग ना करें

बीज उपचार: सोयाबीन फसल में बीज उपचार करने के लिए विधि होती हैं जिनका नाम एफ आई सी है सर्वप्रथम फबुद्दीन नाशक में बिठाफिक्स पावर अल्ट्रा कार्बोनियम प्लस थायराम 2 ग्राम या दो ग्राम कार्बोडियम प्रति किलोग्राम बीच के मन से भी उपयोग किया जा सकता है इसके बाद राइजोबियम कल्चर पीएस कलर एवं ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम प्रत्येक से 1 क बीज उपचार किया जाता है इन कवच नेशन से उपचारित बीज को छाया में सुखाकर ही बनी करनी चाहिए

फसल अंतरण: कतार से कतर की दूरी 30 से 45 सेंटीमीटर एवं पौधों से पौधे की बीच की दूरी 4 से 5 सेंटीमीटर रखें तथा गहराई 3 से 5 सेंटीमीटर के अनुसार बुवाई करना या सिलेंडर से करें सोयाबीन फसल में बीज दर एवं पौधों संख्या का अत्यधिक महत्व होता है एक हेक्टेयर में चार से साढे चार लाख तक पौधे अच्छे उत्पादन के लिए उपयोग है

फसल के साथ अंतर भारतीय फैसलें: सोयाबीन+अरहर (4:2)

सोयाबीन+मक्का (4:2), सोयाबीन+ज्वार (4:2)

=सोयाबीन को अंतरवर्तीय फसल अथवा मिश्रित फसल के साथ में उगना अधिक लाभ पिए है

जल संरक्षण: 6 से 8 करो के बाद एक कुंड एक कुंड खाली छोड़ते खाली कुंड को दूर चलते वक्त गहरा कर देते हैं इससे अधिक वर्षा की स्थिति में जल निकासी एवं अल्प वर्षा की स्थिति में जल संरक्षण होग

सीड ड्रिल के साथ फवउदी का प्रयोग करें जिससे जल संरक्षण एवं अधिक पौधों की संख्या प्राप्त की जा सकती है

खरपतवार नियंत्रण: सोयाबीन की अच्छी पैदावार के लिए बनी के बाद कम से कम 6 सप्ताह तक समय-समय पर निंदाई गोदाई या डोरा कला चलकर अनुसंसित खरपतवार नाशक की छिड़काव किया जाता है

रासायनिक नाम: बेसलीन लॉरेलिन का उपयोग 900 मल एकड़ बनी के पूर्व उपयोग करते हैं। ड्यूल मेटा क्लोर का 800 उस का उपयोग बनी के तुरंत बाद करते हैं

कीटों से बचाव: फसल सुरक्षा हेतु एकीकृत कीट नियंत्रण के उपाय जैसे नेम सेल एवं लाइट ट्रैप्स प्रॉमिनेंट एप्स बर्ड बंपर एवं अन्य जैविक कम लागत की तकनीक द्वारा नियंत्रित करें संपूर्ण कीटों के लिए ड्राइवर क्लोरोपीद 17.8 एस एम एल 100 मल प्रति एकड़ का छिड़काव करें

रोग प्रतिबंधन: गेरुआ रोग यात्रा को होने पर प्रॉपर्टी को नोजोल यार्ड हेक्सा केनोजोल 300 मिली एकड़ इस्तेमाल करें पीला मैजिक रूप की रोकथाम हेतु थीम एक्शन 25 वर्ग 40 ग्राम एकड़ छिड़काव करें

खाद एवं उर्वरक: समुचित उत्पादन के लिए पोषण तत्वों के अनुशंसित की गई मात्रा 20 के नाइट्रोजन 60 से 80 कैलोरी सपोर्ट 50 किलोग्राम पोटाश एवं 20 किलोग्राम गंधक है इसका उपयोग किया जाता है इसको प्रदान करने के लिए 43 किलोग्राम यूरिया 3 किलो 75 ग्राम 400 किलोग्राम सुपर फास्फेट एवं डेढ़ सौ से 200 किलोग्राम और रेट ऑफ पोटाश एवं 150 से 200 किलोग्राम ऐसी जिप्सम डालना चाहिए रासायनिक करो का संतुलन उपयोग के साथ वर्मी कंपोस्ट नाइट्रेट खाद गोबर खाद का अधिक उपयोग करें

फसल की कटाई एवं हार्वेस्टिंग: पूर्ण रूप से पाक जाने पर सोयाबीन की कलियों का रोग बुरा हो जाता है यह समय फसल की कटाई के लिए उपयुक्त है और इस समय कटाई कर लेने से चटकने पर दाने बिखरते से होने वाली नानी से समुचित कमी लाई जा सकती है फलियों के पकाने की उचित अवस्था पर कलयुग का रंग बदलने या हरापन पूर्णता समाप्त होने पर कटाई करनी चाहिए। कटी हुई फसल को धूप में दूसरे दिन सुखाकर हरवेस्टिंग से धीमी गैर 300 से 400 आरपीएम पर ट्रेकिंग करनी चाहिए थ्रेसर की गति में कमी लाने हेतु बड़ी पुलिया उपयोग कर सकते हैं इस बात का ध्यान रखें हार्वेस्टिंग के समय बीच का छिलका न उतरे एवं बी में दरार ना पड़े

भंडारण: हार्वेस्टिंग के पश्चात बी को तीन से चार दिन धूप में अच्छा सुखाकर जब सोयाबीन की दोनों में 10% नामी हो मुंह में डालकर चबाने पर आसानी से टुकड़े हो जाए तब झूठ की बोरी में भंडारण करना चाहिए

* भंडारण गृह ठंडा हवादार वी कट रहे तो होना चाहिए बीच की बोरियों से भरकर अन्य बोरियों में अधिक एवं ऊपर तक नहीं रखना चाहिए ।

* सोयाबीन के बीज के बोरों को भंडारण गृह में ले जाते समय ऊंचाई सी लटके इनमें बीच की अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

गृह उद्यमिता: ग्रामीण भारत की आत्मनिर्भरता की कुंजी

डॉ. अंजलि वर्मा विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, बस्ती, आ.न.दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां आज भी अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इन क्षेत्रों में सीमित रोजगार अवसरों, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता और पारंपरिक सोच के कारण महिलाओं, बेरोजगार युवाओं और सीमांत किसानों को जीवन-यापन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय में "गृह उद्यमिता" (Home-based Entrepreneurship) एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है, जो न केवल रोजगार का सृजन करता है, बल्कि आत्मनिर्भरता और सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में भी मार्ग प्रशस्त करता है।

गृह उद्यमिता का अर्थ है- घर पर या सीमित संसाधनों के साथ कोई व्यवसायिक गतिविधि आरंभ करना। यह लघु उद्योग या सेवा से जुड़ी गतिविधियाँ हो सकती हैं, जिनमें बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं होती।

मुख्य विशेषताएं

* सीमित पूंजी और स्थान में संचालित * परिवार के सहयोग से चलने वाला * महिलाओं के लिए उपयुक्त, घरेलू जिम्मेदारियों के साथ संतुलन संभव * स्थानीय संसाधनों का उपयोग * समय की लचीलता

प्रमुख उद्देश्य

* आर्थिक आत्मनिर्भरता * महिला सशक्तिकरण
* बेरोजगारी में कमी * ग्रामीण विकास

महिलाओं के लिए संभावनाएं

गृह उद्यमिता ग्रामीण महिलाओं को एक नई पहचान और आत्मविश्वास देती है। महिलाएं अपनी पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं से बाहर निकलकर आज सफल उद्यमी बन रही हैं।

प्रमुख गृह-उद्यम विकल्प महिलाओं के लिए

व्यवसाय का नाम	आवश्यक कौशल	संभावित आय स्रोत
अचार, पापड़, मसाला निर्माण	खाद्य प्रसंस्करण	स्थानीय बाजार, हाट
सिलाई-कढ़ाई	सिलाई मशीन, डिज़ाइन	स्कूल ड्रेस, महिलाओं के वस्त्र
अगरबत्ती, दीया निर्माण	हाथ से निर्माण	धार्मिक उत्सवों में मांग
टिफिन सेवा	खाना बनाना	स्कूल/ऑफिस/दैनिक मजदूर
फूलों की खेती	बागवानी	पूजा, शादी, सजावट

सहायता प्राप्त स्रोत

* स्वयं सहायता समूह (SHG)
* राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)
* कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) प्रशिक्षण
* महिला एवं बाल विकास विभाग की योजनाएँ

बेरोजगार युवाओं के लिए संभावनाएं

ग्रामीण युवाओं के पास शारीरिक श्रम, तकनीकी समझ और नवाचार की भावना होती है। अगर उन्हें उचित प्रशिक्षण और संसाधन मिलें तो वे सफल गृह उद्यम स्थापित कर सकते हैं।

छोटे और सीमांत किसानों के लिए उद्यम के अवसर

खेती के साथ-साथ अतिरिक्त गृह-आधारित व्यवसाय करने से किसानों की आय बढ़ सकती है।

कृषि आधारित गृह-उद्यम

उद्यम का नाम	मुख्य गतिविधियाँ	संभावित लाभ/विशेषताएँ
बकरी पालन	मांस, दूध उत्पादन, प्रजनन हेतु बिक्री	कम लागत, कम स्थान में लाभकारी व्यवसाय
मुर्गी पालन (ब्रोइलर/लेयर)	अंडा एवं मांस उत्पादन	शीघ्र लाभ, बाजार में निरंतर मांग
मछली पालन	तालाब या टंकी में मत्स्य उत्पादन	प्रति वर्ष उच्च आय की संभावना
जैविक सब्जी उत्पादन	रासायन मुक्त सब्जियों की खेती	स्थानीय और शहरी बाजार में मांग, स्वास्थ्य लाभ
बीज उत्पादन व पैकेजिंग	प्रमाणित बीज तैयार करना और बेचने हेतु पैकेजिंग	उच्च मूल्य पर बिक्री संभव, KVK/कंपनियों से सहयोग
खाद्य प्रसंस्करण	गुड़, दलिया, सूखे फल, अचार, पापड़ आदि का निर्माण	लंबे समय तक रखने योग्य, अधिक मूल्य पर बिक्री
एग्रो-टूरिज्म	ग्रामीण जीवन, जैविक खेती, पशुपालन का अनुभव पर्यटकों को देना	नई अवधारणा, शहरी लोगों में रुचि, अतिरिक्त आय स्रोत

प्रमुख गृह-उद्यम विकल्प युवाओं के लिए

व्यवसाय	अनुमानित लागत	संभावित लाभ
मशरूम उत्पादन	रु.10,000-15,000	रु.30,000 तक/बैच
मधुमक्खी पालन	रु.25,000	रु.50,000/साल
सब्ज़ी नर्सरी	रु.5,000-रु. 10,000	रु.20,000/सीजन
जैविक खाद	रु.10,000	रु.25,000/3 महीने
बकरी पालन (2 मादा, 1 नर)	रु.20,000-30,000	रु.50,000-रु.80,000/वर्ष
मुर्गी पालन (100 ब्रॉयलर)	रु.15,000-20,000	रु.30,000/45 दिन
दूध कलेक्शन/डेयरी यूनिट	रु. 20,000-50,000	
	रु.5,000-रु.15,000/माह	

सरकारी योजनाएं

* प्रधानमंत्री मुद्रा योजना * स्किल इंडिया मिशन
* आत्मनिर्भर भारत अभियान
* स्टार्टअप इंडिया

फायदे

* जोखिम का बँटवारा (खेती पर निर्भरता घटती है)
* समय का सदुपयोग (खाली समय में कार्य)
* पारिवारिक श्रम का उपयोग

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौती	संभावित समाधान
पूंजी की कमी	मुद्रा लोन, SHG बैंक लिंकेज
विपणन की समस्या	डिजिटल प्लेटफॉर्म, मेलों में भागीदारी
प्रशिक्षण की कमी	KVK/ITI/NGO प्रशिक्षण कार्यक्रम
समाजिक बाधाएं	महिला SHGs की सक्रियता, पंचायतों का सहयोग
संसाधनों की जानकारी का अभाव	सूचना केंद्र, मोबाइल ऐप, कृषि विज्ञान केंद्र

प्रशिक्षण और समर्थन की भूमिका

गृह उद्यमिता को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षण, मार्गदर्शन और फॉलो-अप सहायता की आवश्यकता होती है। इसमें कृषि विज्ञान केंद्रों, स्वयं सहायता समूहों, गैर-सरकारी संगठनों (NGO) और जिला प्रशासन की अहम भूमिका होती है।

KVK द्वारा दी जाने वाली सेवाएं

* व्यवसाय-आधारित प्रशिक्षण (अचार निर्माण, मशरूम उत्पादन आदि)
* डेमोंस्ट्रेशन यूनिट की स्थापना
* किसानों और महिलाओं के लिए एक्सपोजर विजिट
* मार्केटिंग टिप्स और हैंडहोल्डिंग

सफल गृह उद्यमियों की प्रेरणादायक कहानियाँ

* **श्रीमती गीता सिंह, ग्राम-मरहा (बस्ती):** के.वी.के. बस्ती से खाद्य प्रसंस्करण का प्रशिक्षण लेने के बाद अचार और पापड़ बनाकर गांव में ही बिक्री शुरू की। आज वह हर माह रु. 10,000 से अधिक कमा रही हैं और 5 अन्य महिलाओं को रोजगार दे रही हैं। * **श्री जमुना प्रसाद, ग्राम-पुरैना खास:** बेरोजगार युवा थे। के.वी.के. बस्ती से मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण लेकर खुद की यूनिट शुरू की। अब लोकल होटल और रिटेल स्टोर्स को मशरूम की आपूर्ति कर रु.40,000 प्रति माह कमा रहे हैं।

निष्कर्ष

गृह उद्यमिता एक व्यवहारिक, सशक्त और आत्मनिर्भरता से भरपूर रास्ता है जो ग्रामीण भारत की तस्वीर बदल सकता है। यदि सरकार, सामाजिक संस्थाएं और प्रशिक्षण केंद्र साथ मिलकर कार्य करें तो महिलाएं, युवा और किसान अपने गांव में रहते हुए ही आर्थिक, सामाजिक और मानसिक रूप से सशक्त बन सकते हैं। "गांव में रोजगार, घर में कारोबार" की भावना को साकार करने का समय अब आ गया है। गृह उद्यमिता न केवल आमदनी का जरिया है, बल्कि यह ग्रामीण विकास की नई दिशा भी है।

मैंथाल मिंट आधारित टिकाऊ खेती में ड्रोन द्वारा फसल की निगरानी एवं छिड़काव की तकनीक

✍दीपचंद निषाद (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्व विद्यालय जौनपुर (उ. प्र.)
✍शिवम् श्रीवास्तव (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्व विद्यालय अयोध्या (उ. प्र.)
✍संदीप कुमार (शोध छात्र) सस्य विज्ञान विभाग वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्व विद्यालय जौनपुर (उ. प्र.)
✍आदित्य भूषण श्रीवास्तव कृषि अर्थशास्त्र विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या
✍कार्तिकेय श्रीवास्तव (शोध छात्र) जेनेटिक्स एंड प्लांट ब्रीडिंग विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल वि.वि. जौनपुर (उ. प्र.)

परिचय : कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है, जिस पर देश की लगभग 60% जनसंख्या निर्भर है। आधुनिक तकनीकों का उपयोग कृषि उत्पादन को बढ़ाने और किसानों की जीवनस्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। ऐसी ही एक आधुनिक तकनीक है ड्रोन, जिसका इस्तेमाल कृषि कार्यों में किया जाता है। यह तकनीक न केवल फसल की निगरानी और प्रबंधन में सहायक है, बल्कि समय और श्रम की भी बचत करती है। यह विभिन्न प्रकार के सेंसर और कैमरों से लैस होता है, जो इसे कृषि गतिविधियों हेतु आदर्श बनाता है। ड्रोन का उपयोग कृषि क्षेत्र में डेटा संग्रहण, फसल निगरानी और छिड़काव (स्प्रेइंग) के लिए किया जाता है।

कृषि में ड्रोन का महत्व : ड्रोन का उपयोग किसी भी वनस्पति या फसल के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए किया जाता है, खरपतवारों, संक्रमणों और कीटों से प्रभावित क्षेत्र और इस आकलन के आधार आवश्यक रसायनों का सही मात्रा में उपयोग किया जाता है, जिससे किसानों की समग्र लागत को कम किया जा सकता है। उन्नत रिमोट सेंसिंग क्षमताओं वाले ड्रोन का उपयोग फसलों की निगरानी करने, कीटनाशकों और उर्वरकों का छिड़काव करने, सिंचाई प्रणाली का प्रबंधन करने, उपज की भविष्यवाणी करने आदि के लिए किया जाता है। मिट्टी में नमी की मात्रा, क्षेत्र एवं मिट्टी की स्थिति, पोषक तत्वों की उपलब्धता और मिट्टी की उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए उनका उपयोग किया जाता है।

ड्रोन द्वारा फसल की निगरानी : फसल निगरानी, बीज बोने से लेकर कटाई के समय तक फसल की प्रगति का पर्यवेक्षण है। इसमें सही समय पर खाद देना, कीटों के हमले की जांच करना और मौसम की स्थिति के प्रभाव की निगरानी करना शामिल है। फसल की निगरानी ही एकमात्र तरीका है, जिसके द्वारा मौसम में होने वाले परिवर्तन एवं उसके दुष्प्रभाव को समझने और योजना बनाने में मदद करती है।

* इन्फ्रारेड कैमरों से खेत का निरीक्षण करके ड्रोन प्रभावी फसल निगरानी में मदद करते हैं और फसल की वास्तविक जानकारी एवं पौधों की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इस तकनीक से न केवल श्रम की बचत होती है, बल्कि समय की बचत भी होती है।

* इसके द्वारा त्रुटि की संभावना कम होती है। ड्रोन उसी काम को कुछ ही घंटों में कर सकता है। इन्फ्रारेड मैपिंग के साथ ड्रोन मिट्टी और फसल दोनों के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी एकत्र कर करना आसान बनाते है। कीटनाशकों और अन्य रसायनों के अति प्रयोग से बचा जा सकता है।

* ड्रोन कीटों के हमलों के सूक्ष्म संकेतों का पता लगा कर और हमले की डिग्री और सीमा के बारे में सटीक डेटा प्रदान करते हैं। इससे किसानों को उपयोग किए जाने वाले रसायनों की आवश्यक मात्रा की गणना करने में मदद मिलती है जो फसलों को नुकसान पहुंचाने से बचाते है।

* ड्रोन से फसलों की निगरानी करने के लिए विभिन्न तरीके के सेंसर का उपयोग किया जाता है, जिससे की फसल से उत्पादन में वृद्धि हो सके।

ड्रोन में लगे मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरे विभिन्न तरंग दैर्ध्यों पर तस्वीरें खींचते हैं, जिससे पौधों के स्वास्थ्य का मूल्यांकन किया जा सकता है।

कृषि ड्रोन द्वारा स्प्रेइंग : कृषि-ड्रोन का उपयोग रसायनों के छिडकाव के लिए करते हैं पारंपरिक तरीकों की तुलना में बहुत कम समय में फसलों पर उर्वरकों और कीटनाशकों का छिडकाव संभव हो जाता है। मिट्टी और लगाई गई फसल के स्वास्थ्य की निगरानी के लिए लगातार सर्वेक्षण आवश्यक है। प्रेइंग ड्रोन मुख्यतः 6 रोटर वाले होते है जो की ड्रोन को अधिक पेलोड उठने में मदद करते है, कृषि में उपयोग होने वाले एग्रीकल्चर ड्रोन का भार 15 किलो से लेकर 30 किलो के बीच में हो सकता है। ज्यादातर कृषि ड्रोन बैटरी से ऑपरेट होते है, जो की एक बार चार्ज होने पर समान्तयः 15 से 20 मिनट का बैकअप प्रदान करते है।

आमतौर पर ड्रोन में उपयोग आने वाले सभी सेंसर एक स्प्रेइंग ड्रोन में भी होते है लेकिन इन ड्रोन में स्प्रेइंग की दृष्टि के कुछ विशेष सेंसर और उपकरण लगे होते है जो की निम्न प्रकार है।

1. उड़ान नियंत्रक उपकरण और सेंसर 2. द्रव नली पाइप 3. बीएलडीसी मोटर 4. फ्लैट फैन नोजल 5. कीटनाशक टैंक 6. लैंडिंग गियर 7. फोल्डेबल प्रोपेलर 8. लीपो बैटरी

खेती में स्प्रेइंग ड्रोन का उपयोग और उसके आकर्षक लाभ : मेंथा (मेंथाल मिंट) की खेती भारतीय कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसका उपयोग औषधीय और सुगंधित तेलों के उत्पादन में होता है। पुदीना की उच्च गुणवत्ता और बेहतर उत्पादन के लिए सटीक और कुशल प्रबंधन की आवश्यकता होती है। आधुनिक तकनीकों में से एक ड्रोन तकनीक ने मेथा की खेती में नई बहार ला दी है।

उत्पादकता में वृद्धिः ड्रोन तकनीक का उपयोग समय बचाने में सहायक होता है, क्योंकि यह बड़ी तेजी से बड़े क्षेत्रों को कवर कर सकता है। स्प्रेइंग ड्रोन 7 मिनट में 1 एकड खेत में स्प्रे करने के लिए सक्षम है, यह आमतौर पर एक बैटरी सेट पर 2 एकड खेत में स्प्रेइंग कर सकता है। स्प्रेइंग ड्रोन की मदद से आप पूरे क्षेत्र में सटीक स्प्रे कर सकते है, जिससे की फसल को उचित नुट्रिएंट दिया जा सके और फसल में वृद्धि हो।

बेहतर गुणवत्ता : सटीक निगरानी और प्रेसिजन स्प्रेइंग से फसल की गुणवत्ता में सुधार होता है. ड्रोन अपने नेविगेशन प्रणाली की मदद से दिए गए खेत में सटीक स्प्रे, समान अनुपात अनुसार करता है, जिससे फसल की उपज बेहतर होती है।

श्रम लागत में कमी : ड्रोन के उपयोग से मैन्युअल श्रम की आवश्यकता कम होती है, ड्रोन तकनीकी के उपयोग से आप बिना खेतो में प्रवेश किये हुए एक उचित दूरी बनाकर स्प्रे कर सकते है। ड्रोन के मदद से आप पूरे दिन में 15 एकड़ खेत को स्प्रे कर सकते है, जबकि यह मैन्युअल श्रम में संभव नहीं है और सटीक स्प्रेइंग तकनीक से रसायनों का उपयोग कम होता है. जिससे लागत कम होती है और पर्यावरण पर कम प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरणीय लाभ : ड्रोन स्प्रेइंग से रसायनों का न्यूनतम उपयोग होता है, जिससे मिट्टी और जल का प्रदूषण कम होता है, और ड्रोन स्प्रेइंग में पानी का कम उपयोग होता है, जो पर्यावरण हेतु फायदेमंद है। स्प्रेइंग ड्रोन एक एकड़ खेत को स्प्रे करने हेतु महज 10 लीटर पानी की आवश्यकता होती है, किन्तु मैन्युअल स्प्रेइंग में 20 लीटर वाली टंकी का उपयोग किसान 4 से 5 बार करता है।

सुरक्षा में सुधारः ड्रोन के उपयोग से किसानों और श्रमिकों का कीटनाशकों और अन्य हानिकारक रसायनों के संपर्क में आने का खतरा कम होता है, जिससे उनकी स्वास्थ्य सुरक्षा बढ़ती है। स्प्रेइंग ड्रोन में आप रसायन को टंकी में भरने के बाद आप उसे दूर से ऑपरेट कर सकते है, जिससे की आप सीधा कीटनाशकों के संपर्क में आने से बच सकते है। ड्रोन के कृषि क्षेत्र में उड़ाने से पहले आपको एक सुरक्षित स्थान की जरुरत होती है, जहां से आप उसे टेकऑफ और लैंड कर सके।

ड्रोन छिड़काव और पारंपरिक छिड़काव

ड्रोन छिड़काव	पारंपरिक छिड़काव
त्वरित, आसान और अत्यधिक कुशल।	समय लेने वाली, श्रमसाध्य और दक्षता कौशल।
न्यूनतम परिचालन जोखिम, संचालित करने के लिए सुरक्षित।	कीटनाशक के संपर्क का खतरा।
कम पानी की खपत (10 लीटर प्रति एकड़)।	अधिक पानी की खपत (80 लीटर प्रति एकड़)।
सटीक छिड़काव और समान कवरेज।	केवल छोटे क्षेत्रों को ही कवरेज।
कीट रोग के प्रकोप के दौरान बड़े क्षेत्रों को कवर किया जा सकता है।	अधिक छिड़काव समय के लिए।
ऊबड़-खाबड़ भूभाग, खड़ी ढलानों, गीले कीचड़ भरे खेतों के लिए अनुकूल।	निश्चित ऊंचाई तक ही कुशलतापूर्वक संचालित किया जा सकता है।

ड्रोन द्वारा छिड़काव करते समय ध्यान देने वाली बातें * ड्रोन द्वारा छिड़काव करने से पहले कुछ बातो का अवश्य ध्यान रखे जिससे की आप फसल पर सटीक स्प्रे कर पाए और ड्रोन को भी कोई हानि न हो। * केवल ग्रीन जोन में ही उड़ान भरें। * उच्च-तनाव विद्युत लाइनों या सेल टावरों के पास ड्रोन न उड़ाएं। * सुनिश्चित करें कि ऑपरेटर ड्रोन संचालन और दोनों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित हैं। * स्प्रेइंग ड्रोन को उड़ाने से पहले उसको कैलिब्रेट करे और सभी पार्ट्स को अच्छे से चेक करें। * टेकऑफ और लैंडिंग, टैंक मिश्रण संचालन के लिए स्थान की पुष्टि करें। * सुरक्षित संचालन के लिए आने वाली बाधाओं (दीवारें, पेड़, बिजली की लाइनें आदि) की जांच करें। * ड्रोन ट्रीटमेंट और नॉनटारगेट के बीच कम से कम बफर जोन (10 मीटर) स्थापित करें। * मानव और पर्यावरण में बहाव को कम करने के लिए एंटी-ड्रिफ्ट नोजल का उपयोग करें।

छिड़काव करने से पहले ध्यान देने वाली बातें * सुरक्षा की दृष्टि से लेबल में दिए गए दिशा निर्देशों को ध्यान से पढ़ें। * एक से अधिक बार छिड़काव करने हेतु नोजल को बार-बार साफ करें, जिससे की छिड़काव एक समान हो। * अनुकूलित बूंद हेतु उचित दबाव अपनाएं। * छिड़काव करने के लिए हमेशा साफ पानी का ही इस्तेमाल करे जिससे की ड्रोन की टंकी में केमिकल के जमने और कचरा फसने की सम्भावना कम हो।

ड्रोन का उपयोग करते समय कीटनाशकों के उपयोग के बारे में क्या करें और क्या न करें - * अगर बैटरी अच्छी स्थिति में नहीं है तो ड्रोन न उड़ाएं। * ड्रोन को दृश्य सीमा से बाहर न उड़ाएं। * दिन के सबसे गर्म समय (सुबह 11.00 बजे से दोपहर 2.00 बजे तक) के दौरान छिड़काव न करें। * फूल आने की अवस्था के दौरान सुबह (9.00-11.00 बजे) ड्रोन का उपयोग करके कीटनाशक का छिड़काव न करें। * अधिक तेज हवा की गति पर छिड़काव न करें।

छिड़काव करने के बाद ध्यान देने वाली बातें :- * स्प्रे की गई फसल में जाने से बचें। * लोगों को याद दिलाने के लिए स्प्रे क्षेत्र में चेतावनी संकेत स्थापित करें। * कीटनाशक के स्प्रे करने के तुरंत बाद उपयोग की गई बोतल को कहीं भी न फेंके, उसे एक निश्चित स्थान पर जाकर नष्ट कर दे। * स्प्रे करने के तुरंत बाद ड्रोन को अच्छी तरह से साफ करे और टंकी को साफ पानी से अच्छी तरह धोए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सूरज पासवान (शोध छात्र)
एम.एल. मीना (प्रोफेसर एवं विभाग प्रमुख)
पकंज कुमार, विशाल सिंह (शोध छात्र)
उद्यानिकी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ. प्र.)

तोरई की वैज्ञानिक खेती, कीट, रोग प्रबंधन एवं बीज उत्पादन

परिचय- तोरई कुष्माण्ड वर्ग की एक फसल है इसका वैज्ञानिक नाम-Luffa Cylindrica Roem है। तोरई बहुत हल्की सब्जी है और मरीजों के लिये बहुतायत से प्रयोग होती है। तोरई की सब्जी शीतल और पित्तनाशक होती है। ग्रीष्मकाल में खाई जाने वाली यह प्रमुख सब्जी है। यह विटामिनों से भी परिपूर्ण है यह विटामिन ए और सी का अच्छा स्रोत है। इसका उपयोग पीलिया, मधुमेह, रक्त शोधन और त्वचा रोगों के इलाज में किया जाता है। भारत में, यह उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, दिल्ली, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान और झारखंड इत्यादि राज्यों में उगाया जाता है।

जलवायु: गर्म और आर्द्र जलवायु इसकी वृद्धि और विकास के लिए अनुकूल है। फसलों के लिए इष्टतम तापमान 25-27 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त रहता है।

भूमि: तोरई की फसत भी सभी प्रकार की मिट्टी में उत्पन्न की जा सकती है लेकिन बलुई दोमट मिट्टी में उगाने पर यह सबसे अच्छे परिणाम देता है। मिट्टी का पीएच मान 6.5-7.0 के बीच हो।

भूमि की तैयारी: तोरई की फसल के लिये भी भूमि एक बार किसी मिट्टी पलट हल से जुताई कर 3-4 बार देशी हल से जोतनी चाहिये और पटेला चलाकर भूमि को समतल कर देना चाहिये। भूमि की तैयारी के समय ही उसमें पर्याप्त मात्रा में 250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिये।

उन्नत किस्में: तोरई की मुख्यतः निम्नलिखित किस्में उपलब्ध हैं-

पूसा चिकनी - वसंत-ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं के लिए उपयुक्त।

पूसा सुप्रिया- ग्रीष्म और खरीफ ऋतुओं के लिए उपयुक्त।

पूसा स्नेहा- लंबी दूरी के परिवहन के लिए उपयुक्त।

फुले प्राजक्ता- ग्रीष्म और खरीफ ऋतुओं के लिए उपयुक्त।

राजेंद्र नेनुआ- फल मक्खी और फल सड़न रोग प्रतिरोधी।

काशी दिव्या- यह चूर्णिल फफूंद, कोमल फफूंद और एन्थ्रेक्नोज के प्रति सहनशील है।

कल्याणपुर हरी चिकनी- यह वर्षा ऋतु के लिए उपयुक्त है।

आनंद तोरई चिकनी-1- वर्षा ऋतु के लिए उपयुक्त।

आनंद तोरई-2-कम अवधि वाली उच्च उपज देने वाली किस्म। फल सघन, हरे और पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।

स्वर्ण प्रभा - यह चूर्णिल फफूंद, कोमल फफूंद के प्रति सहनशील है।

खाद तथा उर्वरक: नाइट्रोजन 30-40 किग्रा, फॉस्फोरस 25-30 किग्रा, पोटाश 30-40 किग्रा प्रति हेक्टर। नाइट्रोजन की 1/3 एवं फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बोने की नालियों या थालों में बीज की बोआई से पहले मिट्टी में मिलाते

हैं। नाइट्रोजन का 1/3 भाग पौधों में 4-5 पत्तियाँ आने पर तथा शेष 1/3 भाग फूल आने के समय पौधों के चारों ओर टापड्रेसिंग द्वारा देते हैं।

बोआई का समय: तोरई की फसल मैदानी भागों में वर्ष में दो बार ली जाती है। बोने का आदर्श समय मध्य फरवरी से मार्च का महीना और दूसरी बार मध्य मई से जुलाई का महीना है। पहाड़ों पर तोरई के बीज अप्रैल से जून तक बोये जाते हैं।

बीज की मात्रा: खरीफ की फसल में कम तथा जायद में अधिक बीज दर प्रयोग करते हैं। आमतौर बीज की मात्रा 4-5 किग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रयोग करना चाहिये।

बोआई का ढंग: तोरई की बुवाई गड्ढ़ों में, नालियों में या क्यारियों में की जाती हैं।

फसल अन्तरण: ग्रीष्म फसल 2×0.5 मी., वर्षा ऋतु फसल 3म0.75 मी. आमतौर पर बरसात वाली फसल की बोआई के लिये 3 मीटर की दूरी पर कतारें बनाई जाती हैं। इन कतारों पर लगभग 75 सेंमी. की दूरी पर छोटे-छोटे थाले बनाकर इनमें बीज बोये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में चूंकि सिंचाई की काफी आवश्यकता पड़ती है, अतः पानी के उपयोग की दृष्टि से नालियों बनाकर इनके किनारे बीज बोना अच्छा होता है। इसके लिये पहले 2 मीटर की दूरी पर 50 सेमी. चौड़ी नालियों बनाई जाती हैं। इन नालियों के दोनों किनारों पर बीज इस प्रकार बोते हैं कि दो पौधों की निकटतम दूरी 0.5 मीटर होती है। एक थाले में ढाई सेमी. के फासले पर 3-4 बीज बोने चाहिये।

सिंचाई : पानी की आवश्यकता मौसम और भूमि की किस्म पर निर्भर करती है। गर्मी या शुष्क मौसम में 7-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। बरसात में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्षा पर्याप्त न होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिये।

निकाई-गुड़ाई: खेत को खरपतवार रहित रखने के लिये समय-समय पर निराई करते रहना चाहिये।

सहारा देना: शाखादार सूखी पेड़ों की डाली पर या बॉस की पट्टियों का बाना बनाकर बेलों को चढ़ाने से बरसात की फसल में काफी लाभ होता है। इससे फलों को गीली मिट्टी के सम्पर्क में आकर सड़ने से बचा लिया जाता है तथा तुड़ाई में भी सुविधा होती है। ग्रीष्म ऋतु की फसल प्रायः जमीन पर ही फैलने देते हैं।

कीट तथा उनकी रोकथाम

लौकी का लाल भृंग: यह लाल रंग का उड़ने वाला कीट है। पौधों के उगते ही ये उनकी पत्तियों को खाना आरम्भ कर देते हैं। मैलाथियान 5 प्रतिशत धूल 30-35 किग्रा प्रति है0 का बुरकाव या 50 प्रतिशत घुलनशील धूल के 0.2 प्रतिशत घोल 200 ग्राम दवा 100 लीटर पानी में का छिड़काव करना चाहिये।

माहू : इसकी रोकथाम काफी हद तक ती उपरोक्त कीटनाशक दवाओं से ही हो जायेगी किन्तु यदि आक्रमण अधिक है तो साइपरमेथ्रिन 0.15 प्रतिशत 150 मि. लीटर दवा 100 लीटर पानी में का छिड़काव करना चाहिये।

फल की मक्खी : वयस्क मक्खी कुछ पीले-लाल रंग की होती है जो फलों में अण्डे देती है। कभी-कभी 50 प्रतिशत तक फल इससे ग्रसित हो जाते हैं। रोग ग्रसित फलों को इकट्ठा करके जमीन में गहरा गाढ़ देना चाहिये। जमीन में एल्ड्रीन 5 प्रतिशत धूल 20-25 किग्रा प्रति है0 का बुरकाव करके ऊपरी सतह पर अच्छी तरह मिला देना चाहिये।

बीमारियाँ तथा रोकथाम

चूर्णी फफूँदी: इस बीमारी का आक्रमण पत्तियों एंव तने पर होता है पहले पुरानी पत्तियों पर सफेद रंग के गोल धब्बे उत्पन्न होते हैं जो धीरे-धीरे आकार और संख्या में बढ़?कर पूरी पत्ती पर छा जाते हैं पत्तियों की सतह पर सफेद चूर्ण सा जमा हुआ दिखाई देता है। केराथेन 0.06 प्रतिशत के घोल का तीन सप्ताह के अन्तर पर तीन छिड़काव करें।

रोमिल फफूंदी: पीले से लेकर लाल-भूरे रंग के धब्बे पत्ती की ऊपरी सतह पर तथा बैंगनी रंग के धब्बे पत्ती की निचली सतह पर प्रकट होना इसके मुख्य लक्षण हैं। रोग-ग्रसित पौधों पर लगे फल ठीक से पकते नहीं और फलों में उनका स्वाभाविक रंग भी उत्पन्न नहीं हो पाता है। इण्डोफिल एम. 45 के 0.25 प्रतिशत 250 ग्राम दवा 100 लीटर पानी में घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर तीन बार करें।

मोजेक: इसमें पौधे की वृद्धि रुक जाती है और पत्तियों में सिकुड़न भी हो जाती है। अतः इन्हें मारने के लिये साइपरमेथ्रिन 0.15 प्रतिशत 150 मिली0 दवा 100 लीटर पानी दवा का प्रयोग करते हैं।

फलों को तोड़ना: बुवाई के 55-60 दिन बाद फल कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। पूरी तरह से विकसित कोमल फलों को चाकू से काटकर साप्ताहिक अंतराल पर तुड़ाई करनी चाहिए। रेशे पैदा हो जाने पर सब्जी अच्छी नहीं बनती। अतः बाजार भाव भी कम मिलता है।

उपज: प्रति लताओं में 25 से 30 फल, जबकि प्रति हेक्टेयर 80 से 120 क्विंटल तक उपज प्राप्त होती है।

बीज तैयार करना: बीज लेने के लिये तोरई के शुरू के बड़े आकार के फल लताओं पर छोड़ दिये जाते हैं। इन फलों को पूर्णरूपेण पक जाने पर उन्हें तोड़ लिया जाता है और किसी हवादार स्थान में सूखने के लिये छोड़ दिया जाता है। लगभग एक-डेढ़ महीने बाद फल को चीरकर बीज निकाल लिये जाते है। उन्हें भली प्रकार सुखाकर करके रख दिया जाता है।

जंगल में औषधीय पौधे

आंचल दुबे (शोध छात्रा) वानिकी विभाग, कृषि विभाग संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

डॉ. अलका श्रीवास्तव (सहायक प्राध्यापक) वानिकी विभाग, कृषि विभाग संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

धन्य कुमार (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

उद्देश्य - औषधीय पौधे, जिन्हें औषधीय जड़ी बूटियां भी कहा जाता है, प्रागेतिहासिक काल से ही पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में खोजे और उपयोग किये जाते रहे हैं। पौधे विभिन्न कार्यों के लिए सैकड़ों रासायनिक योगिकों का संश्लेषण करते हैं, जिनमें कीडों, कवकों, रोगों, परजीवियों और शाकाहारी स्तनधारियों से बचाव और सुरक्षा शामिल है। एलोवेरा, हल्दी, तुलसी, काली मिर्च, इलायची, और अदरक इत्यादि जैसे विभिन्न औषधीय पौधों का उपयोग आमतौर पर कई आयर्वेदिक घरेलू उपचारों में किया जाता है और इन्हें गले एवं त्वचा सम्बन्धी विभिन्न बीमारियों से लड़ने में सबसे अच्छा सहायक माना जाता है। विश्वभर में लगभग 80 प्रतिशत लोग अपनी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की जरूरतों के लिए हर्बल अर्थात जड़ी बूटी आधारित दवाओं पर निर्भर हैं। इसी प्रकार, आधुनिक चिकित्सा भी साधरणतया प्रकृति से प्राप्त यौगिकों पर निर्भर करती है।उदहारण के रूप में, 1940 के दशक से अब तक पेश की गई सभी केंसर रोधी दवाओं में से आधी या तो प्राकृतिक उत्पाद हैं या उनके व्युत्पन्न हैं। शोधों से पता चला है कि जब दवा के घटक प्रकृति से लिए जाते हैं और जब दवा के उम्मीदवार आदिवासी ज्ञान पर आधारित होते हैं, तो नई दवा खोजने की सफलता दर अधिक होती है। वैश्विक स्तर पर, आधुनिक चिकित्सा में उपयोग की जाने वाली 25 प्रतिशत दवाएं वर्षावन के पौधों से प्राप्त होती हैं, जिनमें से कई शायद अब भी अज्ञात रहतीं यदि आदिवासी लोगों का पारंपरिक ज्ञान नहीं होता। जंगलों में कई भिन्न भिन्न प्रकार की औषधीय पौधों की प्राप्ति होती है, जिनका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा और आधुनिक दवाइयों में भी किया जाता है, जैसे - तुलसी, अश्वगंधा, गिलोय, ब्राम्ही, अडूसा, आंवला, बेल, पत्थरचट्टा, गुड़मार, हार श्रृंगार, कालमेघ, निर्गुन्डी, नीम इत्यादि। ये पौधे न केवल सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व रखते हैं अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका का पूर्ण स्रोत भी हैं।

कुछ जटिल एवं सरल रूप से प्राप्त होने पर उपयोग में लाने वाली औषधियों का विवरण -

1. **क्विनिनी** - इसका प्रयोग मलेरिया के इलाज में किया जाता है। यह सिनकोना पेड़ की छाल से प्राप्त होती है, जिसे एंडीज क्रेचुआ लोगों द्वारा पारंपरिक औषधि के रूप में लंबे समय से उपयोग किया जा रहा है।

2.**फिजोस्टिग्माइन** - यह ग्लूकोज के इलाज में प्रयोग की जाती है। यह कैलाबर बीन से प्राप्त होती है, जिसे अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय वनों के स्थानीय लोग उपयोग करते थे।

3.**ट्यूबोंकरीन** - सर्जरी में मांसपेशियों को शिथिल करने के लिए इस औषधि का उपयोग सुचारू रूप से किया जाता है। यह अमेजन वर्षावनों में पाए जाने वाले क्यूरारे लायना से प्राप्त होता है, जिसे मूल रूप से आदिवासी समुदाय के लोग तीरों की नोक पर लगाने के लिए विष के रूप में प्रयोग करते थे।

सरल रूप से प्राप्त होने वाली औषधियां

1. **तुलसी** - सदियों से तुलसी अपने उल्लेखनीय उपचारात्मक गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसे जड़ी बूटियों की रानी की नाम से भी जाना जाता है।यह वायरल संक्रमण, सिर दर्द, अनिद्रा, सर्दी, खांसी, बुखार, श्वसन सम्बन्धी बीमारियों, प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करना और गले की समस्याओं के लिए एक सामान्य घरेलू उपाय और इसके रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी भूमिका अधिक भूमिका होती है।इसको हर्बल चाय के रूप में भी उपयोग में लिया जाता है। कपूर तुलसी से निकाले गए तेल को अधिकतर हर्बल प्रसाधनों में प्रयोग किया जाता है। तुलसी मलेरिया जैसे रोग को भी ठीक करने में सहायता प्रदान करती है।

2. **एलोवेरा** - यह केवल धूप में, अच्छी जल निकासी वाली, सूखी या नम मिट्टी में ही उगता है। इस पौधे का स्वाद गोबर जैसा होता है परंतु फिर भी यहखाने योग्य होता है। एलोवेरा का रस घावों को जल्दी भरने और संक्रमण के जोखिम को कम करने में बेहद उपयोगी होता है। यह त्वचा को जलने ,काटने , कीड़ी घाव के होने को कम करती है। इसके अतिरिक्त त्वचा पर इसके बाहरी उपयोग के अलावा, एलोवेरा का उपयोग आंतरिक उपचार के लिए भी किया जाता है अर्थात इसके जूस का सेवन करने से पुरानी कब्ज, अपर्याप्त भूख, कब्ज की शिकायत, पेट साफ न होना इत्यादि रोगों से राहत मिलती है।

3. **नीम** - यह अपनी एंटीबैक्टीरियल और एंटीफंगल गुणों के लिए जाना जाता है। नीम एक बहुगुणी औषधि है जिसके पेड़ के लगभग सभी भाग विभिन्न बीमारियों के इलाज में उपयोगी होते हैं,इसके पत्तों, छाल, जड़, और निमौली में कई औषधीय गुणों का भंडार होता है, जो त्वचा रोगों, बुखार, और संक्रमण के उपचार में सहायक होते हैं। मधुमेह,कुष्ठ रोग एवं पेट के कीड़ों जैसी बीमारियों के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।इसकी टहनियों को चबाने सभी दाँतो की सफाई में मदद मिलती है।

4. **हल्दी** - हल्दी अपने औषधीय गुणों के कारण पारंपरिक और आधुनिक चिकित्सा में कई प्रकार के उपयोगों के लिए जाने जाती है, जिसमें सूजन कम करना एवं दर्द में राहत , घाव भरना, संक्रमण से बचाव, पाचन में सुधार करना, श्वसन सम्बन्धी समस्याओं (आस्थमा ,एलर्जी, खांसी, सर्दी जुकाम) का इलाज करना, जोड़ों के दर्द में राहत, त्वचा सम्बन्धी विकारों और तंत्रिका सम्बन्धी विकारों (अल्माइजर रोग) के इलाज शामिल हैं।

5. **आंवला** - आंवला का उपयोग पारंपरिक भारतीय चिकित्सा, विशेष रूप से आयुर्वेद में, विभिन्न स्वास्थ्य लाभों के लिए किया जाता है, जिसमें प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करना, पाचन में सुधार करना, त्वचा और बालों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देना और हृदय स्वास्थ्य का समर्थन करना शामिल है। इसमें भरपूर मात्रा में विटामिन सी पाया जाता है। यह एक दर्द निवारक के रूप में भी कार्य करता है।इस सबके अतिरिक्त यह रक्त को साफ करने, पीलिया, हाइपर एसिडिटी , एनीमिया, बवासीर और सांसो की बीमारी इत्यादि में भी अधिक लाभदायक है।

6. **कालमेघ** - कालमेघ (जिसे ग्रीन चिरायता या देसी चिरायता भी कहते हैं) का उपयोग कई औषधीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है, जिसमें यकृत और पित्ताशय की रक्षा, पाचन संबंधी समस्याओं का समाधान, त्वचा रोगों का उपचार, सूजन और दर्द से राहत, जोड़ों के दर्द, सर्दी-जुकाम और बुखार का इलाज शामिल है।

औषधीय पौधों की खेती से होने वाले लाभ -* औषधीय खेती में लागत अन्य फसलों की तुलना में कम आती है। * औषधियाँ खेती में प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान का खतरा कम होता है। * जंगली जानवर भी इन फसलों को नुकसान नहीं पहुंचा पाते हैं।

औषधीय पौधों की खेती करने में आने वाली चुनोतियाँ - * कुछ प्रजातियों की खेती आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं हो सकती है, और खेती किए गए पौधों को कभी कभी निम्न गुणवत्ता वाला माना जाता है, जिससे जंगली कटाई जारी रहती है। * कुछ औषधिय पौधों की अत्यधिक कटाई से उनके विलुप्त होने का खतरा है, जैसे कि लोबेलिया निकोटियानियोलिया। * वनों की कटाई, भूमि कटाव, जलवायु परिवर्तन, बाढ़ और सूखे जैसी समस्याओं के कारण औषधीय पौधों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं। * प्रत्येक औषधीय पौधे के लिए विशिष्ट जलवायु, मिट्टी और पानी की आवश्यकता होती है, और इन अनुकूल परिस्थितियों को खोजना और बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। * औषधीय पौधों के उत्पादों के लिए बाजार की निश्चितता न होना एक बड़ी चुनोती है।बाजार का ज्ञान, मूल्य और मांग की जानकारी का अभाव किसानों को नुकसान में डाल सकता है। * विभिन्न औषधीय पौधों को उचित गुणवत्ता बनाए रखने के लिए विशेष कटाई के बाद की प्रक्रियाओं(जैसे- सुखाना, अलग करना)की आवश्यकता होती है, जो चुनोतीपूर्ण हो सकती है और सही तकनीक का अभाव हो सकता है। * औषधीय पौधों की शुद्धता और सही पहचान के मानक का पालन करना आवश्यक है, खासकर जब विभिन्न पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में उनका उपयोग होता है।

सारांश - स्थानीय औषधीय पौधों का उपयोग आदिवासी संस्कृतियों का हमेशा से हिस्सा रहा है। लेकिन वन क्षेत्र का क्षरण, सामाजिक बदलाव और ग्रामीण- शहरी प्रवासन के कारण नई पीढ़ियां यह पारंपरिक ज्ञान खो रही हैं। राहत की बात यह है कि फोरेस्ट सर्टिफिकेशन(वन प्रमाणन) पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने में मदद कर सकता है और बदले में, नई दवा खोजने की हमारी सम्भावना बढ़ा सकता है।वह प्रमाणन मानक, आदिवासी लोगों के अधिकारों, उनके संसाधनों और पारम्परिक ज्ञान की सुरक्षा में मदद करते हैं।आदिवासी समुदाय से औषधीय पौधों का उपयोग विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए करते आ रहे हैं, जो उनकी सम्रद्ध सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है।औषधीय पौधों के साथ उपचार बहुत सुरक्षित माना जाता है क्योंकि इसके कोई या बहुत कम प्रतिकूल प्रभाव होते हैं। तथ्य यह है कि ये उपचार प्रकृति के साथ तालमेल रखते हैं, जो सबसे महत्वपूर्ण लाभ है। ये औषधीय पौधे न केवल पारंपरिक चिकित्सा के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ग्रामीण समुदायों के लिए आजीविका का स्त्रोत भी हैं। इन पौधों के अत्यधिक कटाई और वनों की कटाई से खतरा है, इसलिए इनका संरक्षण और टिकाऊ उपयोग महत्वपूर्ण है। औषधीय पौधों की रक्षा में सरकार, शोधकर्ताओं, किसानों, स्थानीय समुदायों और उपभोक्ताओं इत्यादि सबकी सक्रिय भूमिका अत्यंत आवश्यक है, जिससे यह अमूल्य संसाधन भविष्य के लिए सुरक्षित रहे।

दलहनों का महत्व

अरुन झा (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

इल्मा इस्लाम अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

इल्मा इस्लाम अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

डॉ. मौसमी सैयद (सहायक प्राध्यापक) बीज प्रौद्योगिकी विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां के लोगों की आहार शैली में विविधता के साथ-साथ संतुलन भी देखने को मिलता है। भारतीय समाज में दालों का विशेष स्थान है। चाहे वह गरीब की थाली हो या अमीर की प्लेट, दाल हर जगह मौजूद होती है। दालें या दलहन फसलें न केवल प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं, बल्कि ये पोषण, पर्यावरण, कृषि और अर्थव्यवस्था में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन ने वर्ष 2016 को ''अंतरराष्ट्रीय दलहन वर्ष'' घोषित किया था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि दलहनों का महत्व केवल भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में स्वीकार किया गया है। इस लेख में हम दलहनों के पोषण, कृषि, आर्थिक, सामाजिक, और पर्यावरणीय महत्व पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

दलहन

दलहन उन पौधों को कहा जाता है जिनके बीजों को सुखाकर दाल के रूप में उपयोग किया जाता है। इन बीजों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर, खनिज और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। भारत में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली दलहन फसलें निम्नलिखित हैं:

चना,अरहर,मूंग,उड़द,मसूर,मटर,राजमा,लोबिया ,कुल्थी

इन फसलों की खेती रबी, खरीफ और जायद दृ तीनों ही मौसमों में की जाती है, जिससे पूरे वर्ष इनके उत्पादन की संभावना बनी रहती है।

पोषण संबंधी महत्व

प्रोटीन का सस्ता स्रोत: भारत की बड़ी आबादी शाकाहारी है। मांसाहारी आहार की अनुपस्थिति में प्रोटीन की आवश्यकता को पूरा करने का सबसे अच्छा विकल्प दालें हैं। दलहनों में 18% से 25% तक प्रोटीन होता है जो शरीर की वृद्धि, मरम्मत और प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए आवश्यक होता है।

खनिज और विटामिन का भंडार: दलहनों में आयरन, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम जैसे खनिजों के साथ-साथ विटामिन बी1, बी6 और फोलिक एसिड भी पाया जाता है। ये तत्व रक्त निर्माण, हड्डियों की मजबूती, मस्तिष्क के विकास आदि में सहायक होते हैं।

उच्च फाइबर सामग्री: दलहनों में घुलनशील और अघुलनशील दोनों प्रकार के फाइबर पाए जाते हैं, जो पाचन क्रिया को बेहतर बनाते हैं, कब्ज की समस्या को दूर करते हैं और कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करते हैं।

डायबिटीज और हृदय रोग में सहायक: कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स के कारण दलहनों का सेवन मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त होता है। यह रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करने में मदद करता है और हृदय रोगों के खतरे को भी कम करता है।

कृषि में महत्त्व

भूमि की उर्वरता में वृद्धि: दलहनी फसलों की जड़ों में पाई जाने वाली नोड्यूल्स (गांठें) में राइजोबियम नामक जीवाणु उपस्थित होते हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर उसे मिट्टी में उपलब्ध कराते हैं। इससे खेत की उर्वरता बनी रहती है और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता घटती है।

फसल चक्र में उपयोगी

दलहन फसलें कम समय में तैयार हो जाती हैं और इन्हें अन्य फसलों के साथ रोटेशन में लिया जा सकता है। यह मिट्टी को आराम देने के साथ-साथ पोषण प्रदान करती हैं।

सूखा प्रतिरोधी फसलें

दलहनी फसलें कम पानी में भी अच्छी उपज देती हैं, जिससे यह वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इनकी खेती सूखा प्रभावित क्षेत्रों में किसानों के लिए वरदान साबित होती है।

कीट एवं रोग नियंत्रण में सहायक

फसल चक्र में दलहन फसलों को शामिल करने से मिट्टी में कीट एवं रोगजनकों का चक्र टूटता है, जिससे अन्य फसलों को भी फायदा होता है।

आर्थिक महत्व

किसानों की आय में वृद्धि: दलहन फसलों की खेती में लागत कम होती है और बाजार में इनकी मांग अधिक होती है। इससे किसानों को बेहतर लाभ मिलता है, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों को।

निर्यात की संभावना

भारत दलहन का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है। लेकिन घरेलू मांग की पूर्ति के लिए अक्सर आयात की आवश्यकता पड़ती है। यदि उत्पादन बढ़ाया जाए तो भारत निर्यातक भी बन सकता है, जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित होगी।

प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा

दलहनों का दाल मिलों में प्रसंस्करण, पैकेजिंग और विपणन रोजगार के नए अवसर उत्पन्न करता है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों को बढ़ावा मिलता है।

सरकारी योजनाएँ एवं समर्थन

भारत सरकार ने दलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं, जैसे:

* राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन
* प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना
* मूल्य समर्थन योजना
* बीज मिनीकिट वितरण योजना
* किसान क्रेडिट कार्ड योजना
* भविष्य की संभावनाएँ और चुनौतियाँ

संभावनाएं

* उन्नत बीजों का विकास
* जैविक दालों की अंतरराष्ट्रीय मांग
* फसल विविधता में विस्तार

चुनौतियां

* उत्पादन में स्थायित्व की कमी * कीट एवं रोगों का प्रकोप * न्यून तकनीकी ज्ञान
* भंडारण व प्रसंस्करण की समस्याएं

दलहन फसलें भारत की कृषि, पोषण, पर्यावरण और आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ हैं। इनका संतुलित उपयोग और प्रबंधन खाद्य सुरक्षा, पोषण सुधार और किसानों की आय बढ़ाने में अत्यंत सहायक हो सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम दलहन उत्पादन को प्राथमिकता दें, आधुनिक तकनीकों का समावेश करें और सरकार की योजनाओं का लाभ उठाकर एक संतुलित और टिकाऊ कृषि प्रणाली की ओर अग्रसर हों।

फसल बीमा: जोखिम प्रबंधन का एक प्रभावी एवं उचित उपाय

आशुतोष (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी
अरुन झा (शोध छात्र)अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

भारत में प्रमुख योजना प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

शुरूआत 2016 में

उद्देश्य: सभी किसानों को कम प्रीमियम पर व्यापक बीमा सुरक्षा देना।

विशेषताएं

* खरीफ फसलों पर 2 प्रतिशत प्रीमियम
* रबी फसलों पर 1.5 प्रतिशत प्रीमियम
* वार्षिक वाणिज्यिक फसलों पर 5 प्रतिशत प्रीमियम
* सरकारी सब्सिडी द्वारा प्रीमियम बोझ कम किया गया है।

परिचय

कृषि एक ऐसा क्षेत्र है जो अनेक प्रकार के जोखिमों से घिरा हुआ है जैसे कि मौसम की अनिश्चितता, कीट एवं रोगों का प्रकोप, बाढ़, सूखा, और बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव। इन जोखिमों के कारण किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसी स्थितियों में 'फसल बीमा' एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में सामने आता है, जो किसानों को नुकसान की भरपाई कर आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है।

फसल बीमा क्या है?

फसल बीमा एक 'वित्तीय सुरक्षा प्रणाली' है, जिसके तहत किसानों को प्राकृतिक आपदाओं, कीटों या रोगों से फसल को हुए नुकसान के लिए मुआवजा प्रदान किया जाता है। इसका उद्देश्य किसानों की आय में स्थिरता लाना और कृषि में निवेश को प्रोत्साहित करना है।

फसल बीमा के प्रकार

उपज आधारित बीमा

यदि किसान की वास्तविक उपज तयशुदा औसत से कम हो जाती है, तो उसे क्षतिपूर्ति दी जाती है।

उदाहरण भारत में 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

मौसम आधारित बीमा

खराब मौसम जैसे कि अत्यधिक वर्षा या सूखे के कारण फसल को हुए नुकसान की भरपाई करता है। इसमें मौसम मापदंड के आधार पर भुगतान किया जाता है।

सूचकांक आधारित बीमा

उपग्रह चित्र या किसी विशेष कृषि सूचकांक के आधार पर नुकसान का आकलन किया जाता है। यह तेज और पारदर्शी प्रक्रिया मानी जाती है।

फसल बीमा के लाभ

आर्थिक सुरक्षा

फसल खराब होने पर मुआवजा मिलने से किसान आर्थिक रूप से सुरक्षित रहता है।

कृषि में निवेश में वृद्धि

बीमा से जोखिम कम होने पर किसान नए तरीके अपनाने में रुचि दिखाते हैं।

ऋण उपलब्धता:

बीमित फसलें बैंकों से ऋण प्राप्त करने में सहायता करती हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थिरता

फसल हानि के बाद भी किसान की क्रय शक्ति बनी रहती है।

यदि किसान की वास्तविक उपज तयशुदा औसत से कम हो

किसान को सुरक्षित आश्वासन

आर्थिक नुकसान की भरपाई होने का एक पक्का एवं सुनिश्चित आश्वासन होता है।

चुनौतिया

जानकारी की कमी :कई किसानों को बीमा योजनाओं के बारे में जानकारी नहीं होती।

दावा निपटान में देरी: सर्वेक्षण और प्रक्रिया में देरी से भुगतान में विलंब होता है।

प्रीमियम दरें :कुछ किसानों को बीमा प्रीमियम भी अधिक लगती है।

भ्रम और विश्वास की कमी: किसानों को बीमा कंपनियों पर भरोसा नहीं रहता।

उपसंहार

फसल बीमा किसानों के लिए जोखिम प्रबंधन का एक मजबूत माध्यम है, जो उन्हें प्राकृतिक आपदाओं और बाजार अस्थिरता के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। हालांकि, इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसकी जागरूकता, पारदर्शिता और प्रभावी कार्यान्वयन कैसे सुनिश्चित किया जाए। यदि सही ढंग से लागू किया जाए, तो यह योजना भारतीय किसानों की आय सुरक्षा और कृषि विकास में क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है।

मानसिक विकारों पर विटामिन डी की प्रभावशीलता

शिखा मौर्या पी.एच.डी. (शोध छात्रा), मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग, सामुदायिक महाविद्यालय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

आयुषी मिश्रा पी.एच.डी. (शोध छात्रा), मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग, सामुदायिक महाविद्यालय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

दिव्या कौशिकी पी.एच.डी. (शोध छात्रा), मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग, सामुदायिक महाविद्यालय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

प्रस्तावना

द लैंसेट साइकियाट्री' में प्रकाशित एक व्यापक डेनिश अध्ययन के अनुसार, नवजात शिशुओं में विटामिन D की कमी को सिजोफ्रेनिया, अवधान आभाव एवं अति-सक्रियता विकार (ADHD) और ऑटिज्म के बढ़ते जोखिम से जोड़ा गया है। अध्ययन में भारत में सामने आई समान नैदानिक चिंताओं का भी उल्लेख किया गया है।

परिचय

विटामिन डी एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है जो मानव शरीर के लिए कई तरह से काम करता है। इसे "सनशाइन विटामिन" भी कहा जाता है, क्योंकि शरीर धूप के संपर्क में आने पर इसे बनाता है।

मानव शरीर में विटामिन डी के कार्य

हड्डियों को मजबूत बनाना: विटामिन डी का सबसे महत्वपूर्ण काम कैल्शियम और फॉस्फोरस को अवशोषित करने में मदद करना है। ये दोनों खनिज हड्डियों के निर्माण और उन्हें मजबूत बनाए रखने हेतु बहुत जरूरी हैं। इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स (नरम हड्डियां) और वयस्कों में ऑस्टियोपोरोसिस(कमजोर, भंगुर हड्डियां) जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

इम्यून सिस्टम को मजबूत करना: विटामिन डी प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में मदद करता है, जिससे शरीर सर्दी, फ्लू और अन्य संक्रमणों से लड़ सकता है।

मांसपेशियों का कार्य: यह मांसपेशियों के सही कामकाज के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से मांसपेशियों में कमजोरी और दर्द हो सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य: विटामिन डी का स्तर मूड को नियंत्रित करने वाले सेरोटोनिन हार्मोन के उत्पादन को प्रभावित करता है। इसकी कमी से अवसाद और मूड स्विंग का खतरा बढ़ सकता है।

अन्य कार्य: यह हृदय स्वास्थ्य, रक्तचाप और सूजन को कम करने में भी भूमिका निभाता है।

विटामिन डी की कमी के मुख्य कारण

* आहार में विटामिन डी युक्त खाद्य पदार्थों की कमी या पर्याप्त मात्रा में सूर्य के प्रकाश का न मिल पाना।

* शरीर विटामिन डी का उचित तरीके से अवशोषण या उपयोग नहीं कर पा रहा है।

* कुछ ही खाद्य पदार्थों में प्राकृतिक रूप से विटामिन D पाया जाता है। अगर आहार में मछली, अंडा, दूध आदि शामिल नहीं हैं, तो विटामिन D की कमी हो सकती है।

* जिन लोगों की त्वचा का रंग गहरा होता है, उनमें मेलानिन

अधिक होता है, जो सूर्य की किरणों को अवशोषित करने में बाधा डालता है। इससे विटामिन D का उत्पादन कम होता है।

* जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, शरीर की त्वचा में विटामिन D बनाने की क्षमता घट जाती है। इसलिए वृद्ध लोगों में इसकी कमी ज़्यादा देखने को मिलती है।

* विटामिन D वसा में घुलनशील होता है। अधिक वसा वाले शरीर में विटामिन ष्ठ वसा कोशिकाओं में जमा हो जाता है और सक्रिय रूप से कार्य नहीं कर पाता।

* गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं में विटामिन D की आवश्यकता अधिक होती है। यदि आहार और धूप से पर्याप्त मात्रा में विटामिन ष्ठ नहीं मिल रहा, तो यह कमी हो सकती है।

द लेंसेट साइकियाट्री की हालिया रिपोर्ट के अनुसार विटामिन डी की कमी के कारण न्यूरो विकास संबंधित समस्या उत्पन्न हो रही है। इस रिपोर्ट में डेनमार्क के 1981-2005 तक के बीच 71,793 बच्चों का ब्लड सैंपल लिया गया है। रिपोर्ट के अनुसार बच्चों में विटामिन डी की कमी से ऑटिज्म और अन्य न्यूरो संबंधित समस्या उत्पन्न हो रही है। शोधकर्ताओं ने 25-हाइड्रॉक्सीविटामिन D [25(OH)D] तथा विटामिन D-बाइंडिंग प्रोटीन के स्तर को मापने के लिए डेनमार्क में वर्ष 1981 से वर्ष 2005 के बीच जन्म लेने वाले 88,764 व्यक्तियों के रक्त के 'ड्राई' नमूनों का उपयोग किया।

अध्ययन में पाए गए निष्कर्षों में पाया गया कि नवजात शिशुओं में विटामिन D का उच्च स्तर सिजोफ्रेनिया (18%), ADHD (11%), और ऑटिज्म (7%) के कम जोखिम से जुड़ा था। अध्ययन में यह भी पता चला कि यदि सभी शिशुओं में विटामिन D का स्तर नमूने के शीर्ष 60% में हो, तो सिजोफ्रेनिया के 15%, ADHD के 9% और ऑटिज्म के 5% मामलों को रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त विटामिन D के जोखिम कम करने के प्रभाव कम आयु से ही देखे जा सकते थे। नवजात शिशुओं में विटामिन D के स्तर और अवसाद या द्विध्रुवी विकार के बीच कोई मजबूत संबंध नहीं पाया गया।

भारत का विटामिन D परिदृश्य: भारत में प्रचुर धूप के बावजूद, अध्ययन दर्शाते हैं कि एम्स ऋषिकेश (वर्ष 2017- वर्ष 2018) में 74% शिशुओं और 85.5% माताओं में विटामिन D की कमी थी और बंगलूरू में किए गए एक अध्ययन में 92.1% नवजात शिशुओं में विटामिन D की कमी पाई गई। वर्ष 2024 के बुंदेलखंड क्षेत्र के अध्ययन में मातृ और नवजात शिशु में विटामिन D के स्तर के बीच एक मजबूत संबंध पाया गया। गर्भवती महिलाओं में विटामिन D का स्तर सीधे तौर पर उनके शिशुओं को प्रभावित करता है। गर्भावस्था के अंतिम चरण में जैविक अनुकूलन के बावजूद, बेहतर धूप या आहार के बिना मातृत्व स्तर की गुणवत्ता में वृद्धि नहीं होती है।

न्यूरोडेवलपमेंटल डिसऑर्डर्स (Neurodevelopmental Disorders): न्यूरोडेवलपमेंटल डिसऑर्डर्स बच्चों में होने वाली कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जो उनके मस्तिष्क के विकास को प्रभावित करती हैं। ये विकार आमतौर पर ब चपन में शुरू होते हैं, अक्सर स्कूल जाने से पहले ही इनके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ये बच्चों की सीखने, संवाद करने और सामाजिक तौर पर बातचीत करने की क्षमता पर असर डालते हैं।

ये विकार कई प्रकार के होते हैं, और हर प्रकार के लक्षण और गंभीरता अलग-अलग हो सकते हैं-

ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर

ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (ASD) एक न्यूरोडेवलपमेंटल कंडीशन है जो व्यक्ति के सामाजिक संपर्क, संचार और व्यवहार को प्रभावित करती है। इसे 'स्पेक्ट्रम' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके लक्षण और उनकी गंभीरता हर व्यक्ति में अलग-अलग हो सकती है। कुछ लोग हल्के लक्षणों का अनुभव करते हैं, जबकि कुछ को अधिक गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। विश्व भर में लगभग 100 में से 1 बच्चा ऑटिज्म से पीड़ित है, हालांकि इसकी व्यापकता अलग-अलग होती है। राष्ट्रीय ट्रस्ट (1999 अधिनियम) ऑटिज्म से पीड़ित व्यक्तियों के लिए कानूनी संरक्षकता और कल्याण सेवाएं प्रदान करता है।

अवधान आभाव एवं अति-सक्रियता विकार (Attention-Deficit/Hyperactivity Disorder- ADHD): अति-सक्रियता विकार एक मस्तिष्क संबंधी स्थिति है, जो ध्यान केंद्रित करना, स्थिर बैठना या क्रियाओं को नियंत्रित करना कठिन बना देती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आपके अंदर 'ध्यान' केंद्रित करने की शक्ति नहीं है, इसका अर्थ है कि आपके ध्यान को नियंत्रित करना जटिल हो सकता है।

सिजोफ्रेनिया: सिजोफ्रेनिया एक गंभीर मानसिक स्वास्थ्य स्थिति है, जो आपके मस्तिष्क के कार्य करने के तरीके को प्रभावित करती है। यह आपके सोचने, याद रखने, महसूस करने और कार्य करने के तरीके को बदल सकती है।

निष्कर्ष: विटामिन डी सिर्फ हड्डियों और दांतों के स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि मस्तिष्क के विकास और न्यूरोलॉजिकल स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। गर्भावस्था से लेकर बचपन तक और किशोरावस्था तक, पर्याप्त विटामिन डी का स्तर बनाए रखना बच्चे के शारीरिक और मानसिक दोनों विकास के लिए आवश्यक है। सूर्य के प्रकाश, आहार और डॉक्टर की सलाह पर सप्लीमेंट्स के माध्यम से विटामिन डी की पूर्ति सुनिश्चित करना एक स्वस्थ न्यूरोडेवलपमेंट के लिए महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ: * अल-गामदी, एस. ए. (2024)। तंत्रिका संबंधी और मानसिक विकारों पर विटामिन डी की प्रभावशीलता। रोग, 12(6), 131।

* एंड्रिया गिउस्टिना एट अल. (2024) । विटामिन डी स्थिति मूल्यांकन और पूरकता पर आम सहमति वक्तव्यः क्यों, कब और कैसे, एंडोक्राइन समीक्षा, 45(5), 625-654।

* पाल, एल. (2025, 25 जुलाई)। विटामिन डी की कमी और तंत्रिका विकास संबंधी समस्याएं।

खरीफ ऋतु में दलहनी फसलों के प्रमुख कीट

धन्य कुमार (शोध छात्र) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

आरती (शोध छात्रा) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

डॉ. अनुराग दुबे (शिक्षण सहायक) अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

खरीफ ऋतु (जून से अक्टूबर) भारत में दलहनी फसलों जैसे उड़द, मूंग, अरहर, कुल्थी आदि की खेती का मुख्य समय होता है। इस मौसम में अधिक तापमान, आर्द्रता एवं वर्षा के कारण वातावरण में कीट-पतंगों की सक्रियता बढ़ जाती है, जिससे इन फसलों में विभिन्न प्रकार के कीटों का प्रकोप देखा जाता है।

ये कीट पौधों की पत्तियों, फूलों, फलियों व जड़ों को नुकसान पहुँचाकर उपज को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। इनमें कुछ कीट जैसे पत्ती खाने वाली इल्ली, फली छेदक कीट, सफेद मक्खी, थ्रिप्स तथा जड़ में छेद करने वाले कीट प्रमुख हैं।

1. पत्ती खाने वाला इल्ली

लक्षण:
* पत्तियों को कंकाल बना देती है।
* खेत में गोलाकार छेद व झुंड में इल्ली देखी जाती है।

नियंत्रण:
* हाथ से अंड समूह व छोटी इल्ली नष्ट करें।
* नीम आधारित कीटनाशी का छिड़काव करें।

2. फूल एवं फली छेदक कीट

लक्षण:
* फूलों में सुराख कर अंदर घुसकर खाता है।

* फली के अंदर दाना खा जाता है, फली में छेद।

नियंत्रण:
* प्रभावित फूलध्फली तोड़कर नष्ट करें।

इंडोक्साकार्ब 14.5 एससी 1 मिलीध्लीटर यास्पिनोसेड 45 एससी / 0.3 मिलीध्लीटर का छिड़काव करें।

3. जड़ में सुराख करने वाला कीट

लक्षण:
* पौधों की वृद्धि रुक जाती है।
* तना खोखला हो जाता है, पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

नियंत्रण:
* खेत में समय पर बुवाई करें।

?बीज उपचार करें (थायोमेथोक्साम 70डब्ल्यूएस / 3 ग्रामध्किग्रा बीज)।

4. सफेद मक्खी

लक्षण:
* पत्तियों से रस चूसती है।
* पत्तियाँ पीली व चिपचिपी हो जाती हैं।
* यह वायरस रोग फैलाने में सहायक है।

नियंत्रण:
* पीली चिपचिपी ट्रैप लगाएं।

* इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल / 0.5 मिली/लीटर छिड़कें।

5. चित्तीदार बीटल (भंडारण कीट)

लक्षण:
* भंडारित दालों में दाना खाकर नुकसान करता है।
* बीजों में छेद बनाता है।

नियंत्रण:
* भंडारण से पहले अच्छी तरह सुखाएं।
* नीम की पत्तियों या नीम तेल का प्रयोग करें।

6. थ्रिप्स

लक्षण: * पत्तियों पर चांदी जैसे धब्बे।
* पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं।

नियंत्रण:
* लम्बे समय तक एक ही फसल न उगाएं (फसल चक्र अपनाएं)। * लेम्बडा सायहेलोथ्रिन 5 ईसी / 1 मिली/लीटर छिड़कें।

समन्वित कीट प्रबंधन के उपाय

* फसल अवशेष नष्ट करें। * फसल चक्र अपनाएं। * नीम आधारित जैव कीटनाशक अपनाएं।
* उचित समय पर बुवाई व सिंचाई करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

मिट्टी में सूक्ष्मजीवों का महत्व

हरि शंकर सिंह (रिसर्च स्कॉलर)
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

अनिल कुमार (प्रोफेसर) (मृदा विज्ञान विभाग), (चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

मिट्टी केवल पेड़-पौधों की जड़ पकड़ने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह जैविक क्रियाओं का एक सक्रिय केंद्र है। इसमें पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव जैसे कि बैक्टीरिया, कवक, एक्टिनोमाइसीट्स, शैवाल और वायरस आदि का बहुत बड़ा योगदान होता है। ये सूक्ष्मजीव मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने, पौधों की वृद्धि में सहायक बनने और पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मृदा को जीवंत रखने का काम करती है साथ ही साथ पौधों को उचित मात्रा मे पोषक तत्वा पहुचाने काम करते हैं। ये सूक्ष्मजीव प्रमुख रूप से दो प्रकार से पाए जाते है, लाभदायक सूक्ष्मजीव मृदा में आवश्यक पोषक तत्व को पौधों मे उपलब्ध कराने मे जबकि हानिकारक सूक्ष्मजीव मृदाजनित, वायु जनित या वीज जनित रोगों को बढावा देते हैं।

सूक्ष्मजीवों का परिचय

सूक्ष्मजीव वे छोटे जीव होते हैं जिन्हें नग्न आंखों से नहीं देखा जा सकता और इन्हें देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। ये जीव अत्यंत सूक्ष्म आकार के होते हैं, लेकिन इनका महत्व जीवन के हर क्षेत्र में अत्यधिक होता है। सूक्ष्मजीवों में प्रमुख रूप से बैक्टीरिया, कवक (फंगी), वायरस, प्रोटोजोआ और शैवाल (एल्गी) शामिल होते हैं। ये जल, मृदा, वायु और हमारे शरीर सहित लगभग हर स्थान पर पाए जाते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव लाभकारी होते हैं, जैसे कि दही जमाने वाले बैक्टीरिया, जैविक खाद बनाने में सहायक फंगी, तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु। वहीं कुछ सूक्ष्मजीव हानिकारक भी होते हैं, जो बीमारियाँ फैलाते हैं जैसे कि टाइफॉइड, हैजा, मलेरिया आदि। इस प्रकार, सूक्ष्मजीवों का संसार अदृश्य होते हुए भी हमारे जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बैक्टीरिया : सर्वाधिक मात्रा में पाए जाने वाले जीव।

कवक: कार्बनिक पदार्थों को विघटित करने में सहायक।

एक्टिनोमाइसीट्स : जैव अपघटन में योगदान।

शैवाल : प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से मिट्टी में पोषक तत्व जोड़ते हैं।

वायरस : पौधों को संक्रमित भी कर सकते हैं, लेकिन कुछ लाभदायक भी हो सकते हैं।

सूक्ष्मजीवों की भूमिकाएं

1. मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना स्वस्थ फसल उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक है। उर्वर मिट्टी वह होती है जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व संतुलित मात्रा में मौजूद होते हैं। मिट्टी की उर्वरता बनाए

रखने के लिए जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट और हरी खाद का नियमित उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि ये मिट्टी की संरचना को सुधारते हैं और सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाते हैं। फसल चक्र अपनाने से भी मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है। इसके अलावा, रासायनिक उर्वरकों का संतुलित और सीमित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए, ताकि मिट्टी की प्राकृतिक संरचना और जीवंतता नष्ट न हो। समय-समय पर मिट्टी की जांच करवाकर उसमें आवश्यक पोषक तत्वों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जिससे सही उर्वरकों का चयन संभव होता है। इस प्रकार के उपायों से मिट्टी की उर्वरता लंबे समय तक बनी रह सकती है और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा मिलता है।

2. जैविक अपघटन

जैविक अपघटन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, फंगी और अन्य जीव कार्बनिक पदार्थों को सरल व उपयोगी तत्वों में विघटित कर देते हैं। यह प्रक्रिया मृत पौधों, पशुओं, पत्तियों, खाद्य अपशिष्ट आदि जैविक पदार्थों पर होती है, जिससे वे धीरे-धीरे सड़-गलकर मिट्टी में मिल जाते हैं। जैविक अपघटन के फलस्वरूप बनने वाला पदार्थ, जैसे कि ह्यूमस और कम्पोस्ट, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होता है। यह न केवल कचरे को कम करने में मदद करता है, बल्कि पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने और स्थायी कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैविक अपघटन एक पर्यावरण अनुकूल प्रक्रिया है, जो प्राकृतिक चक्र को बनाए रखने में सहायक होती है।

3. रोग नियंत्रण

रोग नियंत्रण कृषि, पशुपालन और मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य रोगों के प्रसार को रोकना और उनकी तीव्रता को कम करना होता है। फसलों में रोग नियंत्रण के लिए स्वस्थ बीजों का चयन, फसल चक्र अपनाना, समय-समय पर निराई-गुड़ाई करना और जैविक या रासायनिक कीटनाशकों का संतुलित उपयोग आवश्यक होता है। पशुओं में स्वच्छता, टीकाकरण और पोषण युक्त आहार रोगों से बचाव में सहायक होते हैं। इसी प्रकार मानव स्वास्थ्य में रोग नियंत्रण के लिए स्वच्छ पेयजल, संतुलित आहार, नियमित टीकाकरण और व्यक्तिगत स्वच्छता अत्यंत आवश्यक है। यदि रोग नियंत्रण के उपाय समय पर किए जाएं, तो न केवल जीवन की गुणवत्ता बेहतर होती है, बल्कि उत्पादन और कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है। कुछ मिट्टी के सूक्ष्मजीव हानिकारक कीटाणुओं को नियंत्रित करते हैं, जैसे ट्राइकोडर्मा कवक पौधों की जड़ों को रोगों से बचाते हैं। बायोकंट्रोल एजेंट्स के रूप में उपयोग होने वाले सूक्ष्मजीव जैविक खेती में बहुत लोकप्रिय हैं।

4. पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देना

पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त देखभाल, पोषण और पर्यावरणीय परिस्थितियों का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। पौधों को अच्छी तरह बढ़ने के लिए उपजाऊ और भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता होती है, जो उनकी जड़ों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान कर सके। साथ ही, पर्याप्त धूप पौधों के प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए जरूरी होती है, जिससे वे अपना भोजन स्वयं बना पाते हैं। पौधों को न तो बहुत अधिक और न ही बहुत कम पानी देना चाहिए; सिंचाई हमेशा मिट्टी की नमी को देखकर करनी चाहिए। इसके अलावा, जैविक खाद और उर्वरकों जैसे गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट या हक्ष मिश्रण का संतुलित उपयोग पौधों को आवश्यक पोषक तत्व देता है और उनकी वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। समय-समय पर खरपतवार हटाना और मिट्टी को ढीला करना भी पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन मिलने में मदद करता है। रोगों और कीटों से बचाव के लिए प्राकृतिक कीटनाशकों का प्रयोग करना बेहतर होता है। इन सभी उपायों को अपनाकर पौधों की वृद्धि को प्रभावी ढंग से बढ़ाया जा सकता है।

आधुनिक कृषि में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

1. **जैव उर्वरक:** रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में जैव उर्वरकों का प्रयोग बढ़ रहा है। इसमें राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, और ब्लू-ग्रीन शैवाल प्रमुख हैं।
2. **जैव कीटनाशक:** बैसिलस थूरिंजिनेसिस जैसे बैक्टीरिया कीटनाशकों के रूप में कार्य करते हैं। ये पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं और रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करते हैं।
3. **मिट्टी की संरचना और जल संरक्षण:** सूक्ष्मजीवों द्वारा निर्मित जैविक पदार्थ मिट्टी को बांधने में मदद करते हैं। इससे मिट्टी क्षरण कम होता है और जलधारण क्षमता बढ़ती है।

निष्कर्ष

मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव कृषि और पर्यावरण दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये ना केवल मिट्टी की उर्वरता बनाए रखते हैं, बल्कि पौधों को रोगों से बचाने, उनकी वृद्धि को प्रोत्साहित करने और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने में भी सहायक होते हैं। आधुनिक विज्ञान में भी अब इनका महत्व समझा गया है और जैविक खेती में इनका बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है।

मक्का की वैज्ञानिक तरीके से खेती कर किसान कर सकते हैं अच्छा उत्पादन

अंकित शर्मा शोध छात्र (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग) कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

कुलदीप कुमार विश्वकर्मा (जे.आर.एफ.) फसल अनुसंधान केंद्र, मसौधा अयोध्या (उ.प्र.)

अम्बरीश प्रताप सिंह पी.एच.डी. स्कॉलर (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग) रामा विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

मक्का, एक प्रमुख खाद्य फसल हैं, जो मोटे अनाजो की श्रेणी में आता है। इसे भुट्टे की शक्ल में भी खाया जाता है।

भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर उँचाई वाले पहाडी क्षेत्रो तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है तथा बलुई, दोमट मिट्टी मक्का की खेती के लिये बेहतर समझी जाती है। मक्का खरीफ ऋतु की फसल है, परन्तु जहां सिचाई के साधन हैं वहां रबी और खरीफ की अगेती फसल के रूप मे ली जा सकती है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का बहुत अच्छा स्रोत है। यह एक बहपयोगी फसल है व मनुष्य के साथ-साथ पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव भी है तथा औद्योगिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है।

चपाती के रूप मे, भुट्टे सेंककर, मधु मक्का को उबालकर कॉर्नफलेक्स, पॉपकार्न, लइया के रूप मे आदि के साथ-साथ अब मक्का का उपयोग कार्ड आइल, बायोफयूल के लिए भी होने लगा है। लगभग 65 प्रतिशत मक्का का उपयोग मुर्गी एवं पशु आहार के रूप मे किया जाता है। साथ ही साथ इससे पौष्ठिक रूचिकर चारा प्राप्त होता औद्योगिक दृष्टि से मक्का मे प्रोटिनेक्स, चॉक्लेट पेन्ट्स स्याही लोशन स्टार्च कोका-कोला के लिए कॉर्न सिरप आदि बनने लगा है। बेबीकार्न मक्का से प्राप्त होने वाले बिना परागित भुट्टों को ही कहा जाता है।

जलवायु एवं भूमि: मक्का उष्ण एवं आर्द जलवायु की फसल है। इसके लिए ऐसी भूमि जहां पानी का निकास अच्छा हो उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी: खेत की तैयारी के लिए पहला पानी गिरने के बाद जून माह मे हेरो करने के बाद पाटा चला देना चाहिए। यदि गोबर के खाद का प्रयोग करना हो तो पूर्ण रूप से सड़ी हुई खाद अन्तिम जुताई के समय जमीन मे मिला दें। रबी के मौसम मे कल्टीवेटर से दो बार जुताई करने के उपरांत दो बार हैरो करना चाहिए।

बुवाई का समय 1. खरीफ :- जून से जुलाई तक। 2. रबी :- अक्टूबर से नवम्बर तक। 3. जायद :- फरवरी से मार्च तक।

कम्पोजिट जातियां-सामान्य अवधि वाली- चंदन मक्का-1

जल्दी पकने वाली- चंदन मक्का-3, अत्यंत जल्दी पकने वाली- चंदन सफेद मक्का-2

बीज की मात्रा

संकर जातियां :- 12 से 15 किलो/हे., **कम्पोजिट जातियां** :- 15 से 20 किलो/हे., **हरे चारे के लिए :-** 40 से 45 किलो/हे., (छोटे या बड़े दानो के अनुसार भी बीज की मात्रा कम या अधिक होती है।)

बीजोपचार: बीज को बोने से पूर्व किसी फंफूदनाशक दवा जैसे थायरम या एग्रोसेन जी.एन. 2.5-3 ग्रा./कि. बीज का दर से उपचारीत करके बोना चाहिए। एजोस्पाइरिलम या पी.एस.बी.कल्चर 5-10 ग्राम प्रति किलो बीज का उपचार करें।

पौध अंतरण

शीघ्र पकने वाली: कतार से कतार-60 से.मी. पौधे से पौधे-20 से.मी.

मध्यम/देरी से पकने वाली : कतार से कतार-75 से.मी. पौधे से पौधे-25 से.मी.

हरे चारे हेतु : कतार से कतार:- 40 से.मी. पौधे से पौधे-25 से.मी.

बुवाई का तरीका: वर्षा प्रारंभ होने पर मक्का बोना चाहिए। सिंचाई का साधन हो तो 10 से 15 दिन पूर्व ही बोनी करनी चाहिये इससे पैदावार मे वृध्दि होती है। बीज की बुवाई मेंड़ के किनारे व उपर 3-5 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए। बुवाई के एक माह पश्चात मिट्टी चढ़ाने का कार्य करना चाहिए। बुवाई किसी भी विधी से की जाय परन्तु खेत मे पौधों की संख्या 55-80 हजार/हेक्टेयर रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा

शीघ्र पकने वाली :- 80 : 50 : 30 (N.P.K)

मध्यम पकने वाली :- 120 : 60 : 40 (N:P:K)

देरी से पकने वाली :- 120 : 75 : 50 (N:P:K)

भूमि की तैयारी करते समय 5 से 8 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत मे मिलाना चाहिए तथा भूमि परीक्षण उपरांत जहां जस्ते की कमी हो वहां 25 कि.ग्रा./हे जिंक सल्फेट वर्षा से पूर्व डालना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक देने की विधी

1. **नत्रजन :-** 1/3 मात्रा बुवाई के समय, (आधार खाद के रूप मे), 1/3 मात्रा लगभग एक माह बाद, (साइड ड्रेसिंग के रूप में)

इनकी पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 5 से.मी. नीचे डालना चाहिए। चुकी मिट्टी मे इनकी गतिशीलता कम होती है, अतः इनका निवेशन ऐसी जगह पर करना आवश्यक होता है जहां पौधो की जड़ें हो।

निराई-गुड़ाई: बोने के 15-20 दिन बाद डोरा चलाकर निंदाई-गुड़ाई करनी चाहिए या रासायनिक निंदानाशक मे एट्राजीन नामक निंदानाशक का प्रयोग करना चाहिए। एट्राजीन का उपयोग हेतु अंकुरण पूर्व 600-800 ग्रा./एकड़ की दर से छिड़काव करें। इसके उपरांत लगभग 25-30 दिन बाद मिट्टी चढावें।

अन्तरवर्ती फसलें: मक्का के मुख्य फसल के बीच निम्नानुसार अन्तरवर्ती फसलें लीं जा सकती हैं :-

मक्का	:	उड़द, बरबटी, ग्वार, मूंग (दलहन)
मक्का	:	सोयाबीन, तिल (तिलहन)

सिंचाई: मक्का के फसल को पुरे फसल अवधि मे लगभग 400-600 mm पानी की आवश्यकता होती है तथा इसकी सिंचाई की महत्वपूर्ण अवस्था पुष्पन और दाने भरने का समय है। इसके अलावा खेत मे पानी का निकासी भी अतिआवश्यक है।

पौध संरक्षण

कीट प्रबन्धन :

1. **मक्का का धब्बेदार तनाबेधक कीट :-** इस कीट की इल्ली पौधे की जड़ को छोड़कर समस्त भागों को प्रभावित करती है। सर्वप्रथम इल्ली तने को छेद करती है तथा प्रभावित पौधे की पत्ती एवं दानों को भी नुकसान करती है। इसके नुकसान से पौधा बौना हो जाता है एवं प्रभावित पौधों में दाने नहीं बनते है। प्रारंभिक अवस्था में डैड हार्ट (सूखा तना) बनता है एवं इसे पौधे के निचले स्थान के दुर्गंध से पहचाना जा सकता है।

2. **गुलाबी तनाबेधक कीट:** इस कीट की इल्ली तने के मध्य भाग को नुकसान पहुंचाती है फलस्वरूप मध्य तने से डैड हार्ट का निर्माण होता है जिस पर दाने नहीं आते है।

उक्त कीट प्रबंधन हेतु निम्न उपाय है :-फसल कटाई के समय खेत में गहरी जुताई करनी चाहिये जिससे पौधे के अवशेष व कीट के प्यूपा अवस्था नष्ट हो जाये। मक्का की कीट प्रतिरोधी प्रजाति का उपयोग करना चाहिए। मक्का की बुआई मानसुन की पहली बारिश के बाद करना चाहिए। एक ही कीटनाशक का उपयोग बार-बार नहीं करना चाहिए। प्रकाश प्रपंच का उपयोग सायं 6.30 बजे से रात्रि 10.30 बजे तक करना चाहिए। मक्का फसल के बाद ऐसी फसल लगानी चाहिए जिसमें कीटव्याधि मक्का की फसल से भिन्न हो। जिन खेतों पर तना मक्खी, सफेद भृंग, दीमक एवं कटुवा इल्ली का प्रकोप प्रत्येक वर्ष दिखता है, वहाँ दानेदार दवा फोरेट 10 जी. को 10 कि.ग्रा./हे. की दर से बुवाई के समय बीज के नीचे डालें। तनाछेदक के नियंत्रण के लिये अंकुरण के 15 दिनों बाद फसल पर क्विनालफास 25 ई.सी. का 800 मि.ली./हे. अथवा कार्बोरिल 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. का 1.2 कि.ग्रा./हे. की दर से छिड़काव करना चाहिए। इसके 15 दिनों बाद 8 कि.ग्रा. क्विनालफास 5 जी. अथवा फोरेट 10 जी. को 12 कि.ग्रा. रेत में मिलाकर एक हेक्टेयर खेत में पत्तों के गुच्छों में डालें।

मक्का के प्रमुख रोग

1. **डाउनी मिल्डयू :-** बोने के 2-3 सप्ताह पश्चात यह रोग लगता है सर्वप्रथम पर्णहरिम का ह्रास होने से पत्तियों पर धारियां पड़ जाती है, प्रभावित हिस्से सफेद रुई जैसे नजर आने लगते है, पौधे की बढ़वार रुक जाती है।

उपचार :- डायथेन एम-45 दवा आवश्यक पानी में घोलकर 3-4 छिड़काव करना चाहिए।

2. **पत्तियों का झुलसा रोग** :- पत्तियों पर लम्बे नाव के आकार के भूरे धब्बे बनते हैं। रोग नीचे की पत्तियों से बढ़कर ऊपर की पत्तियों पर फैलता हैं। नीचे की पत्तियां रोग द्वारा पूरी तरह सूख जाती है।

उपचार :- रोग के लक्षण दिखते ही जिनेब का 0.12% के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

3. **तना सड़न :-** पौधों की निचली गांठ से रोग संक्रमण प्रारंभ होता हैं तथा विगलन की स्थिति निर्मित होती हैं एवं पौधे के सड़े भाग से गंध आने लगती है। पौधों की पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं व पौधे कमजोर होकर गिर जाते है।

उपचार :- 150 ग्रा. केप्टान को 100 ली. पानी मे घोलकर जड़ों पर डालना चाहिये।

मक्के में लगने वाले कीट व रोगों तथा उपचार: मक्का खरीफ ऋतु की फसल है, परन्तु जहां सिचाई के साधन हैं वहां रबी और खरीफ की अगेती फसल के रूप मे ली जा सकती है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का बहुत अच्छा स्रोत है। यह एक बहपयोगी फसल है व मनुष्य के साथ- साथ पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव भी है तथा औद्योगिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है।जिन किसानों ने मक्के की बुवाई की है, उन्हें मक्के में लगने वाले कीटों, रोगों व उनके उपचार के बारे में जानना बहुत जरूरी है ताकि समय रहते किसान कीट व रोग को पहचान कर उचित उपचार कर सकें। इस संकलन से हम किसानों को मक्के में लगने वाले कीटों, रोगों व उनके उपचार के बारे में बता रहे हैं।

पशुओं में बांझपनः एक बढ़ती हुई चुनौती

अंकुर यादव, पंकज कुमार मौर्य,
अभय कुमार यादव, विपिन कुमार मौर्य
अभिनव गुप्ता, सुदर्शन कुमार बिन्द
कल्पना
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुपालन न केवल दूध उत्पादन का साधन है, बल्कि करोड़ों किसानों की आजीविका का आधार भी है। ऐसे में यदि कोई पशु गर्भधारण करने में अक्षम हो, तो यह किसान के लिए बड़ा आर्थिक नुकसान है। पशुओं में बांझपन एक गंभीर समस्या है जो ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पशुपालन और डेयरी उद्योग के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान का कारण बनती है। बांझ पशु को पालना किसानों के लिए एक वित्तीय बोझ साबित होता है और यह समस्या न केवल पशुपालकों के लिए आर्थिक रूप से हानिकारक है, बल्कि यह पशुओं की प्रजनन क्षमता को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। यह देखा गया है कि जैसे-जैसे दुधारू पशुओं के दूध उत्पादन में वृद्धि हुई है, वैसे-वैसे उनकी प्रजनन क्षमता में गिरावट आई है। वास्तव में, दुधारू पशुओं की दूध उत्पादन क्षमता प्रत्यक्ष रूप से उनकी प्रजनन क्षमता पर निर्भर करती है। पशुओं में अस्थायी रूप से प्रजनन क्षमता के घटने की स्थिति को ही बांझपन कहा जाता है। सामान्यतः गाय या भैंस को ब्याने के 45-60 दिनों के भीतर मद में आ जाना चाहिए और 90-100 दिनों के भीतर गर्भधारण कर लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो यह एक प्रजनन विकार का संकेत है। अनुसंधानों से पता चला है कि दुधारू पशुओं में 10-30 प्रतिशत तक बांझपन की दर हो सकती है। यानी, हर 10 में 1-3 पशु किसी न किसी प्रजनन समस्या से ग्रस्त हो सकते हैं। अच्छी प्रजनन दर या उच्च संख्या में बछड़े प्राप्त करने के लिए, नर और मादा दोनों पशुओं को संतुलित आहार दिया जाना चाहिए और उन्हें रोगों से मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है।

पशुओं में बांझपन के कारण

जन्मजात या आनुवंशिक बांझपन

* **क्रिप्टोर्चिडिज्मः** नर पशु में वृषण अंडकोष की थैली में नहीं आते, जिससे शुक्राणु नहीं बनते।

* **फ्रीमार्टिनः** नर-मादा जुड़वां में मादा का प्रजनन अंग अविकसित होता है।

* **स्क्रोटल हर्नियाः** आंत का भाग अंडकोष की थैली में आ जाता है, जिससे नुकसान होता है।

* **अविकसित/पुटक रहित अंडाशयः** अंडाशय का विकास ना होना या फॉलिकल का अभाव प्रजनन में बाधा डालता है।

* **खण्डयुक्त जननांगः** कुछ नस्लों में जननांग पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते।

कार्यात्मक बांझपन

* **मौन मदः** पशु में मद के लक्षण दिखाई नहीं देते, विशेषकर भैंसों में।

* **अप्रत्यक्ष मदः** मद की अवधि बहुत कम होने के कारण पहचान नहीं हो पाती।

* **ट्रू अनेस्ट्रसः** पशु पूर्णतः निष्क्रिय रहता है। अक्सर कुपोषण, हार्मोन असंतुलन या तनाव के कारण यह स्थिति बनती है ।

* **विलंबित ओवुलेशनः** सही समय पर अंडोत्सर्ग न होने से गर्भधारण असफल होता है।

* **सिस्टिक अंडाशयः** अंडाशय में सिस्ट बनने से मद में असामान्यता आती है या मद रुक जाता है।

3 संक्रामक बांझपन- यह बांझपन विशिष्ट (स्पेसिफिक) या सामान्य (नॉन स्पेसिफिक) संक्रमण की वजह से होता है।

* **सामान्य संक्रमणः** यह संक्रमण अधिकांश पशुओं में अक्सर पहले से ही मौजूद होता है। यह संक्रमण संपूर्ण पशु समूह की अपेक्षा अकेले पशु को प्रभावित करता है। इस संक्रमण की वजह से अंडाशय में सूजन, डिंबवाही नलिका में सूजन, बच्चेदानी में सूजन, बच्चेदानी के मुँह में सूजन, योनि में सूजन व गर्भपात जैसी समस्या हो सकती है। अंडाशय में सूजन रेक्टल जांच के दौरान अंडाशय को पकड़ने, अंडाशय में संक्रमण होने एवं कॉर्पस ल्युटियम को हाथ से तोड़ने की वजह से भी आ सकती है। इसके अलावा अगर साफ-सफाई का ध्यान न रखा जाए, तो गर्भाशय, अंडाशय या डिंबवाही नलिका में आसानी से संक्रमण फैल सकता है। अक्सर गर्भपात, कठिन प्रसव या गंदे उपकरणों से कृत्रिम गर्भाधान के बाद यह संक्रमण होता है। इसलिए, गर्भावस्था और डिलीवरी के दौरान साफ-सफाई बहुत जरूरी है, ताकि संक्रमण न फैले और पशु स्वस्थ रहें।

* **विशिष्ट संक्रमणः** यह संक्रमण पशु स्थानिक महामारी के रूप में होता है, जिस वजह से पशुओं का समस्त समूह प्रभावित हो सकता है। विशिष्ट संक्रमण के अंतर्गत ट्रिकोमोनिआसिस, विब्रिओसिस/कम्पायलोबैक्टेरिओसिस, ब्रूसलोसिस, ट्यूबरकुलोसिस, आई.पी.वी.-आई.पी.आर इत्यादि जैसे रोग सम्मिलित हैं।

पोषण एवं प्रबंधन से संबंधित बांझपन

बांझपन का यह कारण सबसे प्रचलित है, जो कि पोषण संबंधी कमियों और मद को उसके सही समय या सही स्थिति को ना पहचानने की वजह से होता है।

पोषण संबंधी कारण- पशुओं के प्रजनन पर पोषण का गहरा प्रभाव पड़ता है। चारे में ऊर्जा का निम्न स्तर शुक्राणुजनन में देरी कर सकता है। असंतृप्त वसीय अम्ल प्रजनन के लिए आवश्यक माने जाते हैं। खनिजों में, फास्फोरस प्रजनन को सीमित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है। एक वयस्क गाय को प्रति दिन लगभग 10 से 12 ग्राम फास्फोरस की आवश्यकता होती है। कैल्शियम और फास्फोरस का सही अनुपात (2:1) प्रजनन संबंधी परेशानियों से बचाव के लिए महत्वपूर्ण है। आयोडीन की कमी, कामेच्छा की कमी और खराब वीर्य की गुणवत्ता जैसी प्रजनन समस्याओं के लिए जिम्मेदार होती है। विटामिन ए की कमी से गर्भाशय में प्रतिकूलता पैदा होती है और यह युग्मकजनन को भी कम करता है। इसके अलावा, विटामिन सी और विटामिन ई भी पशुओं में प्रभावी प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जस्ता जैसे खनिज तत्वों की कमी के कारण भी पशु गर्भित नहीं हो पाते हैं।

प्रबंधन संबंधी कारण- इसमें मद के लक्षणों को सही समय पर न पहचानना, गर्भाधान का गलत समय, पशु पर अत्यधिक तनाव (जैसे गर्मी या ठंड का तनाव, परिवहन का तनाव), और दोषपूर्ण कृत्रिम गर्भाधान तकनीकें शामिल हैं। यौन चक्र 20-21 दिन का होता है, जिसमें पशु 18-24 घंटे के लिए गर्मी के लक्षण दिखाता है, जो कि प्रजनन का सही समय होता है। भैंस में गर्मी के लक्षणों की पहचान करना गाय की तुलना में अधिक कठिन होता है क्योंकि भैंस में यह चक्र अक्सर शांत अवस्था में निकल जाता है, जिसे मूक मद कहते हैं। उत्तेजना का गलत अनुमान बांझपन के स्तर में वृद्धि कर सकता है।

आकस्मिक कारण- इनमें किसी भी यांत्रिक चोट के परिणाम शामिल हैं जो पशु को अस्थायी या स्थायी रूप से प्रजनन से बाहर कर सकते हैं। यदि तुरंत और विशेषज्ञ उपचार दिया जाए तो ये आमतौर पर इलाज योग्य होते हैं ।

अन्य कारण- इन कारकों में आयु, मौसम, तापमान, प्रकाश आदि शामिल हो सकते हैं। ये सभी कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पशु शरीर के साथ अंतःस्रावी संतुलन को बदलकर कार्य करते हैं।

बांझपन की रोकथाम एवं समाधान

* पशु में मद (हीट) के लक्षण आने पर ही गर्भाधान करें। गायों में आमतौर पर 18-24 घंटे मद का समय होता है, जबकि भैंसों में यह समय कम होता है।
* कृत्रिम गर्भाधान केवल प्रशिक्षित व्यक्ति से सही समय एवं सही तकनीक से करवाएँ।
* पशु के चारे में रोजाना 50 ग्राम खनिज मिश्रण जरूर डालें। साथ ही विटामिन ए, डी एवं ई तथा मिनरल्स जैसे फास्फोरस, जिंक, आयोडीन की पूर्ति करें।
* गर्भाधान के समय इस्तेमाल होने वाले उपकरण पूरी तरह से कीटाणुरहित होने चाहिए।
* संक्रमित पशुओं को अलग रखें ताकि संक्रमण न फैले।
* पशुओं को मौसम की ठंड या गर्मी, भीड़भाड़ और शोर-शराबे से बचाएं ताकि वे तनावमुक्त रहें।
* गर्भवती पशु को साफ-सुथरे और शांत स्थान पर अलग रखें और विशेष देखभाल करें।
* हर 6 माह में पशुओं का डीवॉर्मिंग (पेट के कीड़ों का इलाज) करवाएं।
* प्रजनन के लिए स्वस्थ और उपयुक्त सांड का ही चयन करें।
* गर्भधारण के 60 से 90 दिन में पशुचिकित्सक से गर्भ की पुष्टि करवाएं।
* प्रसव से करीब दो महीने पहले दूध निकालना बंद कर दें ताकि पशु और बछड़े दोनों स्वस्थ रहें।
* पशु का नियमित अंतराल पर स्वास्थ्य परीक्षण करवाएं, ताकि किसी भी संभावित समस्या को समय रहते पहचाना जा सके।
* सभी आवश्यक टीकों को समय पर लगवायें ताकि संक्रमण और रोगों से पशु सुरक्षित रहें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

खुम्भ (मशरूम) के रोग व कीट एवं उनके रोकथाम

डॉ. शिवम सिंह (विषय वस्तु विशेषज्ञ, पादप सुरक्षा) कृषि विज्ञान केन्द्र- बागपत (उ.प्र.)

दुर्गेश्वर सिंह (परास्नातक छात्र) डिपार्टमेंट ऑफ़ प्लांट पैथोलॉजी दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर वि.वि., गोरखपुर

डॉ. सौरभ गोविन्द राव (असिस्टेंट प्रोफेसर) डिपार्टमेंट ऑफ़ प्लांट पैथोलॉजी, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

डॉ. संजय कुमार (सह-प्राध्यापक) गुरु काशी विश्वविद्यालय, बठिंडा, (पंजाब)

भूमिका: खुम्भ (मशरूम) में भी कई प्रकार की बीमारियों, कीट तथा सूत्रकृमि आदि का प्रकोप होता है। मशरूम की फसल को इन सबसे बचाने के लिए यह आवश्यक है कि मशरूम उत्पादक ऐसे उपाय करें की मशरूम की उपज सुचारू रूप से होती रहे और यह उद्योग पनपता रहे। फसल के आते समय उचित वातावरण न होने के कारण तथा अन्य व्यवस्थापित कमियों के फलस्वरूप ये समस्याएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलती है तथा मशरूम उत्पादक को काफी छति पहुंचाते हैं। मशरूम की मुख्य बीमारियों व कीट का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1.मशरूम की बीमारियाँ

क्लेडोबोट्रीयम या काब वेब रोग- यह बीमारी क्लेडोबोट्रीयम डेन्ड्राइडीस नामक फफूंद के कारण होती है। इस फफूंद का कवकजाल शुरू में भूरे सफ़ेद रंग का होता है, जो बाद में लाल रंग का हो जाता है। यह फफूंद केसिंग की सतह पर तेजी से फैलती है और पेटियों या डिब्बे में निकल रहे मशरूमों को चारों तरफ से ढक लेती है। रोगग्रस्त मशरूम ऊपर से देखने पर रुई के गोलों की तरह दिखाई देते हैं, लेकिन मशरूम अंदर ही अंदर सड़कर गल जाती है। केसिंग मिश्रण तथा दूषित हवा इस रोग के प्रमुख श्रोत हैं। गीली केसिंग परत और अधिक आर्द्रता इस रोग को फैलाने में सहायक होते हैं। मशरूम तोड़ते समय असावधानीवश पीछे छूट गए मशरूम के टुकड़ों से यह बीमारी अधिक तेजी से फैलती है।

रोकथाम- पानी छिड़कने के तुरंत बाद पंखे आदि चला कर नमी को 70-80% के मध्य बना कर रखना चाहिए। दस दिनों के अंतर पर तीन बार डाईथेन जेड-78 के 0.25% घोल का छिड़काव करने पर इस रोग से बचाव किया जा सकता है। 20% पेंटाक्लोरोनाइट्रोबेन्जीन के घोल से उपचार करने पर या 70% कैल्शियम हाइपोक्लोराइट से भी रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

ड्राई बबल या वरटीसिलियम रोग: इस बीमारी का कारण वरटीसिलियम फन्जीकोला नामक फफूंद है। इस बीमारी से मशरूम की टोपी की ऊपरी सतह पर भूरे रंग के छोटे छोटे धब्बे बन जाते हैं। ये धब्बे मशरूमों की डंठलों पर भी देखे जा सकते हैं। तत्पश्चात इन धब्बों के बीच में छोटे छोटे गढ्ढे से बन जाते हैं, जिनमें इस बीमारी की कवकजाल की सफेदी सी छा जाती है। छोटे तथा नए मशरूम इस बीमारी के कारण गोल-मटोल, भूरे रंग के तथा टेढ़े-मेढ़े आकार की हो जाते हैं। रोगग्रस्त बड़े मशरूम के तने के छिलके या रेशे निकलते भी देखे जा सकते हैं। वरटीसिलियम फफूंद मुख्यतः केसिंग के लिए उपयुक्त मिट्टी, गोबर की गली-सड़ी व पुरानी पड़ी खाद में पाई जाती है। यदि उपयुक्त ढंग से मशरूम का उपचार न किया जाये तो ये फसल में बीमारी के फैलने का श्रोत बन जाते हैं। 18 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान व 90 प्रतिशत से अधिक नमी वाले वातावरण में यह बीमारी और अधिक तेजी से फैलती है।

रोकथाम- इस बीमारी की रोकथाम के लिए अच्छी सफाई द्वारा तथा खाद व केसिंग मिश्रण का कृमिनाशक इकाई में उपचार करके उन्हें ठीक ढंग से रोगाणु-मुक्त करना अति आवश्यक है। पेटियों या डिब्बों या कमरे में 0.05% बेनलेट या बेविस्टीन या 0.25%डाईथेन एम-45 या डाईथेन जेड-78 नामक फफूंदनाशक के घोल का 15-15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

माइकोगोन या वेट बबल रोग: यह बीमारी माइकोगोन परनीसिओसा नामक फफूंद के कारण होती है। इस बीमारी के विभिन्न प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं। यदि यह बीमारी फसल की शुरुआत में लग जाये तो नए छोटे छोटे मशरूम आकार में बढ़ नहीं पाते और टेढ़े-मेढ़े शक्ल के हो जाते हैं। बाद में मशरूम फफूंद के कवकजाल से ढक जाते हैं और रोगग्रस्त मशरूम अन्दर ही अन्दर सड़कर गल जाते हैं। कुछ समय पश्चात इनके ऊपर हल्के रंग की पानी की बूँदें नजर आती हैं।

बड़े आकार के मशरूमों के तने के एक हिस्से में या ऊपर टोपी में एक तरफ भूरे रंग के धब्बे नजर आते हैं। फफूंद का सफ़ेद कवकजाल मशरूम के ऊपरी भाग को पूरी तरह से ढक लेता है। वरटीसिलियम रोग की भांति यह रोग भी अधिक नमी और 18 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान वाले कमरों में अधिक तेजी से फैलता है।

रोकथाम- इस रोग की रोकथाम हेतु केसिंग मिश्रण के ठीक ढंग से भाप या फार्मालीन द्वारा उपचार करना चाहिए। पानी का छिड़काव करते समय सावधानी रखनी चाहिए कि पानी का दबाव अधिक जोर से न पड़े अन्यथा बीमारी का एक जगह से दूसरे जगह फैलने का डर बना रहता है। इसके अतिरिक्त बेनलेट, बेविस्टीन, टोपसीन-एम या थायोबेन्दाजोल नामक किसी एक फफूंदनाशक के 0.05% घोल के छिड़काव से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

जीवाणु चकत्ता रोग: यह बीमारी स्यूडोमोनास टोलासी नामक जीवाणु के कारण होती है। इसमें मशरूम की सतह पर छोटे-छोटे, गोल भूरे रंग के धब्बे उभर आते हैं, जो बाद में बढ़कर चाकलेट रंग के बड़े धब्बे में बदल जाते हैं। ये धब्बे 3 मिलीमीटर की गहराई तक धसे होते हैं और मशरूम के तनों पर भी नजर आते हैं। छोटे-छोटे मशरूम बिल्कुल भूरे व पीले रंग के नजर आते हैं। केसिंग मिश्रण के माध्यम, दूषित पानी या यंत्रो द्वारा ये जीवाणु पेटियों या डिब्बों या कमरों में प्रवेश करता है। उत्पादन वाले कमरों के बंद वातावरण व अधिक आर्द्रता (90% से अधिक) से यह बीमारी तेजी से फैलती है।

रोकथाम- कमरे में नमी 90% से अधिक न हो तथा इनमें ताजी हवा निरंतर आती रहे। छोटी-छोटी सभी पीले मशरूम को निकालने के बाद 0.015% क्लोरीनयुक्त पानी या ब्लीचिंग पाउडर का छिड़काव करने से इस बीमारी से आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है।

मशरूम के विषाणु रोग: मशरूम में कई प्रकार के विषाणु भी कुछ बिमारियों के कारण बनते हैं, जिन्हें ला-फांस, भूरा रोग, एक्स-बीमारी आदि नामों से जाना जाता है। इस रोग से फसल पूरी तरह से नष्ट भी हो सकती है। रोगग्रस्त मशरूम के कवक खाद में एकदम मर जाते हैं, जिससे मशरूम पेटियों या थैलियों में बराबर न निकल के अलग-अलग स्थानों से निकलते हैं। अधिकतर लम्बे तने और छोटे-छोटे टोपियों वाले मशरूम निकलते हैं, जिन्हें 'ड्रम स्टिक' भी कहा जाता है। छोटे मशरूम पीले पड़ के जल्दी खुल जाते हैं। रोगग्रस्त मशरूम पेटियों या थैलियों में बड़े लिचलिची व पीले पड़ जाते हैं तथा हल्के से दबाये जाने पर एकदम ही जलीयमान हो जाते हैं। रोगग्रस्त मशरूम से तैयार किये गए बीज द्वारा ये विषाणु नई फसलों में बीमारी फैलाते हैं ।

रोकथाम: इसकी रोकथाम के लिए कई बातें महत्वपूर्ण हैं, जैसे कि कमरों में तथा बाहर सफाई व्यवस्था बनाए रखना, कमरों में जालीदार दरवाजे व खिडकियों का प्रबंध, हमेशा छनी हुई हवा का प्रवेश, मशरूम के खुलने से पहले ही तुड़ाई, पेटियों व पुरानी खाद का भाप द्वारा 70 डिग्री सेल्सियस तापमान पर ठीक ढंग से 10 से 12 घंटे तक उपचार करना, ताकि उसमें चिपके सभी प्रकार के रोगग्रस्त कवक व मशरूम आदि जीवित न रह पाएं। मशरूम की अन्य प्रजातियों, जैसे- अगेरिकस बाईटोरक्यूस, प्लूरोटस सजोर-काजु आदि, पर मशरूम के विषाणु रोगों का विशेष प्रकोप नहीं होता।

प्रतियोगी फफूंद या खरपतवार फफूंद: मशरूम के कवकजाल को कई प्रकार की अन्य प्रतियोगी फफूंदों से भी प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है, जो खाद में मशरूम के भोजन में कमी लाते हैं और उनकी बढ़त को कम कर देते हैं। खाद में भोजन हेतु प्रत्याशी होने की वजह से इन्हें प्रत्याशी या सांकेतिक फफूंद भी कहते हैं। वातावरण में किसी अनियमितता के होने के कारण ही ये उत्पन्न होते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं, जैसे-

भूरे परत वाली फफूंद: बीजाई की गई खाद में या केसिंग के ऊपर यह पहले सफ़ेद रंग के कवकजाल के रूप में नजर आता है जो बाद भूरे रंग में बदल जाता है। तत्पश्चात ये सारी खाद और केसिंग मिट्टी के ऊपर बड़ी-सा गोलाकार परत बनाता है। उन जगहों पर मशरूम का निकलना बंद हो जाता है। इस तरह से मशरूम देर से निकलती है तथा पैदावार भी कम हो जाता है। गीली खाद, अपर्याप्त हवा, अधिक तापमान (28 से 30 डिग्री सेल्सियस) इसको तेजी से फैलने में सहायता करते हैं।

रोकथाम- उचित सफाई की व्यवस्था करके तथा रोगग्रस्त खाद या केसिंग को निकाल कर उनमें 4 प्रतिशत फार्मालीन के घोल द्वारा उपचार करने पर इसे रोका जा सकता है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि खाद में पानी की मात्रा अधिक न हो।

हरे रंग वाली फफूंद: बीजाई की गई खाद में (जिसमें नमी ज्यादा हो, पी-एच मान 7.0 से कम हो या फर्मालीन से उपचार न किया गया हो) और केसिंग मिट्टी के ऊपर ये फफूंद हरे रंग में नजर आती है। मशरूम के कवकजाल खाद में से गायब होने शुरू हो जाते हैं। हवा, पानी व दीमकों द्वारा ये एक जगह से दूसरे जगह फैलता है और यह आर्द्र वातावरण व कम पी-एच मान वाली खाद में अधिक तेजी से फैलता है।

रोकथाम- खाद में 70-72% से अधिक पानी न हो तथा पीएच मान 7.0 से 7.5 के मध्य हो। पेटियों, थैलियों व कमरों में 0.05% बेनलेट या बेविस्टीन के घोल से छिड़काव करने पर इस रोग से छुटकारा पाया जा सकता है।

हरे जैतूनी रंग का फफूंद-इसको कीटोमियम के नाम से भी जाना जाता है। शुरुआत में ये सफ़ेद रंग की गोल दानेदार फफूंद के रूप में खाद में मौजूद गेहूँ की सड़ी-गली डंडियों से चिपका हुआ होता है, जो बाद में हरे जैतूनी रंग में परिवर्तित हो जाता है। जिस खाद को 60 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान पर पस्तुरीकरण किया गया हो और ताजी हवा का प्रवेश न हो, तो उस अवस्था में यह फफूंद बहुत ही तेजी से फैलता है।

रोकथाम- खाद को पस्तुरीकरण करते समय कमरे में काफी हवा अर्थात् आक्सीजन जाती रहे। 0.2% थाइरम या 0.05 प्रतिशत बैनलेट नामक फफूंदनाशक के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

सफ़ेद परत वाली फफूंद- केसिंग के ऊपर कभी-कभी आटे की तरह सफ़ेद रंग की परत वाली फफूंद नजर आती है जिसके कारण मशरूम का निकलना कम हो जाता है।

रोकथाम- इसकी रोकथाम हेतु 0.004% थाइरम नामक फफूंदनाशक के घोल का 10-10 दिनके अंतराल पर छिड़काव करना जरुरी है।

कोपराईनस मशरूम- कई बार केसिंग से पहले खाद में से लंबा-लंबा, पतली सफ़ेद डंडियों व छोटी टोपी वाला एक दूसरे ही प्रकार का मशरूम दिखाई देता है, जो थोड़े ही दिन में खुलकर काला पड़ जाता है, गलकर सड़ जाती है व काला जलयुक्त हो जाता है । खाद को ठीक ढंग से न बनाये जाने पर व बीजाई के समय उसमें अमोनिया गैस की मात्रा रह जाने के कारण इस प्रकार का मशरूम उगता है।

रोकथाम- खाद को पेटियों या थैलियों में भरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमे अमोनिया की गंध बिल्कुल न रहे। हाथ से इन काले मशरूम को खुलने से पहले उखाड़कर दूर जमीन में गाड़ देना चाहिए।

प्राचीन पौध पोषण का पुनर्जागरण: वृक्षायुर्वेद की दृष्टि से जैविक खाद एवं सतत पादप स्वास्थ्य प्रणाली का अध्ययन

श्री खेता राम सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद)
डॉ. तरुण शर्मा सहायक आचार्य, (द्रव्यगुणा विज्ञान)
डॉ. सुमित कुमार नत्थानी ह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, वृक्षायुर्वेद विभाग राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान मानद विश्वविद्यालय (डी नोवो) आयुष मंत्रालय भारत सरकार

भूमिका

भारत की कृषि परंपरा हजारों वर्षों पुरानी है, जिसमें प्रकृति और कृषि के मध्य गहरा संबंध स्थापित किया गया है। आधुनिक कृषि पद्धतियों में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और संकर बीजों के अत्यधिक उपयोग के कारण पर्यावरणीय असंतुलन, मृदा की उर्वरता में गिरावट, जल प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव देखे जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में वृक्षायुर्वेद जैसे पारंपरिक विज्ञान का पुनरावलोकन एवं पुनरुत्थान अत्यंत आवश्यक है।

वृक्षायुर्वेद एक ऐसा शास्त्र है जिसमें पादपों की समग्र देखभाल – बीज चयन, रोपण, सिंचाई, पोषण, रोगोपचार तथा संरक्षण – का गूढ़ एवं व्यावहारिक ज्ञान समाहित है। इस लेख में हम वृक्षायुर्वेद आधारित जैविक खाद निर्माण विधियों एवं सतत पादप स्वास्थ्य देखभाल की पारंपरिक प्रणालियों का विस्तृत विवेचन करेंगे।

वृक्षायुर्वेद का परिचय

वृक्षायुर्वेद (Vrikshayurveda) शब्द दो भागों से मिलकर बना है – 'वृक्ष ' अर्थात् पेड़-पौधे और 'आयुर्वेद ' अर्थात् पादप जीवन का विज्ञान। इस शास्त्र में पादपों के जीवन चक्र, स्वास्थ्य, रोग, औषधोपचार तथा उन्नति के उपाय विस्तार से वर्णित हैं।

प्रमुख ग्रंथ:

"वृक्षायुर्वेद" – लेखक: सुरपाल (Surapala), 10वीं शताब्दी

"कृषिपराशर", "काश्यपीय कृषि संहिता", "वाग्भट कृषि तंत्र" – इन ग्रंथों में भी वृक्षायुर्वैदिक दृष्टिकोण से कृषि एवं पौध संरक्षण का उल्लेख है।

मुख्य सिद्धांत: * पादपों को भी मनुष्यों की तरह धातु, दोष और रोग होते हैं। * हर ऋतु, मृदा और स्थान के अनुसार पौधों की आवश्यकता बदलती है।* संतुलित पोषण और उचित देखभाल से पौधों का स्वास्थ्य बना रहता है।

वृक्षायुर्वेद में जैविक खाद निर्माण की परंपराएं

वृक्षायुर्वेद में अनेक जैविक खादों की निर्माण विधियाँ दी गई हैं जो प्राकृतिक सामग्री से बनती हैं और मृदा के पोषण को बनाए रखती हैं।

कुणप जल (Kunapa Jala)

स्रोत: मांस, मछली, दूध, घी, तिल, गन्ना रस, गोमूत्र, जल।

विधि: उपरोक्त सामग्री को मिट्टी के बर्तन में भरकर धूप में 15-30 दिन तक सड़ाया जाता है।

लाभ:

यह खाद पौधों के लिए उत्तम टॉनिक है।

अश्वगंधा पौधों पर कुणप जल के प्रभाव विषय पर शोध कार्य के दौरान डाटा अन्वेषण करते हुए श्री खेता राम, सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद)।

पौधों की जड़ों को तीव्र पोषण प्रदान करता है।

विशेषकर रोपण के बाद के चरण में उपयोगी।

पंचगव्य (Panchagavya)

घटक: गाय का गोबर, गोमूत्र, दूध, दही और घी।

उपयोग: बीज उपचार, पत्तियों पर छिड़काव, भूमि में सिंचाई के साथ।

लाभ:

रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि।

जैविक वृद्धि नियामक (bio-enhancer) की तरह कार्य करता है।

जीवामृत (Jeevamrut)

आधुनिक जैविक कृषि में प्रचलित एक विधि जो वृक्षायुर्वेदिक दृष्टिकोण से मेल खाती है।

घटक: गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन/आटा, मिट्टी व पानी।

उपयोग: रोपण के बाद प्रत्येक 15 दिन में भूमि पर छिड़काव।

प्राकृतिक कीटनाशक (Bio-Pesticides)

नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, अग्नास्त्र आदि जैविक कीटनाशक निम्नलिखित से बनाए जाते हैं:

नीम की पत्तियाँ, मिर्च, लहसुन, गोमूत्र, हिंग, तुलसी आदि।

सतत पादप स्वास्थ्य देखभाल की विधियां

(Sustaiable Plant Health Practices)

* **धूपन क्रिया** (Fumigation)

विशेष औषधीय लकड़ियों (गुग्गुलु, हरड़, नीम) का धुआँ पौधों के पास किया जाता है।

रोग व कीट नष्ट होते हैं।

स्नान विधि (Plant Bathing)

पौधों पर औषधीय काढ़ों का छिड़काव।

सामग्री: नीम, तुलसी, गायत्री काढ़ा, त्रिफला।

मूल सुरक्षा (Root Protection)

जड़ों के पास गोमूत्र, पंचगव्य, जीवामृत या औषधीय जल डालना।

ऋतु अनुसार देखभाल

वसंत में पौधों को वृद्धि व पुष्पन हेतु शक्ति देने वाले रस।

वर्षा ऋतु में जड़ों की सुरक्षा हेतु क्षार एवं जीवाणुरोधी रस।

शरद ऋतु में परिपक्वता हेतु पोषक रस।

आधुनिक संदर्भ में वृक्षायुर्वेद की प्रासंगिकता

* समस्या समाधान वृक्षायुर्वेद द्वारा
* रासायनिक खाद से मृदा की उर्वरता में गिरावट कुणप जल, पंचगव्य, जीवामृत से मृदा पुनर्जीवित
* जल प्रदूषण जैविक खाद व कीटनाशकों का प्रयोग
* कीटों की प्रतिरोधकता नीम आधारित प्राकृतिक कीटनाशक,किसान की लागत अधिक स्थानीय संसाधनों से निर्मित खाद से लागत में कमी आती है।

निष्कर्ष

वृक्षायुर्वेद केवल एक प्राचीन ग्रंथ नहीं है, बल्कि एक पूर्ण जीवन शैली और वैज्ञानिक कृषि पद्धति है। इसकी विधियाँ न केवल पादपों के स्वस्थ विकास हेतु उपयुक्त हैं, बल्कि आज के पर्यावरणीय और जैविक संकट के समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। यदि हम आधुनिक विज्ञान के साथ वृक्षायुर्वेद के सिद्धांतों को संयोजित करें, तो हम एक सतत, पर्यावरणीय और पोषणसमृद्ध कृषि व्यवस्था की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

कृषि कार्यों में दुर्घटनाओं से बचाव

यशपाल यादव शोध छात्र, फार्म मशीनरी एवं पावर इंजीनियरिंग विभाग, कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग, एमपीयूएटी, उदयपुर (राजस्थान)

डॉ. सांवल सिंह मीणा प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, फार्म मशीनरी एवं पावर इंजीनियरिंग विभाग, कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग, एमपीयूएटी, उदयपुर

मीनू शोध छात्रा, संसाधन प्रबंधन और उपभोक्ता विज्ञान विभाग, इंद्रा चक्रवर्ती सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, (हरियाणा)

परिचय: कृषि कार्यों के दौरान कृषि यंत्रों, कीटनाशकों व रोगनाषकों के असुरक्षित उपयोग एवं कृषि कार्यों में लापरवाही आदि कारणों से कृषि दुर्घटना होने की संभावना बनी रहती है। हमारी थोड़ी सी समझदारी व सुरक्षित उपयोग से दुर्घटनाओं में कमी हो सकती है।

थ्रेशर से होने वाली दुर्घटनाएं एवं सुरक्षित उपयोग: हमारे देश में अनाज, दाल और तिहलनों की थ्रेशिंग विभिन्न तरीकों से की जाती है। अनाज के दानों को पौधे से अलग करने की उस प्रक्रिया को थ्रेशिंग या गहाई कहते है जिसमें दानों को कम से कम अंदरूनी या बाहरी नुकसान पहुंचे। ऐसा कार्य करने वाली मशीन को थ्रेशर कहते हैं। आधुनिक युग में लगभग सभी अनाज, दाल और तिहलनों की गहाई शक्ति चलित थ्रेशरों से की जा रही है यंत्रीकरण से समय की बचत अवश्य होती है लेकिन सावधानी से काम नहीं करने पर दुर्घटना का डर बना रहता है। आधुनिक खेती में खेत पर होने वाली दुर्घटनाओं में सर्वाधिक दुर्घटनाएं थ्रेशर से होती हैं। अतः थ्रेशिंग में न सिर्फ सुरक्षित थ्रेशर का प्रयोग आवश्यक है वरन् थ्रेशिंग करते समय भी सावधनी आवश्यक है। इसलिये थ्रेशर से होने वाली दुर्घटनाओं की जानकारी एवं चालन में निम्न सावधानियां एवं रखरखाव आवश्यक है।

थ्रेशर चलाने से पूर्व की जांच और स्थापना के समय सावधनियां: थ्रेशर का सही उपयोग तथा उसकी कार्य क्षमता इस बात पर बहुत हद तक निर्भर करती है कि उसकी स्थापना किस स्थान पर और किस ढंग से की गई है। थ्रेशर के फसल की मड़ाई करने के पूर्व थ्रेशर के विभिन्न पुजों की ठीक प्रकार से जांच की जानी चाहिए ताकि कार्य के समय किसी भी खतरें की डर न रहे। थ्रेशर को स्थापित करने से पहले सभी नट-बोल्टों को भली भांति कस लेना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि कोई भी पुर्जा ढीला न रहे। थ्रेशर को स्थापित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

थ्रेशर चलाने वालों को थ्रेशर चलाते समय ध्यान दी जाने वाली सुरक्षा सावधनियां: 1. थ्रेशर के बारे में बिना पूर्ण जानकारी प्राप्त किए उसको न चलाएं। थ्रेशर पर काम करने वाले श्रमिक ध्यान रखें कि कभी भी फसल लगाते समय हाथ को अंदर न डाले थ्रेशिंग ड्रम फसल को स्वतः अन्दर खींच लेगा। थ्रेशर के चलते समय कोई भी समायोजन न करें। थ्रेशर चालक को सभी सुरक्षा संबंधी बातों की जानकारी होनी चाहिए। प्रशिक्षित चालक एवं अनुभवी श्रमिकों को ही फसल डालने का कार्य करने दें। 2. श्रमिकों को समय-समय पर आराम अवश्य देते रहें। किसी भी मजदूर को एक दिन में 8-10 घंटे से अधिक समय के लिए कार्य पर न लगावें तथा प्रत्येक डेढ़ से दो घंटे बाद विश्राम अवश्य दें। जहां तक संभव हो फसल लगाने वाले मजदूरों को थोड़ी-थोड़ी देर बार आपस में बदलते रहे। कभी भी शारीरिक रूप से कमजोर श्रमिकों को (बच्चे, बूढ़े, बीमार, अपंग आदि) खासतौर से फसल डालने के कार्य हेतु न लगाएं। 3. थ्रेशर पर कार्य करते समय सदैव सचेत एवं जागरूक रहें एवं कार्य करते समय एक दूसरे से बातचीत न करें। 4. नशीली चीजों का प्रयोग थ्रेशर पर काम करते समय कभी भी न करें। थ्रेशर पर काम करते समय किसी भी प्रकार का नशा शराब, गांजा, भांग,, चरस, जर्दा आदि न करें इससे दुर्घटना की संभावना बनी रहती हैं। कार्य के समय एवं खिलहान के पास धूम्रपान कदापि न करें इससे आग लगने की संभावना बनी रहती है। 5. काम करते समय हमेशा चुस्त पोशाक पहनें। काम के समय ढीली-ढाली पोशाक जैसे धोती, लुंगी कुर्ता, ढीली कमीज, आदि न पहनें। मार्च अप्रेल के महिने में हवा के तेज बहाव से आप के कपड़े थ्रेषर के घूमने वाले हिस्से में फंस सकते हैं। काम के समय हाथ में घड़ी, कंगन, या बालों को खुला छोड़कर थ्रेशर पर कार्य न करें। महिलाएं हमेशा अपने बालों को बांध कर रखें तथा जूड़ा बना लें अन्यथा झुकते समय चोटी का बेल्ट के साथ लिपटने का भय बना रहता है। 6. खलिहान में उचित रोशनी का प्रबंध रखें। सूरज डूबने के बाद बिना समुचित रोशनी की व्यवस्था के थ्रेशर न चलावें तथा रोशनी व थ्रेशर के मध्य के अवरोधों को दूर रखें। 7. कभी भी गीली लांक वाली फसल की गहाई न करें। इससे थ्रेशर ठप्प पड़ सकता है। इससे फसल को डालने के लिए ज्यादा ताकत लगानी पड़ती है और दुर्घटना के आसार भी बढ़ जाते हैं। 8. ट्रैक्टर और इंजिन के धुंआ निकलने वाले पाइप पर चिनगारी अवरोधक को अवश्य लगावें। ट्रैक्टर/इंजिन का धुंआ निकलने वाला पाइप हमेशा उध्वार्धर स्थिति में लगा होना चाहिए। थ्रेशर और ट्रैक्टर/इंजन को ऐसा फिट करें कि हवा के झोंके से चिनगारी उड़कर आग लगने का खतरा न हो। ट्रैक्टर/इंजन के चारों तरफ लगभग 7 मीटर के घेरे में फसल का ढेर न लगाएं। 9. खलिहान को आग की चिनगारियों से बचो। फसल के ढेर को कभी भी बीजली की तारों के नीचे न लगाएं। कभी भी बिजली के तारों के जोड़ों को ढीला और खुला न रखें। विद्युत मोटर की मेन स्विच थ्रेशर चालक की पहुंच के अंदर होनी चाहिए। किसी भी आदमी को खलिहान में हुक्का, बीड़ी सिगरेट आदि न पीने दें।

(ब) कीटनाशी रसायनों के छिड़काव एवं भुरकाव यंत्रों के उपयोग में सावधानियां: फसलों को कीड़ों, बीमारी व खरपतवार से बचाने के लिए कीटनाशक रसायनों का उपयोग किया जाता है। कीटनाशक/खरपतवारनाशकों के छिड़काव व भुरकाव में कतिपय सावधानियों की आवश्यकता होती है। उचित प्रकार का छिड़काव यंत्र काम में लेने से कीटनाशक का प्रयोग अधिक प्रभावी व सुगमता से किया जा सकता है जिससे कीटनाशक की कम मात्रा ही अधिक प्रभावी होती है। छिड़काव यंत्र के उचित प्रयोग एवं सावधानी के अभाव में मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल असर पड़ता है।

छिड़काव व भुरकाव यंत्रों के प्रयोग में सावधानिया : छिड़काव एवं भुरकाव यंत्रों के सुरक्षित प्रयोग के लिए आवश्यक है कि कीटनाशको के उपयोग के समय हवा की दिशा व मौसम संबंधी जानकारी का ध्यान रखें। साथ ही छिड़काव से पहले, छिड़काव के समय व छिड़काव के बाद भी, कई प्रकार की सावधानियों की महती आवश्यकता होती है।

छिड़काव की दिशा: कीटनाशकों का छिड़काव से पहले यह पता लगाना जरूरी है कि हवा की दिशा क्या है। इसके बाद जिस दिशा से हवा आ रही है उसके दूसरे छोर से छिड़काव शुरू करना चाहिए।

छिड़काव के समय मौसम संबंधी सावधानियां: कीटनाशक रसायनों के छिड़काव के समय मौसम का अनुकूल होना अति आवश्यक है अन्यथा कीटनाशक व्यर्थ ही चला जाएगा। छिड़काव के समय निम्न प्रकार का मौसम अनुकूल माना जाता है।

1.छिड़काव के समय कभी भी तेज हवा नहीं होनी चाहिए। तेज हवा के कारण बूंदें अपने निर्देशित स्थान से भटक कर दूसरे स्थान में चली जायेंगी। 2.वातावरण का तापमान व धूप अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा रसायन की बूंदें वाष्प बन कर उड़ जाएंगी। सायं का समय छिड़काव कार्य के लिये सर्वोत्तम होता है क्योंकि इस समय वातावरण का तापमान, धूप व हवा की गति कम होती है। 3.यदि वर्षा आने वाली हो तो छिड़काव कदापि न करें। यदि छिड़काव के बाद वर्षा होती है तो कीटनाशक पदार्थ वर्षा जल से धुल जाएगा। 4.सर्दियों में सुबह के समय अधिक ओस रहती है ऐसे समय में भी छिड़काव नहीं करना चाहिये। इससे कीटनाशक ओस की बूंदों के साथ मिल कर जमीन पर गिर जायेगा जिस से पत्तियों पर बैठे कीड़े नहीं मरेंगे।

(स) कैसे बचें ट्रेक्टर दुर्घटनाओं से * चलने से पहले जांच करें की ट्रेक्टर के ब्रेक, स्टीयरिंग, क्लच एवं लाइट ठीक प्रकार से कार्य कर रहे हैं। * चालक सभी सड़क चिन्हों से परिचित व मान्य ड्राईविंग लाइसेंस युक्त होना चाहिए। * ओवर स्पीड व ओवर लोडिंग से बचें। * नशा, बीमारी, अधिक थकान, क्रोध या आवेश की स्थिति में ट्रेक्टर न चलावें। * चढ़ाई या उतार में कभी भी गियर को न्यूट्रल न करें। * सड़क पर चलते समय दोनों ब्रेक साथ-साथ लगने चाहिए। * सामान्य अवस्था में कभी भी डिफरेंषियल को लोक न करें। * मोड़ पर स्पीड कम रखें। * पार्किंग हमेशा समतल जगह पर व पार्किंग ब्रेक लगाकर ही करें। * ट्रेक्टर स्टार्ट करने से पूर्व गियर को न्यूट्रल करें। * ट्रेक्टर पर कम गति वाले वाहन वाला एम्बलेम लगाना चाहिए। * ट्रेक्टर ईजन को चालू हालात में छोड़कर कहीं भी न जाएं। * नालों या खाई के किनारे पर ट्रेक्टर न चलावें। * चलते हुए ट्रेक्टर से न उतरे न चढ़े। * ट्रेक्टर हाइड्रोलिक से उठाए गए यंत्र के नीचे झुककर या लेटकर कार्य न करें। * चालू या गर्म इंजन में डीजल न भरें। * क्लच और ब्रैक पेडल पर पैर रखकर न चलावें।

(द) कृषि कार्य के दौरान ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बातें * यदि आदमी या जानवर बिजली के तार से चिपक जाता है तो उसे सिर्फ सूखी लकड़ी से या रस्सी से पकड़ कर ही दूर करना चाहिए। * खेत पर निकलते समय पैरों में जूते सिर पर टोपी या साफा जरुर बांधे। * वर्षा या ग्रीष्मकाल की फसल में खेत में जाते समय हाथ में एक छड़ी जरुर रखें। * बेकार पड़े ट्यूबवेल व कुएं को खुला न छोड़ें। * सुलगती हुई बीड़ी, सिगरेट अथवा माचिस की तीली इधर-उधर न फेंकें। * नशे अथवा बीमारी की अवस्था में कृषि कार्य न करें। * कभी भी बिजली के तार को नंगे हाथों से न छुऐं एवं किसी प्रकार के विद्युत समायोजन बिना किसी उचित उपकरण के न करें। * गर्मी में कभी खाली पेट न रहें तथा पानी साथ लेकर चलें। * यदि तैरना नहीं आता हो तो कदापि कुएं में न उतरें। * कुएं में उतरते समय कभी भी बिना रस्सी बांधे न उतरें। लंबे समय से बंद कुएं में उतरने से पहले कुएं में ऊपर से करीब 4-5 बाल्टी पानी फैलता हुआ डालें जिससे यदि कुएं में कोई जहरीली गैस होगी तो वह पानी के साथ घुलकर नीचे बैठ जाएगी। कुएं के अन्दर धूम्रपान न करें। * चालू ईजन की स्थिति में पंप के पट्टे के तनाव का समायोजन न करें। बड़े खिलहानों में अग्निशामक यंत्र जरुर होना चाहिए। फर्स्ट एड बाक्स हमेशा साथ रखा जाएं। कभी भी कृषि कार्य कमर के बल झुककर न करें तथा यदि कोई भार उठाना पड़े तो उसे भी बैठकर सीधे पैरों के बल उठाना चाहिए। ध्यान रहे सभी चीजें फिर से मिल सकती है लेकिन शरीर का कोई भी अंग खो जाता है तो फिर से नहीं मिलता।

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यदि कृषि कार्य किया जाएगा तो न सिर्फ दुर्घटनाओं का बचाव होगा वरन कृषि कार्य भी सुगमता से संपन्न होंगे। मानव जीवन व मानव अंग बहुमूल्य है। अतः जरा सी लापरवाही से इन्हें न गंवाएं। ध्यान रहे कि शरीर के किसी भी अंग की क्षति होने पर आप उसे पुनः नहीं पा सकते।

राजस्थान की जलवायु क्षेत्रों में सब्जियों की संरक्षित खेती

अनिता सैनी (शोध छात्रा) उद्यान विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

दीपक कुमार सैनी (फार्म मैनेजर) कृषि महाविद्यालय, कोटपूतली

भारत दुनिया में सब्जी उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। हमारे सब्जियों के उत्पादन में पिछले दो-तीन दशक में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन आज भी हमारी अधिकांश सब्जियों की उत्पादकता विश्व औसत उत्पादकता से काफी कम है। संरक्षित खेती का मुख्य उद्देश्य सब्जी फसलों को मुख्य जैविक और अजैविक घटकों से बचाकर स्वच्छ और स्वस्थ उत्पादन देना है। राजस्थान का भौगोलिक क्षेत्र का दस प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्र और छह प्रतिशत मरूस्थल है। यहाँ की जमीन ऊँची-नीची एवं जोतों का आकार छोटा साथ ही औसत वार्षिक वर्षा कम है। इस तरह की परिस्थितियों में संरक्षित खेती को अपनाकर किसान उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं। हमारे देश में सब्जियों की खेती खुले वातावरण में की जाती है और कृषकों ने अभी भी परंपरागत तरीकों व प्रक्रियाओं का प्रयोग किया है, जो सब्जियों की कम उत्पादकता व कम गुणवत्ता का मुख्य कारण है। वातावरण में कई जैविक और अजैविक कारकों से सब्जी फसलों को बहुत नुकसान पहुँचता है। इन जैविक कारकों में मुख्यतः विभिन्न प्रकार के विषाणु रोग, वायुजनित कवक, कई प्रकार के कीट और भूजनित आदि शामिल हैं। तापमान, आर्द्रता और प्रकाश अजैविक कारकों में सबसे महत्वपूर्ण है। इनकी अधिकता या कमी सब्जी फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करती है।

राजस्थान में सब्जियों की संरक्षित होती कम होने के कारण

1. किसानों की आर्थिक स्थिति का अच्छा न होना।
2. तकनीक पर अधिक लागत।
3. किसानों में जानकारी का अभाव।
4. कुशल श्रमिकों की आवश्यकता।

संरक्षित खेती की तकनीकियां:

1. प्रो-ट्रे से स्वस्थ और रोगरहित पौधों का उत्पादन।
2. पलवार तकनीक से सब्जियों का उत्पादन।
3. लो-टनल में सब्जियों का उत्पादन।

प्रो-ट्रे द्वारा पौधों का उत्पादनः विश्व के विभिन्न देशों जैसे इजरायल, जापान, कोरिया, चीन और यूरोपीय राष्ट्रों में सब्जियों की पौध प्रो-ट्रे में भू-रहित माध्यम भरकर तैयार की जाती है। यह पौध स्वस्थ रहती है और रोगों को दूर करती है। इन पौधों की जब भूमि में रोपाई की जाती है तो इनका जमाव अधिक होता है और मरने की क्षमता कम रहती है। इसमें इन पौधों की जड़ों को कोई नुकसान नहीं होता है। जो माध्यम हम प्रो-ट्रे में भरते हैं वह माध्यम दो तरह से तैयार किया जाता है। पहला भू-रहित माध्यम बनाते हैं जिसे कोकोपीट, वर्मीकुलाइट और परलाइट को 3:1:1 के अनुपात में मिलाकर बनाते हैं। दूसरा माध्यम ग्रामीण स्तर पर उपलब्ध सामग्री से तैयार करते हैं। उसमें बराबर मात्रा में वर्मी कम्पोस्ट या सड़ी हुई गोबर की खाद, जंगलों से गिरी हुई सूखी पत्तियों की खाद और उपजाऊ खेत की मिट्टी मिलाकर भरते हैं। किसानों को बहुत फायदा होता है और यह माध्यम बहुत अच्छा और सस्ता पड़ता है। प्रो-ट्रे का आकार सब्जी फसलों पर निर्भर करता है। बैंगन, टमाटर और समस्त कद्दूवर्गीय सब्जियाँ 18 से 20 घन से.मी. आयतन वाली प्रो-ट्रे होनी चाहिए। 8 से 10 घन से.मी. आयतन वाली प्रो-ट्रे फूलगोभी, शिमला मिर्च, सलाद, पार्सले और सैलरी में होनी चाहिए। प्रो-ट्रे में माध्यम भरने के बाद, एक खाने में बीज डालते हैं। फिर तैयार माध्यम को प्रो-ट्रे के ऊपर एक पतली तह के रूप में लगाते हैं। इसके बाद पारदर्शी पॉलीथीन उसके चारों ओर लगाया जाता है। जब अंकुरण समाप्त हो जाता है पारदर्शी पॉलीथीन को निकालकर प्रो-ट्रे को हल्की धूप वाले स्थान पर रखें। इस प्रक्रिया से पौध 25 से 28 दिनों में तैयार होता है। लतादार सब्जियों की पौध गर्मियों और बरसात में 18 से 20 दिनों में तैयार हो जाती है।

प्रो-ट्रे में पौध तैयार करने के लाभ

1. प्रो-ट्रे माध्यम 8-10 दिन जल्दी पौध को तैयार करता है।
2. पौध स्वस्थ, कीट-मुक्त और निरोग रहती है।
3. पौधों में बीमारी से लड़ने की अधिक क्षमता होती है।
4. प्रो-ट्रे द्वारा पौध तैयार करने में बीजदर को काफी हद तक कम किया जा सकता है।
5. खरपतवार नियंत्रण करना आसान है।
6. पौध खेत पर तैयार ना कर घर पर ही तैयार कर सकते हैं. इससे समय और धन और मजदूरी की भी बचत होती है।

सब्जियों की संरक्षित खेती के लाभ

1. मुख्य जैविक व अजैविक कारकों से फसलों की सुरक्षा करके उत्पादन।
2. उच्च उत्पादकता और गुणवत्ता युक्त उत्पादन किया जा सकता है जो कि खुले वातावरण में करना असंभव ।
3. बे-मौसमी सब्जियों का उत्पादन कर अधिक लाभ।
4. प्राकृतिक संसाधनों का पूरी तरह प्रयोग कर रोजगार का सृजन ।
5. रोग व कीट व्याधियों से बचाव ।

12/2022-23

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और कानूनी प्रवर्तन: न्यूनतम समर्थन मूल्य पर कानून और उसके क्रियान्वयन का विश्लेषण

आशीष कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर),विधि विभाग, APEX UNIVERSITY, (जयपुर, राजस्थान) 302020

परिचय

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक नीति है, जिसका उद्देश्य किसानों को उनकी फसलों के लिए एक सुनिश्चित और उचित मूल्य प्रदान करना है। MSP को भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पाद के लिए निर्धारित किया गया है, ताकि किसान बाजार की अनिश्चितताओं से सुरक्षित रह सकें और उन्हें उनकी मेहनत का उचित मुआवजा मिल सके। यह मूल्य उन फसलों के लिए निर्धारित किया जाता है, जिनकी खरीद सरकारी एजेंसियों द्वारा की जाती है, जैसे कि गेहूं, चावल, दलहन, और तिलहन।

MSP की अवधारणा का मुख्य उद्देश्य किसानों की आय को स्थिर करना और उन्हें उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करना है। हालाँकि, वर्तमान में MSP कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है, जिसके कारण किसानों को अक्सर अपनी फसल को MSP से कम मूल्य पर बेचना पड़ता है। इस स्थिति ने किसानों और कृषि संगठनों के बीच MSP को कानूनी दर्जा देने की मांग को और भी जोरदार बना दिया है। इस परिचय में, हम MSP के महत्व, इसके कानूनी ढांचे, और इसके प्रभावी क्रियान्वयन की चुनौतियों पर विचार करेंगे। MSP की नीति का उद्देश्य केवल आर्थिक सुरक्षा नहीं है, बल्कि यह कृषि क्षेत्र की स्थिरता और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार, रूक्क का कानूनी प्रवर्तन एक आवश्यक कदम है, जो किसानों की भलाई और कृषि विकास को सुनिश्चित कर सकता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य का कानूनी ढांचा: न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का कानूनी ढांचा भारत में कृषि नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लेकिन इसे कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं बनाया गया है। MSP का इतिहास और विकास इस कानून के पीछे के तंत्र और उद्देश्यों को समझने में मदद करते हैं।

MSP का इतिहास और विकास: 1975 में प्रारंभ MSP की अवधारणा 1975 में भारतीय कृषि के विकास को बढ़ावा देने के लिए शुरू की गई थी, जब पहली बार गेहूं और चावल हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किया गया। कृषि उत्पादन और सुरक्षा: इसका उद्देश्य किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य सुनिश्चित करना और कृषि उत्पादकता को बढ़ावा देना है।

कानूनी ढांचा:

कानूनी दर्जा नहीं: वर्तमान में, MSP को एक कानूनी प्रावधान के तहत नहीं रखा गया है, बल्कि यह सरकारी नीति का हिस्सा है। इसका मतलब है कि सरकार MSP पर फसल खरीदने के लिए बाध्य नहीं है, और निजी खरीदारों को MSP का पालन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

राज्य सरकारों की भूमिका: विभिन्न राज्य सरकारें MSP को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, लेकिन MSP की खरीद के लिए कोई कानूनी दायित्व नहीं होता है। इससे यह सुनिश्चित करने में मुश्किलें आती हैं कि सभी किसानों को MSP का लाभ मिले।

सुधारों की आवश्यकता:

कानूनी दर्जा देने की मांग: कई किसान संगठन और कृषि विशेषज्ञ रूक्क को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाने की मांग कर रहे हैं, ताकि सभी खरीदारों को MSP से नीचे खरीदने पर प्रतिबंधित किया जा सके।

आवश्यक नीतिगत सुधार: MSP के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु नीतिगत सुधारों की आवश्यकता है, जैसे कि खरीद और भंडारण तंत्र को मजबूत करना, ताकि सरकार सुनिश्चित कर सके कि किसानों को उनकी उपज का न्यूनतम मूल्य मिले।

कानूनी प्रवर्तन के लाभ

1.किसानों की आर्थिक सुरक्षा: MSP को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाने से किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य सुनिश्चित होगा, जिससे उन्हें अपनी मेहनत का वाजिब मुआवजा मिलेगा और उनकी आय में स्थिरता आएगी।

2.बाजार में अस्थिरता का सामना: कानूनी प्रवर्तन से किसानों को बाजार की अस्थिरता से बचाने में मदद मिलेगी, क्योंकि सरकार उनकी फसलों को MSP पर खरीदने के लिए बाध्य होगी। इससे कृषि क्षेत्र में निवेश और उत्पादन को बढ़ावा मिलेगा।

3.कृषि विकास में प्रोत्साहन: जब किसानों को उनकी फसलों के लिए एक सुनिश्चित न्यूनतम मूल्य प्राप्त होगा, तो वे अधिक उत्पादकता और गुणवत्ता पर ध्यान देंगे, जिससे कृषि विकास को बढ़ावा मिलेगा।

4.सामाजिक और आर्थिक न्याय: कानूनी प्रवर्तन से छोटे और सीमांत किसानों के अधिकारों की रक्षा होगी, जिससे उन्हें भी विकास की मुख्यधारा में लाया जा सकेगा और समाज में समानता स्थापित होगी।

5.सुधार और पारदर्शिता: कानूनी ढांचे के माध्यम से MSP की प्रक्रिया में सुधार और पारदर्शिता आएगी, जिससे सभी हितधारकों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होगा।

कानूनी प्रवर्तन की चुनौतियां

1.व्यवहारिक कार्यान्वयन: MSP को कानूनी रूप से लागू करना एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें खरीद और भंडारण की उचित व्यवस्था, संसाधनों की उपलब्धता, और सरकारी खर्च की समस्या शामिल है।

2.राजनीतिक दबाव: MSP को कानूनी रूप से लागू करने में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी हो सकती है, जिससे किसान आंदोलन और विरोध प्रदर्शन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

3.निजी क्षेत्र का प्रतिरोध: यदि MSP को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाया जाता है, तो निजी खरीदारों की रुचि में कमी आ सकती है, जिससे बाजार में प्रतिस्पर्धा प्रभावित हो सकती है।

4.अन्य नीतियों के साथ समन्वय: MSP को कानूनी रूप से लागू करते समय अन्य कृषि नीतियों और योजनाओं के साथ समन्वय आवश्यक है, ताकि किसी भी प्रकार की असंगतता न हो।

5.कानूनी विवाद: MSP के कानूनी प्रवर्तन के कारण विभिन्न हितधारकों के बीच विवाद उत्पन्न हो सकते हैं, जिनका समाधान कानूनी प्रक्रियाओं के माध्यम से करना पड़ेगा, जो समय और संसाधनों की बर्बादी का कारण बन सकता है।

वर्तमान स्थिति और विवाद

1.MSP का कानूनी दर्जा: वर्तमान में, न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) को कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं बनाया गया है, जिसका अर्थ है कि सरकारी एजेंसियों को MSP पर फसल खरीदने के लिए बाध्य नहीं किया गया है। यह स्थिति किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि वे अक्सर अपनी फसल को बाजार में MSP से कम मूल्य पर बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

2.किसान आंदोलन: पिछले कुछ वर्षों में, रूक्क को कानूनी दर्जा देने की मांग को लेकर कई बड़े किसान आंदोलन हुए हैं, जिनमें किसानों ने सरकार से स्थायी समाधान की मांग की है। विशेष रूप से, 2020-21 में किसानों का आंदोलन बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण रहा, जिसमें उन्होंने नए कृषि कानूनों का विरोध किया और रूक्क को कानूनी रूप से लागू करने की मांग की।

3.सरकारी प्रतिक्रिया: सरकार ने किसानों की चिंताओं का समाधान करने के लिए कई वार्ताएं की हैं, लेकिन अब तक कोई ठोस कानूनी प्रावधान नहीं किया गया है। सरकार का तर्क है कि रूक्क को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाना कठिन हो सकता है, क्योंकि इससे कृषि बाजार में असंतुलन पैदा हो सकता है।

4.कृषि संगठनों की स्थिति: विभिन्न कृषि संगठन और किसानों के समूह MSP को कानूनी दर्जा देने की जोरदार मांग कर रहे हैं। उनका मानना है कि इससे किसानों को उनकी उपज का न्यूनतम मूल्य प्राप्त होगा और बाजार में अनुचित प्रथाओं से बचाया जा सकेगा।

5.सामाजिक-आर्थिक प्रभाव: MSP पर विवाद केवल आर्थिक पहलुओं तक सीमित नहीं है; इसका सामाजिक प्रभाव भी है। किसानों की आर्थिक स्थिति, उनकी आय, और उनकी जीवनशैली पर रूक्क का प्रभाव सीधा पड़ता है। जब किसानों को उनके फसलों का उचित मूल्य नहीं मिलता, तो यह उनके जीवन स्तर को प्रभावित करता है और सामाजिक असंतोष पैदा करता है।

6.राज्य सरकारों की भूमिका: कुछ राज्य सरकारें रूक्क को लागू करने में बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं, जबकि अन्य राज्य इस मामले में पीछे रह गए हैं। राज्य सरकारों के अलग-अलग दृष्टिकोण भी विवाद का एक कारण बनते हैं, क्योंकि कुछ राज्य MSP को अधिक प्रभावी तरीके से लागू कर रहे हैं जबकि अन्य इससे पीछे हैं।

निष्कर्ष और सिफारिशें: न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) भारतीय कृषि हेतु एक महत्वपूर्ण तंत्र है, जिसका उद्देश्य किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य प्रदान करना है। हालांकि, वर्तमान में MSP कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है, जिसके कारण किसानों को अपनी फसल का न्यूनतम मूल्य प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इस स्थिति ने कई किसान आंदोलनों और विवादों को जन्म दिया है, जिसमें MSP को कानूनी दर्जा देने की मांग की गई है। यदि MSP को कानूनी रूप से लागू किया जाता है, तो यह न केवल किसानों की आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित करेगा, बल्कि कृषि क्षेत्र की स्थिरता और विकास में भी योगदान देगा।

सिफारिशें

1.MSP को कानूनी दर्जा देना: सरकार को रूक्क को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाने पर विचार करना चाहिए, ताकि सभी खरीदारों को इस मूल्य का पालन करने के लिए मजबूर किया जा सके। इससे किसानों को उनकी उपज का न्यूनतम मूल्य प्राप्त होगा।

2.पारदर्शिता और सूचना का वितरण: MSP की प्रक्रिया में अधिक पारदर्शिता लाने के लिए, सरकार को किसानों के बीच सही और समय पर जानकारी पहुँचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे किसानों को अपने अधिकारों और लाभों के बारे में जागरूकता मिलेगी।

3.सामाजिक प्रभाव आकलन (SIA): MSP के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सामाजिक प्रभाव आकलन की प्रक्रिया को मजबूत करना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित होगा कि विभिन्न समुदायों की आवश्यकताओं और चिंताओं को ध्यान में रखा जा सके।

4.कृषि बाजार में सुधार: कृषि बाजार के तंत्र को सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए, ताकि MSP के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधाएं कम हो सकें। इस संदर्भ में, किसानों के संगठनों और निजी क्षेत्र के साथ सहयोग को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है।

5.राज्य सरकारों का सहयोग: राज्य सरकारों को MSP को लागू करने के लिए सक्रिय रूप से कदम उठाने चाहिए। इसके तहत, खरीद, भंडारण और वितरण के लिए बेहतर बुनियादी ढाँचे की स्थापना की जानी चाहिए।

6.किसान संघों और संगठनों का समन्वय: किसानों के संघों और संगठनों को एकजुट होकर MSP के कानूनी प्रवर्तन की मांग हेतु एक सशक्त मंच बनाना चाहिए, जिससे उनकी आवाज को अधिक प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया जा सके।

इन सिफारिशों के माध्यम से, भारत में कृषि नीति को मजबूत किया जा सकता है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और कृषि क्षेत्र में स्थिरता आएगी। MSP का कानूनी प्रवर्तन एक महत्वपूर्ण कदम होगा, जो किसानों के हितों की रक्षा करने और देश की कृषि को सशक्त बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

डॉ. शिरीष शर्मा सहायक प्रोफेसर (कृषि अर्थशास्त्र), एस.के आर.ए.यू., बीकानेर

डॉ. वी.एस. मीना सहायक प्रोफेसर (कृषि अर्थशास्त्र), एस.के.एन. कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

सूक्ष्म सिंचाई : सिंचाई का सबसे कम लागत वाला कुशल तरीका

राजस्थान में सूक्ष्म सिंचाई (माइक्रो इरिगेशन) तकनीक का उपयोग किसानों के लिए लागत में कमी और उत्पादन में वृद्धि का एक प्रभावी उपाय सिद्ध हो रहा है। राज्य सरकार की योजनाओं और सब्सिडी के माध्यम से इस तकनीक को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे किसानों को आर्थिक लाभ मिल रहा है।

सूक्ष्म सिंचाई: लागत में कमी और उत्पादन में वृद्धि

सूक्ष्म सिंचाई तकनीक, जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिस्टम, पारंपरिक सिंचाई विधियों की तुलना में जल उपयोग दक्षता को 70-90% तक बढ़ाती है। इससे न केवल जल की बचत होती है, बल्कि उर्वरकों की खपत में भी कमी आती है, क्योंकि उर्वरकों को पानी के साथ मिलाकर सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जा सकता है।

राजस्थान सरकार की पहलें

राजस्थान सरकार ने सूक्ष्म सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। राजस्थान माइक्रो इरिगेशन मिशन के तहत किसानों को ड्रिप और स्प्रिंकलर सिस्टम स्थापित करने के लिए 70% तक की सब्सिडी प्रदान की जाती है। छोटे और सीमांत किसानों, महिला किसानों और अनुसूचित जाति/जनजाति के किसानों को अतिरिक्त 5त्न सब्सिडी दी जाती है।

सरकार ने हाल ही में इस मिशन को मजबूत करने के लिए रु. 463 करोड़ की राशि स्वीकृत की है, जिससे अगले दो वर्षों में 50,000 किसानों को लाभान्वित करने का लक्ष्य है। इसमें फार्म पॉन्ड्स (डिग्गी) और सिंचाई पाइपलाइनों के निर्माण के लिए भी सहायता प्रदान की जाएगी।

आर्थिक लाभ और लागत-लाभ विश्लेषण

एक अध्ययन के अनुसार, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली अपनाने से किसानों की जल खपत में 70त्न तक की कमी और फसल उत्पादन में 20-90% तक की वृद्धि देखी गई है। इस तकनीक की वापसी अवधि (पे-बैक पीरियड) 2-3 वर्षों में पूरी हो जाती है, जिससे यह एक आर्थिक रूप से लाभकारी निवेश बनता है। ? बिकानेर के इंदिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र में स्प्रिंकलर सिंचाई के प्रयोग से जल आपूर्ति में 26% की कमी के बावजूद खेती का क्षेत्रफल 250% तक बढ़ गया है। इससे नहर प्रणाली की दक्षता 19% से बढ़कर 65% हो गई है।

चुनौतियाँ और समाधान

हालांकि सूक्ष्म सिंचाई तकनीक के कई लाभ हैं, लेकिन इसके व्यापक उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी ज्ञान की कमी, और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएं इसके अपनाने में रुकावट बनती हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार को सब्सिडी बढ़ाने, तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करने, और जागरूकता कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

सूक्ष्म सिंचाई तकनीक राजस्थान के किसानों के लिए जल संरक्षण, लागत में कमी, और उत्पादन में वृद्धि का एक प्रभावी साधन है। सरकार की योजनाओं और सब्सिडी के माध्यम से इस तकनीक को अपनाने में मदद मिल रही है। हालांकि, इसके व्यापक उपयोग के लिए और प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि राज्य के सभी किसान इस तकनीक के लाभों का पूर्ण रूप से लाभ उठा सकें।

राजस्थान सरकार ने किसानों को जल संरक्षण और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली पर सब्सिडी प्रदान करने हेतु विभिन्न योजनाएं चलाई हैं। इन योजनाओं के अंतर्गत किसानों को मिनी स्प्रिंकलर, पोर्टेबल स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई संयंत्रों की स्थापना पर आर्थिक सहायता दी जाती है।

प्रमुख योजना: मिनी स्प्रिंकलर संयंत्र योजना

अनुदान (सब्सिडी) विवरण: * लघु, सीमांत, अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और महिला किसानः 75% तक सब्सिडी।

* **सामान्य किसान:** 70% तक सब्सिडी।
* सब्सिडी राशि अधिकतम 5 हेक्टेयर क्षेत्र तक लागू होती है।

पात्रता:

* आवेदक राजस्थान का स्थायी निवासी होना चाहिए।
* कम से कम 0.2 हेक्टेयर सिंचित कृषि भूमि होनी चाहिए।
* भूमि पर सिंचाई के लिए जल स्रोत (जैसे कुआं, नलकूप, पंप आदि) उपलब्ध होना आवश्यक है।?

आवश्यक दस्तावेज

* जमाबंदी नकल (6 महीने से पुरानी नहीं)।
* आधार कार्ड या जन आधार कार्ड।
* सिंचाई स्रोत प्रमाण पत्र।
* मिट्टी और जल परीक्षण रिपोर्ट।
* आपूर्तिकर्ता का कोटेशन।

आवेदन प्रक्रिया

* किसान राज किसान साथी पोर्टल पर ऑनलाइन आवेदन कर सकते हैं।
* आवेदन के साथ आवश्यक दस्तावेज़ अपलोड करने होंगे।
* भौतिक सत्यापन के बाद, सब्सिडी की राशि डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) के माध्यम से किसान के बैंक खाते में जमा की जाएगी।

अन्य संबंधित योजनाएं

* **ड्रिप सिंचाई प्रणालीः** राज्य सरकार द्वारा ड्रिप सिंचाई संयंत्रों पर भी 70% से 75% तक सब्सिडी प्रदान की जाती है।
* **डिग्गी सब्सिडी योजना:** किसानों को खेत में जल टंकी (डिग्गी) निर्माण के लिए रु.3,40,000 तक की सब्सिडी दी जाती है। लघु और सीमांत किसानों को 85% तक सब्सिडी मिलती है।

सहायता और संपर्क

* किसान अपने नजदीकी ई-मित्र केंद्र या कृषि विभाग कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।
* अधिक जानकारी के लिए राज किसान साथी पोर्टल पर विजिट करें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

शैफाली तंवर विद्यावाचस्पति शोधकर्ता
उद्यान विज्ञान विभाग
दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत विद्यावाचस्पति शोधकर्ता
शस्य विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान)

स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे करें

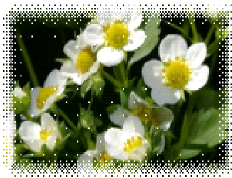
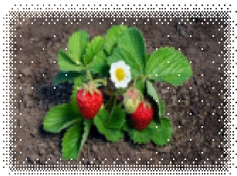

स्ट्रॉबेरी की खेती से सम्बंधित जानकारी: स्ट्रॉबेरी एक स्वादिष्ट हल्का खट्टा मीठा फल है। इसकी खेती अधिक मुनाफे वाली खेती के रूप में की जाती है। भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती को हाइड्रोपॉनिक्स, पॉलीहॉउस और सामान्य तरह से कई तरह की भूमि और जलवायु में भी किया जा रहा है। पूरे विश्व में स्ट्रॉबेरी की लगभग 600 किस्मों को उगाया जाता है, जो स्वाद और रंग में एक दूसरे से बिल्कुल अलग होती है। किन्तु भारत में स्ट्रॉबेरी की कुछ ही किस्मों को उगाया जाता है, जो अलग-अलग जलवायु और भूमि के हिसाब से अधिक पैदावार देती है। इसका फल अधिक नरम और अच्छी खुशबु वाला होता है, जो देखने में बिल्कुल दिल की तरह होता है। यह एक मात्र ऐसा फल है जिसके बीज फल के ऊपरी हिस्से पर लगे होते है।

स्ट्रॉबेरी में विटामिन A, एंटीऑक्सिडेंट, खनिज पदार्थो और प्रोटीन की अच्छी मात्रा पायी जाती है। इसमें मैग्नीशियम, पोटेशियम, फोलिक एसिड, फास्फोरस और कैल्सियम की भी पर्याप्त मात्रा पायी जाती है, जो चेहरे पर निकलने वाले कील मुहासों को कम करने, आँखों की रौशनी को बढ़ाने के साथ साथ दांतो की चमक को भी बढ़ाता है। किसान भाई स्ट्रॉबेरी की खेती कर अधिक लाभ कमाते हैं।

भारत में स्ट्रॉबेरी की कुछ ही उन्नत किस्मों को उगाया जा रहा है, जिन्हे अलग-अलग क्षेत्रों के हिसाब से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तैयार किया गया है। **उन्नत किस्में इस प्रकार है :-** * विंटर स्टार * विंटर डाउन * ब्लैक मोर * सिसकेफ़ * फेयर फाक्स * ओफ्रा * कमारोसा * एलिस्ता * स्वीट चार्ली * चांडलर

स्ट्रॉबेरी के खेती की तैयारी एवं उर्वरक : इसकी खेती में भूमि का मान 5.5 से 6.5 के मध्य होना चाहिए। बलुई दोमट मिट्टी में स्ट्रॉबेरी का उत्पादन अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। पहली जुताई के पश्चात खेत में 75 टन पुरानी सड़ी गोबर की खाद को प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में देना होता है और अच्छी तरह से जुताई कर गोबर की खाद को मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दिया जाता है।खेत में पानी लगा देते है, जब खेत का पानी सूख जाता है, तो उसकी फिर से जुताई कर दी जाती है। इससे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाती है।

पाटा लगाकर खेत को समतल कर दिया जाता है। स्ट्रॉबेरी की खेती में रासायनिक खाद के रूप में 60 KG पोटाश और 100 KG फास्फोरस की मात्रा को प्रति एकड़ के हिसाब से खेत की आखरी जुताई के समय देना होता है। फिर बीजो की रोपाई खेत में कर दी जाती है, और सिंचाई के माध्यम से घुलनशील उर्वरक हो देना होता है। इसके पौधों को अच्छे से विकास करने के लिए 20 से 30 डिग्री तापमान की आवश्यकता होती है।

पौध रोपाई के लिए बेड की तैयारी: इसके लिए खेत में डेढ़ फ़ीट की दूरी रखते हुए 2 फुट चौड़े बेड तैयार कर लिए जाते है। इसके पश्चात् ड्रिप एरिगेशन की पाइपलाइन को बिछा दिया जाता है, और पौधों को लगाने के लिए 20 से 30 CM दूरी पर पाइप में छेदो को बना लिया जाता है। फिर पौधों की रोपाई कर दी जाती है। पौध रोपाई के लिए 10 सितम्बर से 15 अक्टूबर के मध्य का समय अच्छा होता है, तथा तापमान अधिक होने पर पौधों को सितम्बर के अंत तक भी लगाया जा सकता है।

स्ट्रॉबेरी के पौधों की सिंचाई :स्ट्रॉबेरी के पौधों की सिंचाई ड्रिप या स्प्रिंकल विधि द्वारा की जाती है, इससे पौधों को पर्याप्त मात्रा में पानी प्राप्त हो जाता है। स्ट्रॉबेरी के खेत में नमी बनाये रखने के लिए जरूरत के अनुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। इसकी पहली सिंचाई पौध रोपाई के तुरंत बाद कर दी जाती है, तथा फलो के आने से पहले फव्वारे के माध्यम से सिंचाई करते हैं। जब पौधों पर फल आ चुके होते है, तब टपक विधि द्वारा पौधों की सिंचाई कर दी जाती है।

स्ट्राबेरी के पौधों पर लगने वाले रोग एवं उपचार: स्ट्रॉबेरी के पौधों पर भी कई तरह के रोग देखने को मिल जाते है। यदि इन रोगो की रोकथाम समय पर नहीं की जाती है, तो पैदावार में अधिक प्रभाव देखने को मिलता है।

1.पत्ती धब्बा रोग

लक्षण: इस रोग के होने पर स्ट्रॉबेरी की पत्तियों पर गहरे बैंगनी रंग के धब्बे बनने लगते हैं, जो धीरे-धीरे बढ़कर 3-6 मिमी के भूरे या सफेद रंग में परिवर्तित हो सकते हैं। इसकी वजह से पत्तियां टूटकर गिरने लगती हैं।

उपाय: खेत की हल्की सिंचाई करें और संक्रमित पत्तियों को पौधों से हटाकर नष्ट कर दें। फफूंद को खत्म करने के लिए मैंकोजेब या हेक्साकोनाजोल का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

2. ग्रे मोल्ड

लक्षण: यह रोग स्ट्रॉबेरी के फूलों, फलों और तनों पर नजर आता है। इससे फल सड़ने लगते हैं और सफेद-भूरे रंग की फफूंदी लग जाती है।

उपाय: सबसे पहले प्रभावित पौधे को हटाकर खेत से बाहर कर दें। अधिक नमी और घनी रोपाई से बचें और मैंकोजेब या हेक्साकोनाजोल का छिड़काव करें।

3.रेड स्टेल/रेड कोर रोग

लक्षण: इस रोग के लगने पर पौधों की जड़ें अंदर से लाल हो जाती हैं, जिससे जल संचरण पर असर पड़ता है और पौधे मुरझाकर मर जाते हैं।

उपाय: पौधा लगाते समय खेत में जल निकासी की उचित व्यवस्था करें। संक्रमित पौधों को हटाकर हेक्साकोनाजोल का छिड़काव करें।

4.विल्ट रोग

लक्षण: इस रोग के होने पर पौधे अचानक मुरझाने लगते हैं। इसकी पत्तियां पीली होकर झड़ जाती हैं और छोटे फल गिरने लगते हैं।

उपाय: खेत में जलभराव से बचें. कार्बेन्डाजिम या हेक्साकोनाजोल का घोल बनाकर मिट्टी में सिंचाई करें।

5.पाउडरी मिल्ड्यू

लक्षण: इसमें पत्तियां ऊपर की ओर मुड़ने लगती हैं और बैंगनी रंग के धब्बे बन जाते हैं। प्रभावित फल सफेद रंग के चूर्ण जैसे कवच से ढक जाते हैं।

उपाय: पौधों की उचित दूरी पर रोपाई करें, जिससे वायु संचार बना रहे। इसके साथ ही सल्फर आधारित फफूंदनाशक का छिड़काव करें।

6.अल्टरनेरिया स्पॉट रोग

लक्षण: इस रोग में स्ट्रॉबेरी की पत्तियों पर गोल, लाल-बैंगनी धब्बे दिखाई देते हैं, और पत्तियां समय से पहले गिरने लगती हैं।

उपाय: रोगग्रस्त पत्तियों को नष्ट करें और मैंकोजेब या किसी अन्य फफूंदनाशक का छिड़काव करें।

7.एन्थ्रेक्नोज

लक्षण: इसमें पौधे की पत्तियों, तनों और फलों पर काले धब्बे बन जाते हैं जिसके बाद फल गलकर गिर जाते हैं।

उपाय: स्ट्रॉबेरी की खेती करते समय इस बात का ध्यान रखें कि पौधों के आसपास हमेशा सफाई बनी रहे। रोग होने पर हेक्साकोनाजोल या मैंकोजेब का छिड़काव करें।

8.क्राउन रॉट

लक्षण: इस रोग में पौधे दोपहर के समय मुरझा जाते हैं और शाम को ठीक हो जाते हैं। इसकी जड़ों में लाल-भूरे रंग की सड़न दिखने लगती है।

उपाय: खेत में जल निकासी सुधारें और हेक्साकोनाजोल का छिड़काव करें।

9.एंगुलर लीफ स्पॉट

लक्षण: पत्तियों की निचली सतह पर छोटे पानी से भरे फफोले दिखाई देते हैं, जो रोग के बढ़ने के साथ ही लाल रंग के धब्बों में बदल जाते हैं।

उपाय: ऐसे पौधों को जड़ से उखाड़कर फेंक दें।

स्ट्रॉबेरी के फलो की तुड़ाई: स्ट्रॉबेरी के पौधों पर लगे फल का रंग जब 70 प्रतिशत तक आकृषक दिखाई देने लगे उन दौरान फलो की तुड़ाई कर ली जाती है। इसके फलो की तुड़ाई अलग-अलग दिनों में की जाती है। फलो की तुड़ाई के समय उन्हें कुछ दूरी पर डंडी के साथ तोड़ना होता है ताकि फलो में हाथ न लगे। इसके बाद फलो की पैकिंग प्लास्टिक की प्लेटो में करना काफी अच्छा होता है। पैकिंग के पश्चात् उन्हें हवादार जगह पर रखना होता है, जहा का तापमान 5 डिग्री के आसपास होना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी की पैदावार और लाभ: स्ट्रॉबेरी की अलग- अलग किस्मों से भिन्न- भिन्न पैदावार प्राप्त होती है। सामान्य तौर पर इसके एक पेड़ से 800 से 900 GM तक फल प्राप्त हो जाते है जिससे किसान भाई को एक एकड़ के खेत से 80 से 100 क्विंटल का उत्पादन प्राप्त हो जाता है। स्ट्रॉबेरी का बाज़ारी भाव 300 से 600 प्रति किलो तक होता है, जिससे किसान भाई इसकी एक बार की फसल से अधिक मात्रा में लाभ कमाते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

रंजु कुमारी सह-प्राध्यापक (पौधा प्रजनन एवं आनुवांशिकी), बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

अनिल कुमार सिंह वरीय वैज्ञानिक एवं प्रधान, कृषि विज्ञान केन्द्र, वैशाली, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि वि.वि., पूसा, समस्तीपुर, बिहार

सुभाष चन्द्र सह-प्राध्यापक (कृषि यांत्रिकी एवं शक्ति अभियांत्रकी) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

माला कुमारी सहायक प्राध्यापक (पौधा प्रजनन एवं आनुवांशिकी) बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

कम लागत अधिक मुनाफा-अपनाएं फूलगोभी की उन्नत खेती

गोभीवर्गीय सब्जियों में फूलगोभी एक महत्वपूर्ण सब्जी की फसल है। इसकी खेती मुख्य रूप से श्वेत, अविकसित व गठे हुए पुष्प पुंज (फूलयाकर्ड) के लिए की जाती है। जिसका प्रयोग सब्जी, सूप, अचार, बिरयानी, पकौड़ा इत्यादि बनाने में किया जाता है। यह प्रोटीन, कैल्शियम तथा विटामिन सी की भी अच्छी स्त्रोत है। इसमें फूल बनने के लिए आवश्यक तापमान के आधार पर फूलगोभी की प्रजातियों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाँटा गया है जैसे अगेती, मध्यमी एवं पछेती(स्नोबाल)

भूमि एवं इसकी तैयारी: इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली जीवांश युक्त गहरी दोमट या बलुई दोमट भूमि अच्छी होती है। फूलगोभी की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खेत की मिट्टी अच्छी प्रकार से तैयार करनी चाहिए। इसके लिए 3-4 जुताईयाँ करके पाटा लगा देना चाहिए।

उन्नत किस्में:

अगेती किस्में (20-27 डिग्री सेन्टीग्रेड) : काशी क्वारी, पूसा दीपाली, अर्ली क्वारी, पूसा कातिकी, पूसा अर्ली सिंथेटिक, पूसा कार्तिक संकर, पूसा मेघना, पंत गोभी-3, वीआरसीएफ-861 मध्यमी किस्में (16-20 डिग्री सेन्टीग्रेड)

काशी गोभी-25, इम्प्रूव्ड जापानी, पंतगोभी-4 पूसा शरद, पूसा अगहनी, पूसा शुभ्रा, पूसा हाइब्रिड-2, पूसा हिमज्योति, पूसा सिंथेटिक।

पछेती/स्नोबल किस्में(10-16 डिग्री सेन्टीग्रेड)

स्नोबल-16, पूसा स्नोबल, के-1, काला पत्ता, पूसा स्नोबल-21

संकर प्रजातियाँ : एम-55, मधुबनी, अमेजिंग, माधुरी, रेमी, हेमा, सैरानो, समर क्वीन, समर किंग, पावस, पूसा कार्तिक संकर, पूसा हाइब्रिड-2

खाद एवं उर्वरक: एक हेक्टेयर खेत में 20-25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद अंतिम जुताई के समय खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अलावा 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस व 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की आधा मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई या रोपण से पूर्व खेत में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए तथा नत्रजन की शेष आधी मात्रा दो बराबर भागों में बाँटकर खड़ी फसल में 30 व 45 दिन बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए।

बीज बुआई एवं रोपण: फूलगोभी के पौधशाला में बीज की बुआई व पौध रोपण का उचित समय इनकी विभिन्न परिपक्वता ग्रप पर निर्भर करता है। अगेती किस्मों की बीजों की पौधशाला में बुआई मई माह में प्रारंभ कर देनी चाहिये इनके रोपण का उपयुक्त समय जुलाई का प्रथम सप्ताह है। मध्यम मौसमी किस्मों की बीज की बुआई जुलाइ के प्रथम सप्ताह से अगस्त के प्रथम सप्ताह तक किस्मों के अनुसार करते है तै।। रोपण सितम्बर के दूसरे सप्ताह तक करत हैं। इसी प्रकार पछेती किस्मों के बीजों की बुआई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में तथा रोपण नवम्बर माह में करते हैं।

बीज दर: अगेती किस्मों के लिए 600-700 ग्राम और मध्यमी व पछेती किस्मों का बीज दर 350-400 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर के लिए आवश्यक होती है।

पौधशाला की तैयारी एवं बीज की बुआई: एक हेक्टेयर की फसल लगाने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मीटर चौड़ी व 20-25 सेमी ऊपर उठी हुई 25 क्यारियाँ तैयार कर लें। क्यारियाँ तैयार करने के बाद थिरम या कैप्टान 5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर क्यारी का नम कर दें। बीज शोधन थीरम या कैप्टाफ या कैप्टान द्वारा 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा बीज की दर से करके इन क्यारियों में लगभग 5 सेमी की दूरी पर पंक्तियाँ में बुआई करें पंक्तियों में 0.5 सेमी की गहराई पर बुआई इस प्रकार करें कि एक जगह पर एक ही बीज पड़े। बीज को सड़ी हुई गोबर की भुरभरी खाद एवं बालू की समान मात्रा मिलाकर ढ़क देवें और फुहारे से आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। इस प्रकार लगभग 4 सप्ताह में पौध रोपाई योग्य तैयार हो जाते हैं।

पौध रोपण : अगेती किस्मों का रोपण कतार से कतार 40 सेटीमीटर पौधे से पौधे 40 सेटीमीटर तथा की दूरी पर करते हैं। परंतु मध्य मौसमी व पिछेती किस्मों में कतार से कतार की दूरी 45-60 सेटीमीटर व पौध से पौध की दूरी 45 सेन्टीमीटर रखते हैं। रोपण के तुरन्त बाद पौधों को फुआरे से सिंचाई करनी चाहिए। यदि खेत में पानी रूकने की सम्भावना हो तो अगेती फूलगोभी का रोपण मेड़ों या उपर उठी हुई क्यारियों पर करना अच्छा होता है।

अंत:सस्य क्रियायें: फूलगोभी में पौध रोपण से लेकर फूल तैयार होने तक दो या तीन निकाई-गुड़ाई करने से खरपतवार की रोकथाम हो जाती है। रासायनिक खरपतवारनाथी जैसे स्टाप 3.3 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पूर्व छिड़काव काफी लाभप्रद होता है। चूंकि फूलगोभी उथले जड़वाली फसल है अत: पौधों की जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाने से पौधे सुरक्षित रहते हैं और गिरते नहीं।

सिंचाई : पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी का होना अत्यंत आवश्यक है। सितम्बर के बाद 10-15 दिन एवं ग्रीष्म ऋतु में 5-7 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

सूक्ष्मतत्वों का महत्व: फूलगोभी में सूक्ष्म तत्वों के प्रयोग से उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होता है। इसमें बोरान एवं मालीब्डेनम प्रमुख है।

* बेरान की कमी से गोभी का फूल हल्का भूरे रंग का हो जाता है जो खाने में कड़वा लगता है। बचाव के लिए बोरेक्स 15 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से अन्य उर्वरकों के साथ खेत में डालें। यदि फसल पर बोरेक्स का पर्णीय छिड़काव (2-5 ग्राम प्रति लीटर पानी) करें तो गुणवत्ता वाले फूल प्राप्त होते हैं।

* मालीब्डेनम की कमी से पत्तियों में हरे रंग की कमी हो जाती है और वे किनारे से पतले हो जाते हैं एवं नयी पत्तियां विकृत हो जाती हैं। इससे बचाव के लिए 2.0 किलोग्राम अमोनियम मालीब्डेनम प्रति हेक्टेयर या 0.2-0.3 ग्राम/लीटर पानी से पर्णीय छिड़काव का प्रयोग करने पर गोभी के आकार गुणवत्ता व विटामिन सी में वृद्धि होती है।

कटाई: जब गोभी का फूल पूर्ण विकसित व सामान्य आकार ग्रहण कर ले तब कटाई करें। देर से कटाई करने पर फूल का रंग पीला पड़ने लगता है और फूल ढ़ीले पड़ने लगते हैं जिससे बाजार भाव घट जाता है।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार
खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335
01/2023-24

कृषि उत्पादों का फसलोत्तर प्रबंधन और मूल्य संवर्धन: नवीनतम तकनीकी उपाय

डॉ. दिनेश रजक, डॉ. विशाल कुमार
डॉ. देवेन्द्र कुमार
प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग,
कृषि अभियंत्रण एवं प्रौधोगीकी महविद्यालय
डॉ. रा. प्र. कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर, बिहार

परिचय

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की आय को बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए फ़सलोत्तर प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धन अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू बन गए हैं। परंपरागत रूप से, किसान केवल फसल उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते रहे हैं, जबकि कटाई के बाद की प्रक्रियाओं की उपेक्षा के कारण काफी मात्रा में उत्पाद खराब हो जाता है या कम मूल्य पर बिक जाता है। फ़सलोत्तर हानि (Post-Harvest Loss) से न केवल किसान की आय घटती है, बल्कि यह संपूर्ण कृषि आपूर्ति श्रृंखला को भी प्रभावित करती है।

वर्तमान समय में, नवीनतम तकनीकी उपायों जैसे कि आधुनिक भंडारण तकनीकें, शीत श्रृंखला (Cold Chain) प्रबंधन, स्वचालित ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग, खाद्य प्रसंस्करण, और डिजिटलीकरण जैसे उपायों ने फ़सलोत्तर हानियों को कम करने और उत्पादों के मूल्य संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन तकनीकों के माध्यम से न केवल कृषि उत्पादों की गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ बढ़ाई जा सकती है, बल्कि उन्हें घरेलू और वैश्विक बाजारों में बेहतर दाम भी मिल सकते हैं।

यह शोध/अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि किस प्रकार आधुनिक तकनीकों को अपनाकर किसान और कृषि उद्यमी अधिक लाभ कमा सकते हैं, संसाधनों की बर्बादी को रोका जा सकता है और सतत कृषि विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

फ़सलोत्तर प्रबंधन (Post-Harvest Management): फ़सलोत्तर प्रबंधन का उद्देश्य कृषि उत्पादों को कटाई के बाद उचित तरीके से संभालना, संग्रहण करना और उन्हें बाजार में बेचना है ताकि उनकी गुणवत्ता बनी रहे और उनका नुकसान न हो। इसमें उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक के यात्रा के दौरान हर चरण में ध्यान दिया जाता है।

फ़सलोत्तर प्रबंधन का महत्व

* 15% से 30% तक की फ़सलोत्तर हानि को रोका जा सकता है।

* किसानों की आय में वृद्धि होती है।

* उपभोक्ताओं को बेहतर गुणवत्ता वाला खाद्य उत्पाद मिलता है।

* निर्यात योग्य कृषि उत्पादों की गुणवत्ता सुनिश्चित होती है।

* कृषि क्षेत्र में स्थायित्व और टिकाऊ विकास को बल मिलता है।

फ़सलोत्तर प्रबंधन की आधुनिक विधियां

1. **कूलिंग और शीतलन तकनीकें (Cooling and Refrigeration Technologies):** कृषि उत्पादों को सही तापमान पर रखने के लिए आधुनिक कूलिंग तकनीकों का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से शीतगृहों (Cold Storage) का इस्तेमाल फल, सब्जियाँ, डेयरी उत्पादों और मांस आदि के लंबे समय तक भंडारण के लिए किया जाता है। इससे इनकी ताजगी बनी रहती है और वे जल्दी खराब नहीं होते।

2. **पैकेजिंग तकनीक (Packaging Technology):** कृषि उत्पादों की पैकेजिंग में सुधार किया गया है ताकि वे अधिक समय तक ताजे रहें। बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग और इंटेलिजेंट पैकेजिंग जैसी नई तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, जो उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए वातावरण को नियंत्रित करती हैं।

3. **स्मार्ट इन्फॉर्मेशन सिस्टम (Smart Information Systems):** कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और वितरण के दौरान ट्रैकिंग और मॉनिटरिंग के लिए स्मार्ट टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया जा रहा है। GPS और IoT (Internet of Things) आधारित सिस्टम्स का उपयोग किसानों और व्यापारियों को फ़सल की स्थिति और गुणवत्ता के बारे में समय पर जानकारी देने में मदद करता है।

4. **ऑटोमेशन और रोबोटिक्स (Automation and Robotics):** फ़सलोत्तर गतिविधियों में ऑटोमेशन और रोबोटिक्स का प्रयोग किया जा रहा है, जैसे कि फल-फूलों की पैकिंग और sorting, ताकि मानवीय त्रुटियाँ कम हों और काम की गति बढ़ सके। इससे लागत कम होती है और उत्पाद जल्दी बाजार में पहुंचते हैं।

मूल्य संवर्धन (Value Addition): मूल्य संवर्धन का उद्देश्य कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार कर उनका बाजार मूल्य बढ़ाना है। यह प्रक्रिया उत्पादों को बेहतर बनाने, उनके पोषण में वृद्धि करने और विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करने का काम करती है।

मूल्य संवर्धन की आधुनिक विधियां

1. **प्रसंस्करण तकनीकें (Processing Technologies):** कृषि उत्पादों को विभिन्न रूपों में परिवर्तित किया जाता है जैसे कि जूस, मुरब्बा, जैम, पाउडर आदि। इन उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए नई और उन्नत प्रसंस्करण तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि फ्रीज़ ड्राईंग (Freeze Drying), हॉट पैकिंग (Hot Packing) और हॉट वॉटर ट्रीटमेंट्स।

2. **उन्नत मांस और डेयरी उत्पाद (Advanced Meat and Dairy Products):** मांस और डेयरी उत्पादों में भी मूल्य संवर्धन की प्रक्रिया होती है। डेयरी उत्पादों को उच्च गुणवत्ता वाली चीज़, घी, पनीर आदि में बदलने के लिए नई तकनीकों का उपयोग किया जाता है। मांस के प्रसंस्करण से तैयार बीफ पैटीज़, सॉसेज, और अन्य पैक्ड मांस उत्पादों की मांग बढ़ रही है।

3. **आधुनिक कृषि उत्पादों की ब्रांडिंग (Branding of Modern Agricultural Products):** उत्पादों को एक विशिष्ट ब्रांड के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनकी पहचान बनती है और उनके लिए एक अलग बाजार तैयार होता है। उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के लिए विशिष्ट पैकिंग और विपणन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है।

4. **नवाचार और कस्टमाइजेशन (Innovation and Customization):** किसानों द्वारा अपनी फसलों का कस्टमाइजेशन और उनके उत्पादन के तरीके में नवाचार किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, जैविक उत्पादों का बढ़ता हुआ चलन, जहां उपभोक्ता की बदलती प्राथमिकताओं के अनुसार, ऐसे उत्पाद तैयार किए जाते हैं जिनकी मांग ज्यादा हो।

5. **नैतिक उपभोग (Ethical Consumption):** मूल्य संवर्धन की एक और विधि है उपभोक्ताओं में नैतिक उपभोग के प्रति जागरूकता बढ़ाना। इसके तहत उत्पादों को ऐसे तरीके से तैयार किया जाता है जो पर्यावरण और समाज के लिए लाभकारी हो, जैसे कि सस्टेनेबल (Sustainable) उत्पादन प्रक्रिया, जहां प्रदूषण और अपशिष्ट को कम किया जाता है।

निष्कर्ष

वर्तमान कृषि परिदृश्य में केवल फसल उत्पादन ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि फ़सल कटाई के बाद के प्रबंधन और मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान देना भी अनिवार्य हो गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसानों को आधुनिक तकनीकी उपायों से जोड़कर प्रशिक्षित किया जाए, तो वे अपनी उपज की गुणवत्ता को बनाए रखते हुए उसे बेहतर मूल्य पर बाज़ार में बेच सकते हैं।

नवीन तकनीकों जैसे कि वैज्ञानिक भंडारण, कोल्ड चेन प्रबंधन, स्वचालित ग्रेडिंग-पैकेजिंग, प्रसंस्करण इकाइयों और डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से न केवल फ़सलोत्तर हानियों में कमी लाई जा सकती है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती दी जा सकती है। इससे किसानों की आय में वृद्धि, खाद्य सुरक्षा में सुधार और कृषि क्षेत्र का सतत विकास संभव है।

इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार, निजी क्षेत्र और कृषि संस्थान मिलकर इन तकनीकों को सुलभ, किफायती और क्षेत्र विशेष के अनुकूल बनाएं, ताकि देश के हर किसान को इसका सीधा लाभ मिल सके।

प्रणव पाण्डेय, प्रदीप कुमार
वीर कुंवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमरांव, बक्सर
विकाश चन्द्र वर्मा
बी.पी.एस.कृषि महाविद्यालय, पुर्णिया
पवन शुक्ला एम.बी.ए.सी. अगवानपुर, सहरसा
बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

छत पर बागवानी

जब बागवानी फसलों का उत्पादन घर के छत पर बनायीं गयी क्यारियों में, गमले में एवं घर के खुले स्थानों जहां धूप अच्छी तरह आती हो में किया जाय तो उसे छत पर बागवानी कहा जाता है। इसमें घर के आसापास की जमीन का उपयोग नहीं किया जाता है, सिर्फ घर के परिधि में आने वाली जमीन का उपयोग करते हैं। छत पर बागवानी करने से न केवल घर की सुंदरता बढ़ती है बल्कि इससे आर्थिक एवं वातावर्णीय लाभ भी प्राप्त होते हैं। छत पर बागवानी से सबसे बड़ा फायदा घर के अंदर का तापमान, गर्मी एवं ठंढक दोनों मौसमों में नियंत्रित रहता है। गर्मी में मकान के अंदर का तापामन लगभग 6-8 डिग्री सेल्सियस कम रहता है। साफ सुथरी ताजी सब्जियां मिलनी शुरू हो जाती हैं। स्वयं के हाथों द्वारा उगाई हुई सब्जियों से एक तो आत्मसंतुष्टी मिलती है एवं उन सब्जियों के स्वाद एवं सुवास की अलग ही अनुभूति होती है । छत पर पक्षियों एवं तितलियों का आना-जाना बढ़ जाता है जिससे छत पर जीवंत माहौल बन जाता है। बागवानी फसलों से ध्वनि प्रदूषण भी कम होता है। यह हवा से होने वाले बीमारियों को भी कम करता है और वातावरण में आक्सीजन की मात्रा को बढ़ाता है। छत पर बागवानी करने के लिए छत की वाटर प्रूफिंग की जाती है जो छत की आयु को करीब-करीब दोगुना बढ़ा भी देती है। अतः इन्ही कारणों से अपने घरों की छतों पर सब्जी उगाकर न सिर्फ प्राकृतिक हरियाली और ताजगी पैदा करनी चाहिए बल्कि अपने घर में सब्जियों का उत्पादन करके अपनी आय भी बढ़ानी चाहिए । छत पर टमाटर, भिंडी, बैंगन, लौकी, कद्दू, मूली, धनिया, करेला, खीरा और पालक आदि सब्जियां आसानी से उगाई जा सकती हैं ।

वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या एवं लोगों में शहरीकरण के प्रति रूझान के कारण शहरों में जमीन की कमी होती जा रही है। शहरों में जनसंख्या के साथ साथ गाड़ियों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है । जिससे प्रदूषण फैल रहा है। ऐसी स्थिति में छत पर बागवानी एक अच्छा विकल्प हो सकता है। बड़े-बड़े मेट्रोपोलिटन शहरों में प्रदूषण काफी बढ़ गया है । जैसे दिल्ली में प्रदूषण के कारण दृश्यता कम हो जाती है और बच्चों के स्कूल तक भी बंद करने पड़ जाते हैं । इस प्रकार छत पर बागवानी के अनेक फायदे हैं । अतः आज के परिवेश में छत पर बागवानी करना एक वक्तिगत लाभकारी उद्यम के रूप में ही नहीं बल्कि पूरे जनमानस समाज के हित में है।

वृद्धि या बढ़वार माध्यम की गहराई एवं पौधों की जड़ो की लम्बाई के आधार पर छत पर बागवानी मुख्यतः दो प्रकर की होती है । पहली जिसमें माध्यम की गहराई 15 से.मी. से कम है और दूसरी जिसमें माध्यम की गहराई 15 से.मी. से ज्यादा है । फसलों का चयन जड़ो की लम्बाई के आधार बढ़वार माध्यम को देखते हुए किया जाता है।

छत पर बागवानी करने हेतु प्राथमिक आवश्यकताएं

1. छत अतिरिक्त वजन लेने में सक्षम होना चाहिए। हल्के वजन की सामग्री जैसे प्लास्टिक, फाइबर, ग्लास, एवं फोम इत्यादि से बने हुए गमलों एवं पाईप आदि का प्रयोग करना चाहिए।

2. पानी एवं नमी को छत एवं उसकी दीवारों तक पहुचने से रोकने के लिए पूरे छत की वाटर प्रूफिंग कराना अतिआवश्यक है अन्यथा नमी नीचे की दीवरों पर पहुँच कर छत को कमजोर कर देगी।

3. छत में अवरोधक परत जरुर होनी चाहिए जो नमी को रोकने एवं तापमान को स्थिर रखने और छत को मजबूती प्रदान करने के लिए होती है। यह पोलिस्तिरिन एवं पालीयुरेथेन से बनती है। यह परत पानी को बाहर निकलने के रस्ते से जोड़ने का भी काम करती है।

4. **जलनिकास परत होनी चाहिए** - यह परत पानी को इकठ्ठा करने एवं बाहर निकालने में सहायक होती है।

5. **जीवोटेक्सतईल परत होनी चाहिए**- यह परत जलनिकास परत एवं पौधे की सतह वाली मिटटी की परत को अलग करती है। पौधे की सतह वाली मिटटी की परत पौधे को पोषक तत्व प्रदान करती है।

6. वाटर प्रूफिंग किये हुए छत को आवश्यकतानुसार विभिन्न क्यारियों में बाँट दिया जाना चाहिए जिससे विभिन्न फसलें एकसाथ उगाई जा सकें।

छत पर बागवानी करने के लिए ध्यान देने योग्य बातें-

* छत की सतह इस प्रकार तैयार करते हैं कि पौधों की जड़ छत पर न पहुँच सकें अन्यथा छत छतिग्रस्त हो सकता है।

* पानी का रिसाव छत पर न हो। पौधों के लिए ऐसी सतह तैयार करना चाहिए जिससे वर्षा का पानी या सिंचाई का पानी सीधे घर के छत के सम्पर्क में न आये। छत पर गमलों को रखने के लिए लोहे के या किसी अन्य धातु के स्टैंड का प्रयोग कर सकते हैं। स्टैंड का प्रयोग करने से पानी छत पर नहीं रुकेगा और हवा तथा धूप लगने के कारण छत पर गिरने वाला पानी जल्द सूख जायेगा जिससे सीलन नहीं होगी, इसके साथ साथ साफ सफाई भी अच्छी तरह से हो सकेगी।

* छत का भार सहने के अनुसार बढ़वार माध्यम- छत पर बागवानी करने के लिए प्राकृतिक एवं कम वजन के बढ़वार माध्यम का प्रयोग करना चाहिए जिससे छत के ऊपर भार कम पड़े । जैसे दू बलुई मिट्टी, एवं अन्य खनिज पदार्थ जो पौधों के बढ़वार में मदद करता हो उसे इस बागवानी के लिए प्रयोग करना चाहिए जैसे परलाइट, वर्मीक्यूलाइट, पीट, कम्पोस्ट इत्यादि को बढ़वार माध्यम में मिलाना चाहिए। बढ़वार माध्यम इस तरह तैयार करना चाहिए जिसमें जल धारण करने की क्षमता एवं वायु प्रवाह की क्षमता समुचित हो।

छत पर बागवानी के लिए पौधो का चयन - पौधों का चयन निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है-

लागत एवं सामानों की उपलब्धता

* **पौधों की जड़ की गहराई-** अलग-अलग बढ़वार माध्यम की गहराई में भिन्न-भिन्न तरह के पौधे को लगाना चाहिए। * वातावरण एवं जलवायु * मकान के भार सहने की क्षमता * पौधों की बढ़वार

* छत पर भार कम से कम होना चाहिए । इसके लिए प्लास्टिक के गमलों का प्रयोग करना चाहिए तथा सीमेंट के भारी-भारी गमले रखने से बचना चाहिए। इस तरह अनायास खर्च से भी बचत होगी।

छत पर टमाटर, भिंडी, बैंगन, पालक इत्यादि आसानी से लगा सकते है। फल फसलों में संतरा, अंगूर, नींबू पपीता और केला भी लगा सकते हैं ।

* बरसात को छोड़कर छत पर रखे पौधों को आमतौर पर दिन में दो बार पानी देने की जरूरत पड़ती है। ऐसी सब्जियां या फल नहीं लगाये जाने चाहिए जिन्हें ज्यादा पानी की जरूरत पड़ती है।

मिट्टी या बढ़वार माध्यमः छतों पर रखे जाने वाले गमलों की मिट्टी जितनी हल्की हो उतना अच्छा होता है । एक भाग दोमट मिट्टी दो भाग गोबर की सड़ी हुई खादए एक भाग रेत और आधा भाग नीम की खली का मिश्रण उत्तम रहता है। बढ़वार माध्यम में वर्मी कम्पोस्ट और कोकोपीट भी उपलब्ध हैं । मिट्टी व रेत की मात्रा आधी करके उनके बदले कोकोपीट व वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग किया जा सकता है । इससे मृदा मिश्रण और हल्का हो जाएगा तथा पानी की उपलब्धता भी बढ़ जाएगी ।

उपयुक्त फसलेंः छत पर सीधी धूप पड़ती है इसलिए ऐसे पौधों का चयन करना चाहिए जो कड़ी धूप झेल सकते हैं । अतः निम्न प्रकार के पौधे आसानी से छतों पर उगाए जा सकते हैं । कैक्टस व सेक्युलेंट या गूदेदार पौधे लेंटाना, फाइकस, बुगेनवीलिया, क्लोरफाइटम, ट्रेडस्केन्टिया, आदि ऐसे पौधे हैं जो आसानी से उगाए जा सकते हैं और इनमे नियमित सिंचाई की आवश्यकता भी कम होती है । छत पर सब्जिया प्लास्टिक के बड़े बड़े गमलों में आसानी से उगाई जा सकती हैं । सर्दियों के मौसम की सब्जियों में धनिया, पोदीना, प्याज, लहसुन, सलाद, मूली, पालक, मेथी आसानी से गमलों में उगाई जा सकती हैं । गर्मियों की सब्जियों में करेला, तोरी व लौकी एवं एनी कद्दू वर्गीय फसलें उगाई जा सकती हैं । गर्मी की सब्जियों के लिए बड़े आकार के गमलों की आवश्यकता होती है ।

पौधों का रोपणः नर्सरी से पौधों को लाने के बाद उनकी रोपाई तत्काल नहीं करनी चाहिए बल्कि एक दो दिन बाद ही उनकी रोपाई गमले या क्यारी में करना चाहिए । पौधा लगाने से पहले पौधे की किस्म व् आकार के अनुसार गमले के साइज का चयन करना चाहिए और उसके बाद गमले के नीचे एक सुराख करके उसके ऊपर किसी टूटे गमले के टुकड़े को रख दिया जाता है जिससे गमले से पानी के साथ मिटटी बाहर नहीं निकलती है। इसके बाद ऊपर दिए गए तरीके के अनुसार मिटटी का मिश्रण तैयार करके पौधे को बैग से निकाल कर इस प्रकार से गमले में लगाया जाता है जिससे पुरानी व सख्त मिटटी पौधे की जड़ों से भी हट जाए और जड़ों को भी कोई नुक्सान न पहुंचे । गमले में मिटटी एक दो इंच कम ही डाली जाती हैं और पौधा लगाने के बाद गमले में पानी अच्छी तरह से दल देना चाहिए । संभव हो सके तो पौधो को शाम के समय ही लगाना चाहिए और एक दो दिन लगाए हुए पौधे को छाया में ही रहने देना चाहिए जिससे वे अच्छी तरह से अनुकूलित हो जायें । दो दिन बाद पौधे को आवश्यकतानुसार उपयुक्त स्थान पर रख दिया जाता है । अगर सब्जियों के बीज बोना हैं तो मिटटी में उचित नमी होनी चाहिए।

सिंचाई : छत पर लगे पौधों की नियमित सिंचाई करना चाहिए और पौधों को उनकी आवश्यकता के अनुसार ही पानी देना चाहिए । ध्यान रहे पौधों में पानी तब ही दिया जाये जब मिटटी सूख जाये । जायदा पानी से भी पौधों की जड़े गल जाती है । पानी को शावर से ही डालना चाहिए और गर्मियों में हफ्ते में दो बार और शर्दियों में हफ्ते में एक बार पौधों की पतियों को पानी से नहला देना चाहिए इससे पौधे स्वस्थ रहते हैं ।

✍ **शिखा भुकल, कांता सभरवाल**
सहायक प्राध्यापक, विस्तार शिक्षा एवं प्रबंधन विभाग, चौ. च. सिंह. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

✍ **अजय कुमार** सहायक प्राध्यापक, बागवानी महाविद्यालय, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल- 132001, (हरियाणा)

शहरी घरों में बागवानी: छोटे स्थान, बड़ा लाभ

शहरी घरों में बागवानी

शहरों में रहते हुए भी प्रकृति से जुड़ने और ताज़ा, पौष्टिक भोजन उगाने की चाह रखने वाले लोगों के लिए शहरी बागवानी एक वरदान से कम नहीं। सीमित जगह पर बाग लगाने के अद्भुत फायदे—चाहे वो बालकनी हो, छत हो या खिड़की—स्वस्थ जीवनशैली, पर्यावरण सुधार और मानसिक सुकून में बड़ा योगदान देते हैं।

1. पोषण, गुणवत्ता और आत्मनिर्भरता

शहरी बागवानी (कंटेनर या छत पर) ताज़ी और ऑर्गेनिक सब्जियाँ, जड़ी-बूटियाँ और फलों की उपलब्धता सुनिश्चित करती है।

* बिना रसायनों की सब्ज़ियाँ, जो कि सामान्य बाजार में मुश्किल से मिलती हैं।
* घर के अंदर या पास लाने वाली यह प्रणाली "फूड माइल्स" को कम करती है, पर्यावरण-अनुकूल भोजन सुनिश्चित करता है।

2. पर्यावरण सुधार और स्वच्छ वायु

* पौध पौधों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड नीट होती है और ऑक्सीजन बढ़ती है, जिससे शहरी वायु प्रदूषण को कम करने में मदद मिलती है।
* छत पर बाग लगाने से गर्मी (rban Heat Island) में कमी आती है—यह इन्सुलेशन कार्य करता है, जिससे घर ठंडा रहता है और बिजली की बचत होती है।

3. मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक असर

मानसिक स्वास्थ्य

बागवानी से तनाव में कमी, आत्म-सम्मान बढ़ना, शांति और मानसिक संतुलन प्राप्त होता है।

शारीरिक स्वास्थ्य

ढेर सारे हल्के शारीरिक कार्य—पानी देना, पौधों की देखभाल—से फिटनेस बनी रहती है, भारी व्यायाम की ज़रूरत कम होती है।

4. सामुदायिक जुड़ाव और सामाजिक उद्भव

?कई लोग छत पर बागबानी को एक सामाजिक गतिविधि मानते हैं—पड़ोसियों से मिलना-जुलना, ज्ञान-विनिमय, साथ मिलकर काम करना।

?बच्चों के लिए सीखने का बेहतरीन प्लेटफ़ॉर्म- पौधों को एक साथ उगाना, पर्यावरणीय शिक्षा और स्वस्थ आदतें विकसित करना।

5. कम जगह में स्मार्ट डिजाइन

* कंटेनर गार्डनिंग में पौधे गमलों या बैग्स में लगाए जाते हैं, आसानी से लागू होने वाला तरीका।
* वर्टिकल गार्डन या ÷सेडाबहार÷ जैसे मॉड्यूलर सिस्टम से ऊँचाई में जगह काम में ली जा सकती है।
* राइज्ड बेड्स से मिट्टी की गुणवत्ता नियंत्रित होती है, जल संरक्षण और घास नियंत्रण बेहतर होता है।

6. जल-संरक्षण व सतत अभ्यास

* बारिश का पानी छत पर इकट्ठा किया जा सकता है, जिससे ड्रेनेज पर बोझ भी कम होता है।
* कम्पोस्टिंग से जैविक खाद बनी जा सकती है, मिट्टी में पोषण भी मिलता है—रासायनिक खादों की जरूरत घटती है।

7. आर्थिक और शिक्षाआधारित लाभ

* थोड़ा समय और लागत में कृषि होती है—बाजार से किनारे रखते हुए खुद की उपज।
* आने वाली पीढ़ी को खाद्य मूल की समझ, पौध संरक्षण और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता सिखाई जाती है।
* कई सरकारी और गैर सरकारी पहल जैसे छत बागवानी प्रशिक्षण, कुशन गार्डन किट उपलब्ध करवाती है।

कदम-दर-कदम शुरू करें: एक आसान मार्गदर्शिका

1.स्थान का मूल्यांकन

* सूर्य की रौशनी, पंखों की स्थिति, वजन सहनशीलता—इनका मूल्यांकन ज़रूरी है।
* गुणात्मक मिक्स, जल निकास वाले हल्के गमले, ताज़ा खाद का प्रयोग करें।

2.पौध चयन

* किचन में अक्सर प्रयोग होने वाली हर्ब्स (पुदीना, तुलसी), टमाटर, मिर्च, हरी पत्ती वाली सब्ज़ियाँ। स्थानीय जलवायु के अनुसार चयन करें।
* ड्रिप सिस्टम से पानी बचाएं। बारिश के पानी का संचयन व वॉर्म कम्पोस्टिंग अपनाएं जैसे बीजामृत, जीवामृत।
* नियमित देखभाल, मौसम के अनुसार छाया-जैसी प्राथमिक व्यवस्था, और समय-समय पर नयी जानकारी।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता: चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
04/2023-24

✍ प्रांजली, कनिका पंवार एवं किरण
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय,
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, करनाल (हरियाणा)

बेल: प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन

बेल एक पवित्र और औषधीय गुणों वाला फलदार वृक्ष है, जो मुख्य रूप से भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में पाया जाता है। यह रूटेसी कुल का पौधा है। बेल के फल का छिलका कठोर होता है और इसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं। आयुर्वेद में इसका विशेष महत्व है। बेल का फल विटामिन, खनिज और जैव सक्रिय तत्वों से भरपूर होता है, जो पाचन को सुधारने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और सूजन को कम करने में सहायक होते हैं। बेल की फल, पत्तियाँ, छाल एवं जड़ औषधीय रूप में उपयोग किए जाते है।

भारत में बेल का महत्व

धार्मिक महत्व: बेल के पत्तों का हिंदू धर्म में विशेष महत्व है। यह भगवान शिव को अर्पित किए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि बेल पत्र अर्पण करने से पुण्य की प्राप्ति होती है और समृद्धि आती है।

औषधीय गुण: आयुर्वेद में बेल को एक शक्तिशाली औषधीय पौधा माना गया है। इसका फल दस्त, कब्ज, और आंतों से संबंधित समस्याओं के उपचार में उपयोगी है। इसकी पत्तियाँ, छाल और जड़ें भी विभिन्न रोगों के उपचार में काम आती हैं।

पोषण संबंधी लाभ: बेल का फल विटामिन A, B और C से भरपूर होता है, साथ ही इसमें एंटीऑक्सीडेंट और फाइबर भी प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं।

आर्थिक महत्व: बेल से शरबत, मुरब्बा, पाउडर आदि जैसे विभिन्न उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं।

पर्यावरणीय योगदान: बेल का पेड़ मजबूत होता है, सूखा सहन कर सकता है और यह पुनर्वनीकरण व मिट्टी संरक्षण में भी सहायक होता है।

बेल का प्रसंस्करण

बेल के फल का प्रसंस्करण विभिन्न उत्पादों के रूप में किया जाता है, जिससे इसका पोषण और औषधीय गुण सुरक्षित रहते हैं। प्रसंस्करण की मुख्य प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं:

फसल की कटाई: जब बेल का छिलका हल्का हरा या पीला हो जाए और हल्की खुशबू आए, तब फल तोड़ा जाता है।

सफाई और छंटाई: फलों को धूल-मिट्टी और अशुद्धियों से साफ करके, खराब या सड़े हुए फलों को अलग किया जाता है।

फल तोड़ना और गूदा निकालना: कठोर बाहरी खोल को हाथ से या मशीन से तोड़ा जाता है। गूदा निकाल कर उससे बीज अलग किए जाते हैं।

गूदे का प्रसंस्करण: गूदे को छानकर रेशों को निकाला जाता है और इसे सीधे उपयोग में भी ला सकते है या इसमें पानी/चीनी मिलाकर विभिन्न उत्पाद बना सकते हैं।

उत्पाद निर्माण

बेल से निम्नलिखित मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए जाते हैं-

बेल शरबत : गूदे को पानी और मीठे के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है।

बेल स्क्वैश/सिरप : गाढ़ा शरबत जिसे संरक्षित किया जाता है।

बेल कैंडी : गूदे को चीनी के साथ पकाकर सुखाया जाता है।

बेल पाउडर : सूखे गूदे को पीसकर हर्बल उपयोग के लिए बनाया जाता है।

बेल जैम, चटनी, टॉफी : पारंपरिक विधियों से तैयार किए जाते हैं।

संरक्षण और पैकेजिंग: बेल से बने उत्पादों मे संरक्षक (जैसे साइट्रिक एसिड, सोडियम बेंजोएट) मिलाए जाते हैं। स्वच्छ वातावरण में उत्पादों की पैकेजिंग की जाती है।

बेल से बने फंक्शनल फूड उत्पाद

बेल एक औषधीय गुणों से भरपूर फल है, जिसमें फाइबर, एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन A, B, C और जैव सक्रिय तत्व पाए जाते हैं। इसके कारण बेल से कई प्रकार के फंक्शनल फूड उत्पाद (ऐसे खाद्य पदार्थ जो पोषण के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करते हैं) बनाए जाते हैं।

1. **बेल का शरबत / हर्बल ड्रिंक:** बेल का शरबत पाचन सुधारने, कब्ज दूर करने और शरीर को ठंडक देने में सहायक है। प्राकृतिक डिटॉक्सिफायर और पाचन टॉनिक के रूप मे स्वास्थ्य को लाभ देता है।
2. **बेल स्क्वैश / सिरप:** एक गाढ़ा स्वास्थ्यवर्धक पेय, जिसे लंबे समय तक संरक्षित किया जाता है। एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर, आंतों के लिए लाभकारी है।
3. **बेल कैंडी:** पोषक तत्वों से युक्त फाइबर युक्त मिठाई। यह पाचन में मददगार और ऊर्जा प्रदान करने वाला है।

बेल पाउडर: इसका इस्तेमाल सप्लिमेंट के रूप में, या स्मूदी, चाय, या दही में मिलाकर किया जाता है और यह कब्ज में राहत, एसिडिटी में लाभ, और रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है।

बेल जैम/चटनी: स्वादिष्ट स्प्रेड जो पौष्टिकता को बनाए रखता है। यह हल्का रेचक, पेट की समस्याओं में लाभकारी है।

बेल आधारित प्रोबायोटिक पेय: बेल के गूदे में प्रोबायोटिक कल्चर मिलाकर बनाया जाता है। यह पाचन तंत्र को सुधारता है और इम्यून सिस्टम को भी मजबूत करता है।

बेल हर्बल चाय: सूखे बेल के टुकड़े या पाउडर को गर्म पानी में उबालकर तैयार की जाती है। सूजन रोधी, पाचन में सहायक और गले की खराश में राहत देता है।

8. **बेल हेल्थ बार/एनर्जी बार:** बेल पल्प को ड्राय फ्रूट्स, ओट्स और बीजों के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। यह उच्च फाइबर, एंटीऑक्सीडेंट और प्राकृतिक ऊर्जा से भरपूर है।

बेल टॉफी/न्यूट्रास्यूटिकल कन्फेक्शनरी: यह औषधीय गुणों वाली स्वादिष्ट मिठाई है। जो बच्चों और वयस्कों दोनों के लिए लाभकारी है।

बेल सिरका/फर्मेंटेड टॉनिक: बेल के रस को किण्वन द्वारा सिरका में बदला जाता है। बेल सिरका पाचन सुधारता है और मेटाबॉलिज़्म को भी बढ़ाता है।

बेल एक अत्यंत उपयोगी और बहुपयोगी वृक्ष है, जो पोषण, औषधीय गुणों और सांस्कृतिक महत्व के कारण विशेष स्थान रखता है। इसके फल, पत्तियाँ, छाल और जड़ें सभी में औषधीय गुण होते हैं और इनका उपयोग सदियों से आयुर्वेद में किया जाता है। बेल में विटामिन, खनिज, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो पाचन तंत्र को सुधारने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और कई बीमारियों में लाभकारी होते हैं। इसके फल से शरबत, कैंडी, पाउडर, जैम, और आइसक्रीम जैसे अनेक मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाए जा सकते हैं। सूखा-सहिष्णु पौधा होने के कारण बेल पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, और इसका व्यावसायिक व कृषि क्षेत्र में भी बड़ा योगदान हो सकता है। अतः बेल एक पवित्र फल ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, पोषण और उद्योग के क्षेत्र में एक बहुपयोगी संसाधन भी है।

02/2023-24

कृषि में नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग

किरण कुमारी जिला विस्तार विशेषज्ञ , कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल

राजपाल यादव जिला विस्तार विशेषज्ञ , कृषि विज्ञान केन्द्र, महेंदरगढ़

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार, (हरियाणा)

पौधों और मनुष्यों दोनों में, एमिनो एसिड बनाने के लिए नाइट्रोजन का उपयोग किया जाता है – जो कोशिकाओं का निर्माण करने वाले प्रोटीन बनाते हैं – और डीएनए के लिए बिल्डिंग ब्लॉकों में से एक है। यह पौधे के विकास के लिए भी आवश्यक है क्योंकि यह क्लोरोफिल का एक प्रमुख घटक है, जिस यौगिक द्वारा पौधे पानी और कार्बन डाइऑक्साइड (प्रकाश संश्लेषण) से शर्करा का उत्पादन करने के लिए सूर्य के प्रकाश ऊर्जा का उपयोग करते हैं।

कृषि में नाइट्रोजन सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व है फसल उत्पादन में नाइट्रोजन सबसे सीमित कारक माना जाता है। नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए यूरिया एक सस्ता विकल्प है। यूरिया का पौधे की आवश्यकता अनुसार प्रयोग करके अधिक लाभ लिया जा सकता है। लेकिन सस्ता विकल्प होने की वजह से और यूरिया के डालते ही तुरंत फसल पर दिखने वाले प्रभाव की वजह से किसान यूरिया का प्रयोग आँख बंद कर के कर रहे हैं जो फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है। हालांकि, नाइट्रोजन उर्वरकों के अनुचित उपयोग से पर्यावरणीय समस्याएं जैसे नाइट्रेट लीचिंग, भूजल का प्रदूषण और नाइट्रस ऑक्साइड गैस का उत्सर्जन होता है।

नाइट्रोजन की कमी के प्रभाव

1. नाइट्रोजन की कमी की वजह से पौधों की बढ़वार रुक जाती है।
2. पौधों पर बनने वाले फूल और फल कम मात्रा में बनते हैं।
3. नाइट्रोजन की कमी की वजह से अनाज वाली फसलों में दाने कम मात्रा में बनते हैं।
4. इसकी कमी की वजह से पौधों की पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती है। जिससे पौधे का विकास रुक जाता है।

नाइट्रोजन की अधिकता के प्रभाव

1. इसकी मात्रा अधिक होने पर फसल की लम्बाई अधिक होने पर बारिश के समय टूटकर गिर जाती है। जिससे पैदावार कम होती है।
2. नाइट्रोजन की मात्रा जमीन में अधिक होने पर सिंचाई की जरूरत ज्यादा होती है और पौधों में सूखे को सहन करने की क्षमता में कमी आती है।
3. इसकी अधिकता होने पर पौधे पैदावार कम देते हैं। और उनका विकास असामान्य रूप से होता है।
4. इसकी अधिकता के कारण पौधों में कई तरह के रोग भी पौधों में लग जाते हैं।

नाइट्रोजन युक्त प्रमुख उर्वरक निम्नलिखित हैं:-

उर्वरक	नाइट्रोजन (प्रतिशत)
यूरिया	46
कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	25 – 26
अमोनियम सल्फेट	20
अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26
कैल्शियम नाइट्रेट	15.5
सोडियम नाइट्रेट	16

यूरिया की नाइट्रोजन उपयोग दक्षता बढ़ने के उपाय

1. बिजाई के समय यूरिया को अन्य उर्वरकों के साथ, बीज से 4-6 सें. मी. नीचे ड्रिल करें।
2. खेतों में देसी खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, जीवाणु खाद आदि का समय समय पर प्रयोग करते रहना चाहिए।
3. दोमट एवं बलुई दोमट ज़मीन में खडी फसल में यूरिया डालने के बाद हलकी सिंचाई करें।
4. कभी भी बीज के साथ मिला कर यूरिया का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
5. यदि दिन का तापमान अधिक हो तो दोपहर बाद यूरिया छिड़कें। ओस पड़ी फसल पर यूरिया का प्रयोग न करें ।
6. लवणीय भूमि में नाइट्रोजन, अमोनिया गैस के रूप में उड़ जाती है ऐसी अवस्था में यूरिया का फॉलोअर स्प्रे ज्यादा लाभप्रद होता है ।

अत्यधिक नाइट्रोजन वाले खेतों की पहचान

1. फसल/ पौधे अत्यधिक हरे दिखते हैं ।
2. पौधे स्वस्थ हो सकते हैं, लेकिन परिपक्व अवस्था आने पर पौधा गिर जाता है।
3. पौधों में रोगों और कीड़े लगने की अधिक संभावना हो जाती है (जैसे बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट, शीथ ब्लाइट, ब्लास्ट, लीफ फोल्डर आदि)
4. इसी तरह के लक्षण फॉस्फोरस की कमी के कारण भी हो सकते हैं जहां पौधों में गहरे हरे रंग की पत्तियां होती हैं। फॉस्फोरस की कमी वाले पौधे कम टिलर पैदा करते हैं और पौधे का विकास रुक जाता है । समस्या के कारण की पुष्टि करने के लिए, खेत की जांच करें और/या किसान से लागू नाइट्रोजन की दर के बारे में पूछें।
5. अत्यधिक नाइट्रोजन "शानदार" वृद्धि का कारण बनता है, जिसके परिणामस्वरूप इन पौधों की तरफ कीड़े और बीमारियाँ आकर्षित होते हैं । अत्यधिक वृद्धि भी तने की ताकत को कम कर सकती है जिसके परिणाम स्वरूप फूल आने और अनाज भरने के दौरान पौधा गिर जाता है।

उर्वरकों को भूमि व फसलों के अनुसार ही प्रयोग करना चाहिए। उर्वरकों की उपयोग क्षमता को बढ़ाने के लिए सबसे जरूरी है कि भूमि में इनकी कमी को पूरा किया जाए। अधिक नाइट्रोजन के प्रयोग से फसल देर से पकती है, दाने की अपेक्षा भूसे के अनुपात में बढ़ोतरी हो जाती है। फसलों का रेशा कमजोर हो जाता है, दाने वाली फसलें गिर जाती हैं और फसल में बिमारियों और कीड़े-मकौड़ों का प्रकोप बढ़ जाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
असम

भारत की GI-पंजीकृत सब्जियां: जैव विविधता, स्थानीय संस्कृति और आर्थिक समृद्धि की त्रिवेणी

राघवेन्द्र एच. आर., राहुल सिंह
वरुण एम. हीरेमठ, सिद्धरूढ़ मरगल
अर्पण भौमिक, रमेश बाबू
चेतन सी. आर., और एल. के. बैश्य
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, असम

भारत, जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के सबसे समृद्ध देशों में से एक है, जहां पृथ्वी की लगभग 10 प्रतिशत प्रजातियां निवास करती हैं। इस असाधारण विविधता के साथ-साथ, भारत की सांस्कृतिक विरासत भी हजारों वर्षों पुरानी और अत्यंत समृद्ध है। यहां की जैव विविधता स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से गहराई से जुड़ी हुई है, जो पारंपरिक ज्ञान, खान-पान, रीति-रिवाज और आजीविका के विविध साधनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

हाल के दशकों में, तीव्र जनसंख्या वृद्धि, जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव और पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गए नियमों के लचर क्रियान्वयन के कारण अनेक बहुमूल्य प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर आ गई हैं। यह स्थिति न केवल खाद्य श्रृंखला और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक है, बल्कि लाखों भारतीयों की आजीविका, स्थानीय संस्कृति और पारंपरिक ज्ञान पर भी गंभीर संकट उत्पन्न कर रही है।

इस संकट से निपटने के लिए आवश्यक है कि समाज में व्यापक जागरूकता पैदा की जाए और जैव विविधता के संरक्षण हेतु प्रभावी कदम उठाए जाएं। इस दिशा में सरकारी कानूनों के कठोर अनुपालन, प्राकृतिक संरक्षण क्षेत्रों की स्थापना, आक्रामक प्रजातियों का नियंत्रण, आवास पुनर्स्थापन, बंदी प्रजनन, बीज बैंकों की स्थापना और जलवायु परिवर्तन से लड़ने जैसी पहलें महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, भौगोलिक संकेतक (Geographical Indication - GI) जैसी व्यवस्थाएं भी अत्यंत प्रभावी हैं, जो स्थानीय उत्पादों की विशिष्टता, गुणवत्ता और पहचान के संरक्षण के साथ-साथ जैव विविधता के संवर्धन और स्थानीय अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भौगोलिक संकेतक (GI)

भौगोलिक संकेतक (GI) वह विशिष्ट संकेत या चिन्ह है जो किसी उत्पाद की भौगोलिक उत्पत्ति को दर्शाता है और यह सुनिश्चित करता है कि उत्पाद की कोई विशेष गुणवत्ता, प्रतिष्ठा या अन्य विशेषता उस विशिष्ट क्षेत्र, स्थान या देश से संबंधित है, जहाँ से वह उत्पन्न होता है। भारत में GI का कानूनी प्रावधान "भौगोलिक संकेतक (पंजीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम, 1999" की धारा 2 के अंतर्गत परिभाषित किया गया है।

GI किसी उत्पाद के नाम, प्रतीकात्मक चिन्ह, मानचित्र या इनके संयोजन के रूप में हो सकता है, जो उस उत्पाद को विशिष्ट पहचान प्रदान करता है तथा उसकी प्रामाणिकता और गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। इसके माध्यम से स्थानीय उत्पादकों को अपने उत्पाद की बाज़ार में विशिष्ट पहचान बनाने और मूल्य वृद्धि प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

भारत में GI संरक्षण क्यों आवश्यक है?

भारत में असाधारण गुणवत्ता और विशिष्टता वाली वस्तुओं की भरमार है, जिनका सीधा संबंध उनके भौगोलिक स्रोत और पारंपरिक उत्पादन विधियों से होता है। ये उत्पाद हमारी सांस्कृतिक और जैविक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इन अमूल्य धरोहरों की रक्षा और उनसे जुड़ी आर्थिक संभावनाओं का लाभ उठाने के लिए GI संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। यदि इन वस्तुओं को सामान्यीकृत (Generic) बनने से रोकना है, तो एक पारदर्शी, निष्पक्ष और मजबूत नियम-आधारित प्रणाली का होना अनिवार्य है।

GI संरक्षण न केवल उत्पाद की प्रामाणिकता को बनाए रखने में सहायक है, बल्कि यह स्थानीय उत्पादकों को बाज़ार में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ भी दिलाता है। इसके माध्यम से पारंपरिक ज्ञान और कारीगरी को भी संरक्षित किया जा सकता है, जिससे ग्रामीण आजीविका और क्षेत्रीय पहचान को बल मिलता है।

भौगोलिक संकेतक का महत्व

1.GI और ग्रामीण अर्थव्यवस्था: अधिकांश GI उत्पाद गाँवों या छोटे कस्बों से संबंधित होते हैं, जिससे इन क्षेत्रों के उत्पादकों की आय बढ़ती है और इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार होता है।

2.GI और उद्योग: भारत के कई पंजीकृत या संभावित GI सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) क्षेत्र से आते हैं, जिससे इन उत्पादों का बाजार विकसित होता है और लाभ में वृद्धि होती है।

3.GI और पर्यटन: GI उत्पाद विशिष्ट क्षेत्रों से संबंधित होते हैं, जिनकी खेती या निर्माण प्रक्रिया पर्यटकों को आकर्षित कर सकती है। खासतौर पर हस्तशिल्प और हथकरघा पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र होते हैं। GI खाद्य पदार्थों या पेयों का स्वाद चखने या अद्वितीय उत्पादों की खरीद के लिए पर्यटक इन क्षेत्रों का दौरा कर सकते हैं, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बल मिलता है।

4.कानूनी महत्व: यह पंजीकृत GI का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अनधिकृत उपयोग को रोकता है। यह भारतीय GI को कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है जिससे निर्यात को भी बढ़ावा मिलता है।

GI पंजीकरण कार्यालय: GI रजिस्ट्री चेन्नई में स्थित है। यह अधिनियम GI रजिस्ट्रार द्वारा प्रशासित किया जाता है, जो पेटेंट और डिज़ाइन के नियंत्रक जनरल होते हैं। पंजीकरण और प्रशासन GI (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 के तहत GI रजिस्ट्री द्वारा किया जाता है।

GI पंजीकरण से पंजीकृत स्वामी और अधिकृत उपयोगकर्ता को उस विशेष वस्तु पर GI का अनन्य अधिकार मिलता है। इससे उत्पादकों को बाज़ार पर एकाधिकार स्थापित करने और उच्च मूल्य वसूलने का अवसर मिलता है। अध्ययनों से पता चला है कि 80% उपभोक्ता ऐसे

उत्पादों के लिए 20-30% अधिक मूल्य देने को तैयार होते हैं, जिन्हें वे बेहतर गुणवत्ता वाला मानते हैं।

पंजीकरण हेतु कौन आवेदन कर सकता है?

कोई भी व्यक्ति जो कृषि वस्तुओं का उत्पादन करता हो, वस्तुओं को प्रसंस्कृत या पैक करता हो, प्राकृतिक वस्तुओं का दोहन करता हो, हस्तशिल्प या औद्योगिक वस्तुओं का निर्माण करता हो या इन वस्तुओं का व्यापार करता हो, GI पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकता है।

GI के अंतर्गत वस्तुओं की श्रेणियां

आज तक (मार्च 2020 तक), विभिन्न क्षेत्रों में कुल 361 भौगोलिक संकेतक (GI) पंजीकृत किए जा चुके हैं। GI को विभिन्न विशिष्ट वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जो नीचे उल्लिखित हैं-

GI को विभिन्न विशिष्ट वर्गों में निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

GI श्रेणी	पंजीकृत GI की संख्या (मार्च 2024 तक)
कृषि उत्पाद (Agricultural)	196
खाद्य सामग्री (Food Stuff)	45
हस्तशिल्प (Handicraft)	342
प्राकृतिक वस्तुएं (Natural Goods)	03
निर्मित वस्तुएं (Manufactured Goods)	35
कुल	621

निष्कर्ष

अकादमिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो भौगोलिक संकेतक (GI) न केवल उत्पादों की प्रामाणिकता और गुणवत्ता की रक्षा का साधन हैं, बल्कि वे स्थानीय पारिस्थितिकीय विविधता, सांस्कृतिक विरासत और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सतत विकास को भी प्रोत्साहित करते हैं। विशेष रूप से सब्ज़ियों जैसे कृषि उत्पादों में तद्ध टैग का उपयोग जैव विविधता के संरक्षण, पारंपरिक कृषि पद्धतियों के संवर्धन और स्थानीय समुदायों के सशक्तिकरण के लिए एक प्रभावी उपकरण बनकर उभरा है।

भारत में विभिन्न प्रकार की सब्ज़ी फसलें विशिष्ट जलवायु और विशेष जलवायु क्षेत्र में उगाई जाती हैं। यह विशेष प्रकार की जलवायु उन सब्ज़ी फसलों की किस्मों को कुछ अनोखी विशेषताएँ प्रदान करती है। कुछ उदाहरण ऐसी सब्ज़ी फसलों के हैं, जो विशेष जलवायु में उगाई जाती हैं – जैसे नागा ट्री टमाटर, लासलगाँव प्याज, ब्यादगी मिर्च, जलगाँव भरित बैंगन आदि।

इसके अतिरिक्त, GI टैग वाली सब्ज़ियाँ भारतीय कृषि उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करती हैं, जिससे निर्यात के अवसर भी सृजित होते हैं। इसलिए तद्ध का पंजीकरण और संरक्षण केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि पर्यावरणीय और सांस्कृतिक स्थायित्व की दृष्टि से भी एक रणनीतिक आवश्यकता है। भविष्य में तद्ध आधारित शोध, नीति निर्माण और जागरूकता अभियानों को और सुदृढ़ किया जाना चाहिए, ताकि भारत की जैविक और सांस्कृतिक संपदा को दीर्घकालीन संरक्षण और समृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

भौगोलिक संकेतक (GI) टैग के अंतर्गत कृषि उत्पाद

प्रत्येक वर्ष अद्यतन की जाने वाली GI सूची में विभिन्न कृषि वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं, जो देश के निर्यात को प्रोत्साहित करती हैं। पंजीकृत GI उत्पाद उन क्षेत्रों को सशक्त बनाते हैं जहाँ किसान इन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिससे उनकी जीवनशैली और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

कृषि वस्तु	राज्य	कृषि वस्तु	राज्य
दार्जिलिंग चाय	पश्चिम बंगाल	मिजो मिर्च	मिज़ोरम
कांगड़ा चाय	हिमाचल प्रदेश	असम कार्बी आंगलोंग अदरक	असम
मैसूर पान पत्ता	कर्नाटक	त्रिपुरा क्वीन अनानास	त्रिपुरा
नंजनगुड केला	कर्नाटक	चेंगालिकोडन नेन्द्रन केला	केरल
मैसूर मल्लिगे	कर्नाटक	तेजपुर लीची	असम
उडुपी मल्लिगे	कर्नाटक	खासी संतरा	मेघालय
हडगली मल्लिगे	कर्नाटक	काचाई नींबू	मणिपुर
नवारा चावल	केरल	मेमोंग नारंग	मेघालय
पलक्कड़न मट्टा चावल	केरल	बासमती	पंजाब/हरियाणा/हिमाचल प्रदेश /दिल्ली/उत्तराखंड/उप्र/जम्मू और कश्मीर
मालाबार काली मिर्च	केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु	अजार घनसाल चावल	महाराष्ट्र
इलाहाबाद सुरखा अमरूद	उत्तर प्रदेश	मंगळवेढा ज्वार	महाराष्ट्र
मानसून की गई मालाबार अरेबिका कॉफी	कर्नाटक और केरल	सिंधुदुर्ग और रत्नागिरी कोकम	महाराष्ट्र
मानसून की गई मालाबार रोबस्टा कॉफी	कर्नाटक और केरल	वाघ्या गेहूँ	महाराष्ट्र
अलप्पी हरी इलायची	केरल और तमिलनाडु	नवापुर तुअर दाल	महाराष्ट्र
कूर्ग हरी इलायची	कर्नाटक	वेंगुर्ला काजू	महाराष्ट्र
ईथमोज़ी लंबा नारियल	तमिलनाडु	लासलगाँव प्याज	महाराष्ट्र
पोक्कली चावल	केरल	सांगली किशमिश	महाराष्ट्र
मालदा लक्ष्मण भोग आम	पश्चिम बंगाल	बीड़ का शरीफा	महाराष्ट्र
मालदा खीरसापती (हिमसागर) आम	पश्चिम बंगाल	जलना मीठा संतरा	महाराष्ट्र
मालदा फज़ली आम	पश्चिम बंगाल	उत्तराखंड तेजपत्ते	उत्तराखंड
नागा मिर्च	नागालैंड	वैगाँव हल्दी	महाराष्ट्र
नीलगिरी (ऑर्थोडॉक्स) चाय	तमिलनाडु	पुरंदर अंजीर	महाराष्ट्र
असम (ऑर्थोडॉक्स) चाय	असम	जलगाँव भरित बैंगन	महाराष्ट्र
विरूपाक्षी पहाड़ी केला	तमिलनाडु	सोलापुर अनार	महाराष्ट्र
सिरूमलई पहाड़ी केला	तमिलनाडु	भीवापुर मिर्च	महाराष्ट्र
मलिहाबाद का दशहरी आम	उत्तर प्रदेश	अंबेमोहर चावल	महाराष्ट्र
वाझक्कुलम अनानास	केरल	डहाणू घोलवड़ चीकू	महाराष्ट्र
देवणहल्ली पोमेलो	कर्नाटक	जलगाँव केला	महाराष्ट्र
अप्पेमिडी आम	कर्नाटक	मराठवाड़ा केसर आम	महाराष्ट्र
कमलापुर लाल केला	कर्नाटक	जोहा चावल	असम
गुंटूर सन्नम मिर्च	आंध्र प्रदेश	बनगनपल्ले आम	तेलंगाना और आंध्र प्रदेश
महाबलेश्वर स्ट्रॉबेरी	महाराष्ट्र	गोविंदभोग चावल	पश्चिम बंगाल
सेंट्रल त्रावणकोर गुड़	केरल	तुलापनजी चावल	पश्चिम बंगाल
वायनाड जीरकशाला चावल	केरल	नीलांबुर सागौन	केरल
वायनाड गंधकाशाला चावल	केरल	भागलपुरी ज़र्दालु	बिहार
नासिक अंगूर	महाराष्ट्र	कतरनी चावल	बिहार
ब्यादगी मिर्च	कर्नाटक	मगही पान	बिहार
गिर केसर आम	गुजरात	बोका चाउल	असम
भालिया गेहूं	गुजरात	हापुस (अल्फांसो) आम	महाराष्ट्र
उडुपी मट्टू गुल्ला बैंगन	कर्नाटक	सांगली हल्दी	महाराष्ट्र
गंजाम केवड़ा फूल	ओडिशा	शाही लीची	बिहार
मदुरै मल्लि	तमिलनाडु	कूर्ग अरेबिका कॉफी	कर्नाटक
बैंगलोर ब्लू अंगूर	कर्नाटक	वायनाड रोबस्टा कॉफी	केरल
कलानामक चावल	उत्तर प्रदेश	चिकमंगलूर अरेबिका कॉफी	कर्नाटक
काईपाड चावल	केरल	अराकू घाटी अरेबिका कॉफी	आंध्र प्रदेश और ओडिशा
कोल्हापुर गुड़	महाराष्ट्र	बाबाबुदनगिरी अरेबिका कॉफी	कर्नाटक
नागपुर संतरा	महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश	हिमाचली काला जीरा	हिमाचल प्रदेश
बैंगलोर गुलाब प्याज	कर्नाटक	सिरसी सुपारी	कर्नाटक
नागा ट्री टमाटर	नागालैंड	इरोड मंजल (इरोड हल्दी)	तमिलनाडु
अरुणाचल संतरा	अरुणाचल प्रदेश	मरायूर गुड़ (मरायूर शर्करा)	केरल
सिक्किम बड़ी इलायची	सिक्किम	जीराफूल चावल	छत्तीसगढ़
कंधमाल हल्दी	ओडिशा	कोडाईकनाल मलाई लहसुन	तमिलनाडु
गुलबर्गा तुअर दाल	कर्नाटक	तिरूर पान पत्ता	केरल
खोला मिर्च	गोवा	काजी नेमू	असम

POP fusion
#Cornilicious
perfect snack
Classic Salted Butter Caramel Popcorn
Artisan Dark Chocolate Popcorn
Gourmet Makhana
Balances health and taste
Crunchy and munchy
www.popfusion.in

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

अगस्त 2025

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान संपादक राजू गुर्जर द्वारा सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस, महाडिक की गोठ, जनक हॉस्पिटल के पीछे कम्पू रोड, लश्कर-ग्वालियर से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास दीनदयाल नगर ग्वालियर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: राजू गुर्जर. मोबा. 9425101132, 94245-22090